तमिळ साहित्य और संस्कृति

तमिळ प्रदेश के प्राचीन साहित्य तथा संस्कृति का
एक अध्ययन

अवधनंदन

१९५८

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार १९५८
साढ़े तीन रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हमारे देश की विभिन्न भाषाओ का साहित्य कितना समृद्ध हे, इसकी जानकारी हिंदी के पाठको को बहुत कम ह। इसका मुख्य कारण सभवत यह है कि इन भाषाओ का परिचय देनेवाले साहित्य के विधिवत प्रकाशन का प्रयत्न हिंदी मे अभी तक नही हुआ हे। जब-तब कुछ लेख पत्र-पत्रिकाओ मे निकलते रहते है, लेकिन इतना ही पर्याप्त नही है। यह निश्चय ही बडी विचित्र-सी बात है कि हिंदी के पाठक विदेशी साहित्य तथा उसके ग्रथकारो से तो सुपरिचित हो, लेकिन अपने ही देश के साहित्य तथा साहित्यकारो से अनभिज्ञ रहे!

इस कमी को ध्यान मे रखकर हमने अपने देश की विभिन्न भाषाओ के परिचयात्मक ग्रथ निकालने की योजना बनाई है। प्रारभ दक्षिण की भाषाओ से किया है। सबसे पहली पुस्तक मे मलयाली साहित्य का विस्तृत परिचय दिया गया है। उस पुस्तक को देखकर विनोबाजी ने एक पत्र मे लिखा था कि ऐसा जान पडता है, मानो 'यह पुस्तक आपने मेरे लिए ही निकाली हो।' पुस्तक की सामग्री के मूल्यवान होने के साथ-साथ उसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि वह एक ऐसी लेखिका द्वारा मूल हिंदी मे लिखी गई है, जिनकी मातृ-भाषा मलयाली है।

प्रस्तुत पुस्तक मे दक्षिण की दूसरी समृद्ध भाषा—तमिळ, उसके साहित्य तथा उसकी सस्कृति—पर प्रकाश डाला गया है। इसके लेखक वर्षो से दक्षिण मे हिंदी-प्रचार के कार्य मे सक्रिय योग दे रहे है।

हमे आशा है, पाठको के लिए यह पुस्तक भी ज्ञानवर्द्धक तथा उपयोगी सिद्ध होगी।

—मत्री

प्रस्तावना

इस पुस्तक के लिखने में हमारा उद्देश्य तमिळ प्रदेश के प्राचीन इतिहास, भाषा, साहित्य तथा सस्कृति का सक्षिप्त परिचय उत्तर भारत के निवासियों को देना है, जो प्राय तमिळ प्रदेश के प्राचीन इतिहास से अपरिचित है। भारतवर्ष का इतिहास लिखनेवालो ने दक्षिण की ओर, विशेषकर तमिळ पदेश के इतिहास की ओर, बडी उपेक्षा दिखलाई है। आर्यावर्त मे होनेवाली घटनाओ के सकलन तथा वर्णन मे वे इतने तल्लीन रहे कि दक्षिण मे होनेवाली महत्वपूर्ण घटनाओ की ओर उनका ध्यान ही नही गया। विनसेंट स्मिथ ने लिखा है—"अधिकाश इतिहासकारो ने प्राचीन भारत का इतिहास इस प्रकार लिखा है, मानो दक्षिण भारत की कोई हस्ती ही नही थी।" इस उपेक्षा के दो कारण हो सकते है। पहला यह कि उत्तर भारत मे होनेवाली घटनाओ की तुलना मे दक्षिण भारत मे होनेवाली घटनाए अपेक्षाकृत बहुत छोटी और अप्रधान मालूम होती है। इतिहास-लेखको का ध्यान स्वभावत बडे-बडे सम्राटो के कार्य-कलापो, उनके युद्धो तथा राजनैतिक उथल-पुथल की ओर अधिक जाता है, और उन्ही बातो को वे महत्व देते है। उनकी दृष्टि मे दक्षिण की घटनाए उतनी महत्वपूर्ण नही मालूम हुई कि वे इतिहास मे उनको स्थान देते। दूसरा कारण यह हो सकता है कि जहा ईसा के पूर्व की शताब्दियो से ही उत्तर भारत मे होनेवाली घटनाओ का बहुत कुछ सिलसिलेवार इतिहास प्राप्त है, वहा दक्षिण मे ईसा की छठी शताब्दी के पूर्व की घटनाओ का कोई प्रामाणिक तथा सिलसिलेवार विवरण नही मिलता। सन ६०० ई० के बाद से ही दक्षिण का इतिहास स्पष्ट रूप से हमारे सामने आता है। शायद इन्ही कारणो से दक्षिण के इतिहास को भारत के इतिहास मे उतनी प्रधानता नही मिली जितनी मिलनी चाहिए थी।

यह सही है कि चद्रगुप्त तथा अशोक-जैसे प्रतापी सम्राट दक्षिण मे उत्पन्न नही हुए, महाभारत तथा पानीपत-जैसे सर्वनाशी युद्ध यहा नही हुए, और विदेशियो के निरतर आक्रमणो के कारण उत्तर भारत मे जो उथल-पुथल हुई, उससे दक्षिण बहुत हद तक सुरक्षित रह गया, किंतु यह नही कहा जा सकता कि दक्षिण मे

ऐसी घटनाए हुई ही नही, जो इतिहास मे स्थान पाने का दावा न कर सकती हो। दक्षिण मे ऐसे अनेक महत्वपूर्ण कार्य हुए है जो समाज को उन्नति तथा प्रगति की ओर ले जानेवाले थे तथा मानव को जीवन के सघर्षो से मुक्ति देकर उसे सुख और शाति की ओर अग्रसर करनेवाले थे। ये बाते लुटेरो के आक्रमणो तथा सम्राटो के युद्धो से अधिक स्थायी तथा कल्याणकारी महत्व रखती है। जिस समय उत्तर भारत भयकर तथा सर्वनाशी युद्धो मे व्यस्त था और वहा रोज नये-नये साम्राज्य बनते और बिगडते थे, उस समय दक्षिण भारत कलाओ के सृजन तथा साहित्य की अभिवृद्धि मे सलग्न था और ऐसी प्रतिमाए तैयार कर रहा था, जो आगे आनेवाली सतानो को स्फूर्ति एव चेतना प्रदान कर सके। मदुरा के पाडिय राजाओ ने ईसा की दूसरी शती से लेकर छठी शती तक तमिळ साहित्य की अभिवृद्धि मे, छठी शताब्दी से लेकर नवी शताब्दी तक प्रस्तर-कला तथा मदिरो के निर्माण मे पल्लव राजाओ ने, नवी शताब्दी से लेकर ग्यारहवी शताब्दी तक देश की व्यवस्था, धर्म-क्षेत्रो की स्थापना और उद्धार के लिए कावेरी उपत्यका पर राज्य करनेवाले चोळ राजाओ ने, तथा १४ वी, १५ वी और १६ वी शताब्दियो मे भाषा, साहित्य, सस्कृति, ललित तथा स्थापत्य कलाओ के विकास के लिए विजयनगर साम्राज्य ने जो कार्य किये, क्या वे इतिहास की किसी भी बडी घटना से कम महत्व रखते है? क्या दक्षिण के विशाल मदिर, पाषाण और अष्टधातु की बनी कलापूर्ण मूर्तिया, चित्र तथा वास्तुकला के सुदरतम नमूने दक्षिण के प्राचीन वैभव एव सृजन-शक्ति का प्रमाण नही देते? सच पूछा जाय तो सच्चा इतिहास तो इन्ही बातो से बनता है। मार-काट की कहानिया तो केवल मनुष्य की आसुरी वृत्ति को प्रकट करती है। इसलिए दक्षिण की घटनाओ को भारत के इतिहास मे उचित स्थान न मिलने से निस्सदेह भारत का इतिहास अधूरा और अपूर्ण रह गया है।

तमिळ इतिहास की अनेक बातो के सबध मे आज भी विद्वानो मे मतभेद है। कुछ लोगो का विचार है कि आर्य लोगो के दक्षिण मे आने के बाद ही दक्षिण मे साहित्य, सस्कृति तथा सभ्यता का विकास हुआ, किंतु तमिळ विद्वान इस दावे को स्वीकार करने मे अपने को असमर्थ पाते है। उनका कहना है कि आर्यो के दक्षिण मे आने के पहले से ही द्रविड लोग सभ्य और सुसस्कृत थे। कुछ तमिळ विद्वानो का यह भी मत है कि आर्यो के दक्षिण मे आने से तमिळ भाषा, साहित्य, सभ्यता तथा सस्कृति को बहुत नुकसान पहुचा और उनकी मौलिकता नष्ट हो

गई। आर्यो के इस देश मे आने से तमिळ लोग अपनी प्राचीन सस्कृति को भूलकर उनका अधानुकरण करने लगे। वे तमिळ भाषा, तमिळ साहित्य तथा तमिळ सभ्यता को आर्य भाषा, साहित्य तथा सभ्यता से अधिक महत्वपूर्ण तथा प्राचीन मानते है, और मानते है कि भारतवर्ष का इतिहास दक्षिण से ही आरभ होता है। प्रोफेसर सुदरम् पिल्लै ने लिखा है—"वैज्ञानिक दृष्टि से भारत का इतिहास लिखनेवालो को चाहिए कि वे अपना इतिहास गगा की समतल भूमि के निवासियो के वर्णन से आरभ न करके, जैसाकि आजकल होता है, कृष्णा, कावेरी और वेगैई नदियो की घटनाओ से आरभ करे", क्योकि "वास्तव मे असली हिंदुस्तान तो विध्य पर्वत के दक्षिण मे था, जहा के बहुसख्यक निवासी आज भी पूर्व-आर्यकालीन अपनी आकृति, भाषा तथा सस्कृति को कायम रखे हुए है।" श्री पूर्णलिगम् पिल्लै अपनी 'तमिळ इडिया' नामक पुस्तक की प्रस्तावना मे लिखते है—"पाश्चात्य देशो के आर्य आज से दस हजार वर्ष पूर्व किसी जाति के सभ्य होने की बात सुनकर आश्चर्य-चकित हो जाते है, इसी तरह पूर्व के निवासी उनके बधु (भारतवर्ष के आर्य ?) इस बात पर विश्वास करने को तैयार नही होते कि आर्यो की भाषा तथा साहित्य से भी अधिक पुरानी और समृद्ध कोई भाषा या साहित्य इस देश मे हो सकता है, या रहा होगा।"

ऐसी धारणा रखनेवाले तमिळ विद्वानो मे अनेक लोग मिलते है, लेकिन उनका यह दावा कितना न्यायोचित या अतिशयोक्तिपूर्ण है, इस पर विचार करना हमारा काम नही।

आर्य और द्रविड या तमिळ कही जानेवाली सस्कृतियो का उद्गम जहा भी हुआ हो, पिछले ढाई-तीन हजार वर्षो से ये दोनो धाराए गगा और जमुना की तरह मिलकर बहती आई है, दोनो जातियो के साहित्य, सामाजिक जीवन तथा धार्मिक विश्वास एक-दूसरे के साथ इस तरह घुल-मिल गये है कि आज यह बतलाना कठिन है कि इस धारा मे कितना जल गगा का और कितना जमुना का है।

हिंदी मे अभीतक एक भी ऐसा ग्रथ नही, जिससे तमिळ लोगो के प्राचीन इतिहास की जानकारी प्राप्त हो सके। इस कमी को ध्यान मे रखकर ही इस पुस्तक की रचना की गई है। सभव है इसमे त्रुटिया रह गई हो और कुछ महत्व-पूर्ण बाते छूट गई हो। पर इतना निवेदन हम कर देना चाहते है कि हमने इसे यथा-शक्ति प्रामाणिक तथा उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है।

दक्षिण भारत आज भी हिंदू सस्कृति का सवसे वडा गढ है, जहाँ पिछले हज़ार-दो हजार वर्षों मे आर्य और द्रविड सस्कृतियो के समन्वय का सुंदर तथा महत्वपूर्ण कार्य हुआ है और जहा से होकर हिंदू सस्कृति पूर्वी एशिया के देशो में फैली थी। इस दृष्टि से दक्षिण का इतिहास सारे भारतवर्ष के निवासियो के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण और अध्ययन योग्य है। यदि इस पुस्तक को पढने के वाद उत्तर भारत के निवासियो मे दक्षिण की भाषा तथा साहित्य के अध्ययन की ओर रुचि जागृत होगी, तो मै अपना प्रयास सफल समझूगा।

इस पुस्तक के लिखने मे दक्षिण के जिन विद्वानो के ग्रथो से सहायता मिली है, उनके हम कृतज्ञ है। सहायक पुस्तको की सूची परिशिष्ट मे दे दी गई है। पुस्तक की पाडुलिपि को देखकर अनेक उपयोगी सुझाव देने के लिए मै अपने मित्र तथा सहयोगी श्री एन० वी० राजगोपालन, हिंदी प्राध्यापक, प्रेसिडेसी कालेज, मद्रास का आभारी हू। अनेक दूसरे मित्रो ने इस कार्य मे सहयोग प्रदान किया, उनका भी मै कृतज्ञ हू।

—अवधनदन

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा,
मद्रास

विषय-सूची

मद्रास राज्य
तामिळनाडु

दक्षिण भारत

मध्य प्रदेश
उड़ीसा राज्य
बंबई राज्य
राज्य
गोदावरी
कृष्णा
विजयवाड़ा
मैसूर राज्य
(कर्नाटक प्रदेश)
आंध्र
पेन्नार
बंगाल की खाड़ी
बेंगलौर
मद्रास
मैसूर
पाण्डिचेरी
अरब सागर
मद्रास राज्य
तमिल नाड़
कावेरी
त्रिवेदम
हिन्द
महासागर
लंका

तमिळ् साहित्य और संस्कृति

: १ :

दक्षिण भारत

दक्षिण भारत एक अत्यत प्राचीन, सपन्न और सुदर प्रदेश है। यहा की भूमि सबसे पुरानी, यहा की नदिया सबसे बूढी और यहा के पर्वत सबसे प्राचीन है। भूगर्भशास्त्रियो का कहना है जिस समय आर्यावर्त कहलानेवाले प्रदेश बने भी न थे और वहा समुद्र लहराता था, उस समय भी दक्षिण भारत वर्तमान था। यहा के पत्थरो और वनस्पतियो की जाच करने से यहा की भूमि की प्राचीनता के पर्याप्त प्रमाण मिलते है। इस प्रात मे सब तरह के भू-तल मिलते है। ऊची पहाडिया—गर्मी के दिनो मे भी जहा का तापमान ६०-६५ डिग्री (फा०) से ऊपर नही जाता—और अत्यत उष्ण प्रदेश—गर्मियो मे जहा का तापमान १२० डिग्री तक पहुच जाता है—इस प्रात मे मिलते है। कही तो वर्ष मे २०० इच से भी अधिक वर्षा होती है, तो कही साल भर मे मुश्किल से १० इच पानी बरसता है। कही की भूमि अत्यत पथरीली है, जहा मुट्ठी भर अन्न उपजाने के लिए चोटी का पसीना एडी तक आता है, तो कही की भूमि ऐसी उर्वरा, कि बिना अधिक परिश्रम के ही प्रकृति अन्न का भडार उपस्थित कर देती है। यहा सब प्रकार के खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा मे मिलते है—सोना, लोहा, मेगनीज आदि यहा की खानो की प्रधान उपज है। यहा का प्राकृतिक दृश्य भी उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक सुदर और आकर्षक है। ऊचे-ऊचे जल-प्रपात, गहरी और तीव्र गति से बहनेवाली नदिया, प्राय सारे प्रात मे, और विशेषकर समुद्र के तट पर दूर तक फैले हुए नारिकेल, कदली और सुपारी के वन यहा की प्राकृतिक शोभा को बहुत बढा देते है। पर्वत की क्रमोन्नत और दूर तक फैली हुई शृखलाए, रग-बिरगी मिट्टी, शस्य-श्यामला भूमि, सघन वन-राजि, तीन ओर से तटो को प्रक्षालित करता हुआ समुद्र, दक्षिण भारत की सुदरता को विशेष रूप से आकर्षक बना देते है।

विंध्य पर्वत के उत्तरी भाग को आर्यावर्त और दक्षिणी भाग को दक्षिणापथ कहते है। मनु ने लिखा है कि हिमालय से लेकर विंध्य पर्वत तक और पश्चिम समुद्र से लेकर पूर्व समुद्र तक आर्यो का देश है। दक्षिणापथ के उत्तर म विध्य पर्वत, पश्चिम मे अरब सागर, पूर्व मे बगाल की खाडी और दक्षिण मे हिद महासागर है। जिस तरह उत्तर भारत आर्यो का देश माना जाता है, उसी तरह दक्षिण भारत द्रविडो की भूमि मानी जाती है। दक्षिण मे महाराष्ट्र प्रदेश ही एक ऐसा प्रात है जहा आर्य-परिवार के लोग निवास करते है और जहा आर्य-परिवार की भाषा (मराठी) बोली जाती है।

दक्षिण मे बसनेवाली द्रविड जाति ससार की जातियो मे एक अत्यत प्राचीन जाति है। कुछ विद्वानो का अनुमान है कि यह जाति दक्षिण भारत मे ही विकसित हुई और यही से भारत के भिन्न-भिन्न भागो मे फैली। द्रविड-भूमि और यहा की जलवायु मानव-सृष्टि के लिए अत्यत अनुकूल मानी गई है। दक्षिण भारत मे मनुष्य ने पाषाण-युग से सीधे लोह-युग मे प्रवेश किया, जबकि उत्तर भारत मे पाषाण-काल के पश्चात ताम्र-काल और ताम्र-काल के बाद लौह-काल आया। भूगर्भशास्त्र के अनुसार भी दक्षिण भारत की भूमि उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक पुरानी सिद्ध होती है। अतएव यह अनुमान सही हो सकता है कि यहा मानव-जीवन और सभ्यता का आविर्भाव सबसे पहले हुआ होगा। यही पर द्रविड भाषा विकसित हुई, जो आगे चलकर तमिळ, तेलुगु, कन्नड, मलयालम आदि भाषाओ की जननी बनी।

दक्षिण की सस्कृति बहुत प्राचीन है और यहा के निवासियो का जीवन बहुत सरल और शातिमय है। पिछले दो-ढाई हजार वर्षो मे उत्तर भारत ने जो उथल-पुथल और उलट-फेर देखे, दक्षिण भारत उनसे सुरक्षित रहा और यही मुख्य कारण है जिससे वह अपनी आत्मा की रक्षा कर सका और अपनी भाषा, सस्कृति और कलाओ का उत्तरोत्तर विकास और वृद्धि कर सका। आज हिंदू-सस्कृति और हिंदू-आचार-विचार तथा हिंदू-धार्मिक विश्वासो का सच्चा एव शुद्ध रूप दक्षिण मे ही पाया जाता है।

जिस तरह आर्य-सस्कृति ने द्रविड-सस्कृति को अनेक तरह से प्रभावित किया, उसी तरह आर्य-सस्कृति मे बहुत-सी बाते ऐसी है, जो द्रविड-सस्कृति की देन है। द्रविडो ने अपने कई देवता आर्यो को दिये। शिव और सुब्रह्मण्य द्रविडो के ही देवता

थे, जिन्हे आर्यो ने अपनाया। लिग की पूजा तथा शिव और विष्णु का भक्ति-मार्ग भी द्रविडो से ही आर्यो को मिला। उत्तर भारत ने यदि अवतारो को जन्म दिया, तो दक्षिण ने शकर, रामानुज, माध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्य-जैसे महान आचाय उत्पन्न किये, जिन्होने अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि सिद्धातो तथा भक्ति-मार्ग का प्रचार सारे भारतवर्ष मे किया। इस तरह आर्य-सस्कृति अनेक विषयो मे द्रविड देश की ऋणी कही जा सकती है।

दक्षिण की भाषाए आर्य-परिवार की भाषाओ से प्रभावित होने पर भी अपनी स्वतत्र हस्ती रखती है और उनका अपना निजी स्वतत्र साहित्य तथा शब्द-भडार है, जो भारत की अन्य भाषाओ की अपेक्षा अधिक प्राचीन और सपन्न है। दक्षिण की भाषाओ की अपनी अलग-अलग लिपिया है जिन पर ब्राह्मी लिपि का प्रभाव पडा है, फिर भी वे देवनागरी से अनेक बातो मे भिन्नता रखती है।

भाषा की दृष्टि से दक्षिण के मुख्य चार भाग है

१ आध्र   ३ केरल

२ कर्णाटक   ४ तमिळनाड।

मद्रास के उत्तर नेल्लूर जिले से लेकर उडीसा राज्य की दक्षिणी सीमा तक तथा पुराने हैदराबाद राज्य के आदिलाबाद, निजामाबाद, करीमनगर, वारगल, मेदक, हैदराबाद, नल्लगोडा, खममपेटा आदि जिले तेलुगु भाषा के क्षेत्र है। अब तो सारा तेलुगु भाषी प्रात आध्र प्रदेश के नाम से एक हो गया है।

मद्रास के पश्चिम मे कन्नड भाषा का क्षेत्र है, जिसमे पुराना मैसूर राज्य, कुर्ग, दक्षिण और उत्तर कनारा, धारवाड, बेलगाम, बिजापुर, बीदर, गुलबर्गा तथा रायचूर के जिले शामिल है। पहले कन्नड भाषा का क्षेत्र चार राज्यो मे विभक्त था, अब राज्य-पुनर्गठन के कारण सारा कन्नडभाषी क्षेत्र मैसूर राज्य के अतर्गत आ गया है। यहा की भाषा कन्नड द्रविड-परिवार की एक मुख्य भाषा है। इसी प्रात मे मडबिद्री और श्रवणबेलगोल नामक जैनो के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। श्री शकराचार्य का प्रख्यात मठ शृगेरी इसी प्रदेश मे है। दक्षिण के आचार्य-चतुष्ठय मे से श्री माध्वाचार्य का जन्म भी इसी प्रदेश मे हुआ था।

पश्चिम घाट की पहाडियो और अरब सागर के बीच लगभग ५०० मील लबा और ५० से १०० मील तक चौडा जो लबा-पतला भू-खड है, उसे केरल कहते है। प्राचीन काल मे यह तमिळ देश का ही अग माना जाता था और प्राचीन

चेर राजाओ का अधिकार इस प्रात पर था। यहा की भाषा मलयालम यद्यपि द्रविड-परिवार से ही सबध रखती है, पर इस पर सस्कृत का बहुत प्रभाव पडा है। साहित्यिक मलयालम मे अस्सी प्रतिशत सस्कृत के तत्सम शब्दो का व्यवहार होता है। केरल की भूमि अत्यत सुदर और मनोहर है। यहा वर्षा अधिक होती है और यहा की जलवायु समशीतोष्ण है। यहा नारियल, सुपारी, आम, कटहल और केले के पेड बहुत होते है। पहाडी प्रदेश, ऊबड-खाबड भूमि, सघन वनराजि, बीच-बीच मे धान के खेत, गहरी व तीव्र गति से बहनेवाली नदिया, पान और गोल-मिर्च के बगीचे—सब मिलकर यहा की प्राकृतिक शोभा को बहुत बढा देते है। इसी-लिए प्राकृतिक सौंदर्य मे इस देश को काश्मीर के बाद दूसरा स्थान प्राप्त है। यहा के निवासी देखने मे सुदर, साफ-सुथरे और तीक्ष्ण-बुद्धि होते है। यहा शिक्षा का प्रचार बहुत है, खासकर स्त्री-शिक्षा का। पहले यहा ब्राह्मणो का प्रभाव अधिक था, पर अब नायर और मेनोन लोगो ने काफी प्रगति कर ली है और इस समय ये भारत-सरकार के सभी विभागो मे नौकरी करते हुए पाये जाते है। जगत-प्रसिद्ध गुरु और तत्वज्ञानी श्री शकराचार्य इसी प्रात मे उत्पन्न हुए थे। अति प्राचीन काल मे इस भू-भाग का व्यापारिक और सास्कृतिक सबध पश्चिमी एशिया, अरब आदि देशो के साथ था। सबसे पहले ईसाई धर्म इसी प्रात मे, ईसा के बाद ६८ ई० मे, आया था और आज भी यह प्रदेश ईसाई धर्म का प्रधान केंद्र है।

मद्रास और उसके दक्षिण मे कन्याकुमारी तक की भूमि तमिळनाडु कही जाती है। इसमे मद्रास नगर, चेंगलपट, उत्तर आर्काट, दक्षिण आर्काट, तजाऊर, तिरुच्चि, मदुरा, रामनाद, तिरुनेलवेली, कन्याकुमारी, सेलम, नीलगिरि और कोयब-त्तूर के जिले है। प्रसिद्ध नीलगिरि पर्वत, जिसे दक्षिण का शिमला कह सकते है और जहा गर्मी के दिनो मे सूर्य के प्रचड ताप से बचने के लिए प्रति वर्ष हजारो लोग भारत के भिन्न-भिन्न भागो से आया करते है, इसी प्रात मे है। इनमे से तजाऊर और तिरुच्चिरापल्ली के जिले बहुत उपजाऊ होने के कारण दक्षिण भारत के अन्नकोष कहे जाते है। इन दोनो जिलो मे से होकर कावेरी नदी यहा की भूमि को उर्वर बनाती हुई बहती है। यहा चावल अधिक पैदा होता है। मद्रास, मदुरा, तिरुच्चिरापल्ली और कोयबत्तूर इस प्रात के मुख्य नगर है। मदुरा यहा का सबसे पुराना और आबादी के लिहाज से इस प्रात का दूसरा शहर है। इस प्रात मे सबसे अधिक देव-मदिर और प्राचीन तीर्थ-क्षेत्र है। शिक्षा मे यह प्रात बहुत आगे

है। यहा के ब्राह्मण बुद्धिजीवी और अब्राह्मण प्राय किसान और व्यापारी होते हैं। यहा के हाथ के बने रेशमी और सूती कपडे सारे भारत मे प्रसिद्ध है। ईसा के कई सौ वर्ष पहले भी यहा के लोग पूरव मे चीन, जावा, सुमात्रा आदि देशो के साथ और पश्चिम मे रोम, ग्रीस, मिस्र, अरब आदि देशो के साथ व्यापार करते थे। आज भी दक्षिण भारत मे यह सबसे उन्नतिशील प्रात माना जाता है।

प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से तमिळनाडु मे अनेक रमणीय एव दर्शनीय स्थान है। नीलगिरि की पहाडी पर बसा हुआ उदकमडलम (ऊटी) नगर और मदुरा जिले मे पलनी की पहाडियो पर कोडयिकनाल नामक स्थान शोभा और स्वास्थ्य के केंद्र है। ये दोनो नगर समुद्र के धरातल से लगभग ६,५०० फीट की ऊचाई पर बसे हैं और दक्षिण के दो प्रसिद्ध 'हिल स्टेशन' है। इसी तरह कुत्तालम का जल-प्रपात और कन्याकुमारी का सुदर समुद्र-तट प्रति वर्ष हजारो दर्शको को अपनी ओर आकृष्ट करते है।

तमिळ देश की नदियो मे सबसे प्रसिद्ध कावेरी और ताम्रपर्णी है। कावेरी नदी कूर्ग मे ब्रह्मगिरि की पहाडी से निकलकर दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हुई तमिळनाडु मे प्रवेश करती है और तिरुच्चिरापल्ली तथा तजाऊर के जिलो की भूमि को अपने जल से उर्वर बनाती है। तमिळ का प्राचीन साहित्य कावेरी के जीवनदायी गुणो की प्रशसा से भरा है। दक्षिण के अनेक पुण्य क्षेत्र तथा दक्षिण मे आर्य-सस्कृति के प्राचीन केंद्र कावेरी और ताम्रपर्णी नदियो के तट पर ही बने थे। ताम्रपर्णी नदी पश्चिम घाट की पहाडी के दक्षिणी छोर से निकलकर तिरुनेलवेली जिले मे बहती है। तिरुनेलवेली और कन्याकुमारी तमिळनाडु के सबसे दक्षिणी जिले है और बहुत सपन्न और उन्नत है।

तमिळनाडु 'मदिरो का देश' कहा जाता है। यहा के पल्लव, चोळ और पाडिय राजाओ ने मदिरो के निर्माण मे अपना सर्वस्व लगा दिया था। उन्होने हजारो मदिर बनवाये जो आज भी उनकी धर्म-प्रियता और ईश्वर-भक्ति के सुदर प्रतीक है।

राज्य-पुनर्गठन के अनुसार दक्षिण के चारो राज्यो का क्षेत्रफल और आबादी निम्न प्रकार है

	नाम	क्षेत्रफल (वर्ग मी॰लो में)	आबादी
१	आध्र प्रदेश	१,०५,९६३	३,१३ लाख

	नाम	क्षेत्रफल (वर्ग मीलो में)	आवादी
२	कर्णाटक (मैसूर राज्य)	७४,३२६	१,९४ लाख
३	केरल	१५,०३५	१,३६ ,,
४	तमिळनाडु	५०,११०	३,०० ,,

उत्तर मे तिरुप्पति की पहाडी से लेकर दक्षिण मे कन्याकुमारी तक और पूर्व मे वगाल की खाडी से लेकर पश्चिम मे अरव सागर तक का देश तमिळ-साहित्य मे 'तमिळहम' या तमिळ देश के नाम से प्रसिद्ध है। इस तमिळहम मे वर्तमान तमिळनाडु के जिलो के साथ-साथ केरल का प्रात भी शामिल था। तमिळ व्याकरण के रचयिता तोळकाप्पियर, 'शिलप्पदिकारम्' के रचयिता इलगोअडिकल आदि कवियो ने अपने-अपने ग्रथ मे तमिळ देश की इसी सीमा का उल्लेख किया है। तमिळ के प्राचीन ग्रथो मे तमिळनाडु की सीमा निम्न प्रकार वतलाई जाती है

"वेगडम (तिरुपति) की पहाडी से लेकर दक्षिण मे कुमारी तक तमिळो का सुदर देश है।"

—तोळकाप्पियर

"वेकटम और कुमारी तथा समुद्रो के बीच तमिळ देश का विस्तार है।"

—शिलप्पदिकारम्

यही तमिळहम तमिळ जाति का सवसे पुराना निवास-स्थान और तमिळ-सभ्यता और सस्कृति का केद्र है। तमिळ-सभ्यता के अधिकाश पुराने चिह्न यही पर मिलते है। इसी प्रात मे प्राचीन तमिळ-सस्कृति अपने विकास की चरम-सीमा को प्राप्त हुई थी। यही से हिंदू-सस्कृति अनत जलराशि को पारकर जावा, सुमात्रा, मलाया, वाली आदि देशो को पहुची थी। यही पर तमिळ-साहित्य का विकास हुआ और उस भाषा के अमूल्य ग्रथो की रचना हुई थी। यही पर पाडिय, चोळ और चेर राजाओ ने हजारो वर्षो तक निष्कटक राज्य किया था और देश मे कला-कौशल, विद्या और व्यापार की उन्नति की थी। यही पर पाडिय राजाओ ने भाषा और साहित्य की अभिवृद्धि के लिए इतिहास-प्रसिद्ध 'सघमो' की स्थापना की थी। यही पर चोळ और पल्लव राजाओ ने विशाल मदिरो का निर्माण किया था, जिन्हे देखकर दुनिया आज भी आश्चर्यचकित हो जाती है। यही पर अनेक वैष्णव और शैव सत कवि अवतरित हुए, जिन्होने भक्ति-रस की अपूर्व मदाकिनी वहाई थी। वास्तव मे प्राचीन द्रविड-सभ्यता और सस्कृति का इतिहास इसी तमिळहम के इतिहास से सवध रखता है।

प्राचीन काल मे तमिळहम के मुख्य चार विभाग थे (१) पाडियनाडु—इसमे मदुरा, रामनादपुरम और तिरुनेलवेली के जिले सम्मिलित थे। (२) चोळनाडु—इसमे वर्तमान तिरुच्चिरापल्ली और तजाऊर के जिले थे। (३) तोडैमडलम—इसमे वर्तमान दक्षिण आर्काट, उत्तर आर्काट और चेगलपट के जिले थे और यह तिरुपति तक फैला हुआ था। (४) चेरनाडु—इसमे वर्तमान केरल प्रात था। देश की स्थिति और जलवायु के भेद के कारण चेरनाडु तमिळ देश मे अलग हो गया।

तमिळ देश मे निवास करनेवाली सभी जातिया द्रविड नही है। यहा अनेक जातियो के लोग बसते है। उनकी सूरत-शक्ल, रूप-रग आदि से भी पता चलता है कि वे एक-दूसरे से भिन्न रक्त के है। विद्वानो का कथन है कि पुराने प्रस्तर-युग से ही दक्षिण भारत मानव का निवास-स्थान था और नेग्रिटो, आस्ट्रलायड, मेडिट्रेनियन, प्रोटो मेडिट्रेनियन आदि जातियो के लोग क्रमश इस देश मे आये और बस गये। आज ये सब जातिया तमिळ जातियो मे घुल-मिल गई है।

तमिळ के व्याकरणाचार्य ने अपने व्याकरण मे यहा की तीन ही जातियो का उल्लेख किया है—मक्कळ, देवर और नकरर या नागर। शुद्ध द्रविड या तमिळ लोग 'मक्कळ' कहे गये है। 'देवर' ब्राह्मणो के लिए आया है और 'नागर' यहा के आदिवासियो के लिए, जिनमे नाग-जाति के लोग भी सम्मिलित है। किसी समय दक्षिण मे नाग-जाति का बहुत प्रभाव था और वे बडे शक्तिशाली थे। परतु धीरे-धीरे द्रविडो ने उनको आत्मसात कर लिया और आज उनका नाम ही अवशेष रह गया है। कुछ आदिवासी जातिया आज भी पहाडो और जगलो मे निवास करती हुई पाई जाती है, जैसे नीलगिरी की टोडा जाति, जो सभवत प्राचीन नागर जाति के वशज है।

आज भी दक्षिण भारत मे तीन प्रकार की मुखाकृति के लोग मिलते है, जिससे उनकी जाति का भान होता है। आर्य लोग, जिन्हे 'देवर' कहा गया है, अपेक्षाकृत गोरे रग के होते है। उनका कद लबा होता है, नाक ऊची और नुकीली होती है, होठ पतले और बाल लबे तथा मुलायम होते है। शुद्ध द्रविड लोग आदिवासियो से भिन्न है। वे न अधिक गोरे, न एकदम काले, पर गेहुए या लाल रग के, मझोले कद के, लबे सिर और ऊची नाकवाले होते है। वे रूप-रग मे दक्षिण के आदिवासियो की अपेक्षा आर्यो से अधिक मिलते-जुलते है।

आदिवासियो मे भी अनेक जातियो के लोग मिलते है। नीलगिरी के टोडा लोग सावले रग के और हृष्ट-पुष्ट होते है, उनकी नाक मोटी, ललाट झुका हुआ और शरीर बालो से भरा हुआ होता है। इसके विपरीत मरवर, वेडन, कुरुबर आदि जातियो के लोग काले, मोटे, चौडी नाक और मोटे होठवाले होते है और कुछ बातो मे अफरीका की नीग्रो जातियो से मिलते-जुलते है।

मनुष्य के रग-रूप पर जलवायु का भी असर पडता है। केरल प्रात की जलवायु मे उतनी उष्णता नही होती, जितनी तमिळ देश के दक्षिणी भागो मे होती है। इसके अतिरिक्त केरल मे वर्षा भी अधिक होती है और धूप कम पडती है, अत वहा के निवासी अधिक गोरे होते है। तमिळनाडु के दक्षिणी जिले, जहा धूप अधिक पडती है और वर्षा कम होती है, वहा काले रग के लोग अधिक सख्या मे मिलते है। यहा के ब्राह्मणो मे भी काले रग के लोग होते है। दक्षिण के ब्राह्मणो मे द्रविड रक्त का सम्मिश्रण होना भी असभव नही कहा जा सकता, जिस कारण से उनके रग मे परिवर्तन हो गया है।

तमिळ देश के निवासी ब्राह्मण हो या आदिवासी, सभी एक ही भाषा—तमिळ—बोलते है। ब्राह्मणो ने दक्षिण मे आकर अपनी मातृभाषा छोडकर तमिळ को अपनाया और उसको अपनी मातृभाषा के रूप मे स्वीकार किया आगे चलकर उन्होने इसमे साहित्य-रचना भी की। तमिळ का सर्वप्रथम व्याकरण और अनेक काव्य-ग्रथ ब्राह्मणो द्वारा रचे गये थे।

: २ :

द्रविड़ जाति

अज्ञात काल से दक्षिण भारत मे जो जाति निवास करती है, वह द्रविड जाति के नाम से प्रसिद्ध है। वह जाति बहुत प्राचीन है और उसकी सभ्यता बहुत पुरानी है। उसकी अपनी भाषा और अपना साहित्य है, जो मौलिकता और विशालता मे सस्कृत को छोडकर भारत की अन्य किसी भी भाषा से अधिक प्राचीन और सपन्न है। उसकी अपनी शिल्प-कला, नगर और गृह निर्माण-कला, सगीत और नृत्य-पद्धति तथा अपना रहन-सहन है, और आर्यो से प्रभावित होने पर भी यह अनेक मौलिक तत्व रखती है।

यह द्रविड जाति विंध्य पर्वत तथा नर्मदा नदी के दक्षिण मे कई हजार वर्षो से निवास करती आई है और वर्तमान तमिळ, आध्र, कन्नड, मलयालम, तुलु तथा दक्षिण मे बसनेवाली अनेक छोटी-छोटी जातियो की पूर्वज मानी जाती है। वर्तमान काल मे तमिळ, आध्र, केरल, कर्णाटक आदि प्रातो के अधिकाश निवासी इसी द्रविड जाति के वशज है और उनकी भाषाए द्रविड-परिवार से सबधित है। उनके आचार-विचार, रूप-रग तथा रहन-सहन एक-दूसरे से बहुत मिलते-जुलते है। इतिहास लेखको का मत है कि आर्य लोगो के भारत मे आने के कई हजार वर्ष पूर्व से ही द्रविड लोग दक्षिण भारत मे निवास करते थे और किसी समय सारे भारत मे फैले हुए थे। आर्यो के भारत मे प्रवेश करने के बाद वे उत्तर भारत को छोडकर दक्षिण मे चले आये और विंध्य के दक्षिण के प्रातो मे बस गये।

द्रविड भाषा-परिवार मे निम्नलिखित भाषाओ के नाम आते है—तमिळ, तेलुगु, कन्नड, तुलु, कूर्गी, कोड्गु, गोड, टोडा, कोट्टा, राजमहल, उराव और ब्राहुई। इन्ही भाषा-भाषियो के पूर्वज द्रविड माने जाते है। आज भी इस परिवार की भाषाए, महाराष्ट्र को छोडकर, समस्त दक्षिण भारत मे, मध्य भारत के कुछ पहाडी प्रदेशो मे तथा बिहार मे छोटा नागपुर के पहाडी इलाको मे प्रचलित है।

इनमे से केवल ब्राहुई ही एक ऐसी भाषा है, जिसका क्षेत्र भारत के बाहर, बलूचिस्तान है। इससे अनुमान होता है कि ब्राहुई भाषा बोलनेवालो के पूर्वज भी द्रविड ही रहे होगे।

कुछ विद्वानो का मत है कि द्रविड लोग पहले भूमध्यसागर (मेडिट्रेनियन) के पूर्वी तट पर एशिया माईनर या क्रीट, साइप्रस आदि एजियन द्वीपो मे रहते थे और यूनान की प्राचीन जातियो के साथ सबध रखते थे। उनका पुराना नाम 'द्रामिज' या 'द्रामिल' था। इसीसे द्रामिड, द्रामिल और द्राविड नामो की और अत मे 'तमिळ' नाम की उत्पत्ति हुई। एशिया माईनर के लिशियन लोग अपने को 'द्रम्मिली' नाम से पुकारते थे। इसी तरह हेलनिक सभ्यता के पूर्व के क्रीट निवासी, जो लिशियनो के पूर्व-पुरुष माने जाते है, 'तरमिल्लै' कहे जाते थे। इसी पुराने नाम मे समय-समय पर परिवर्तन होकर द्रामिल, द्रामिड, और तमिळ नाम बने। ये द्रामिल लोग या तो बलूचिस्तान और सिंध के रास्ते से, या समुद्र के मार्ग से दक्षिण भारत मे आये और बस गये। बलूचिस्तान की ब्राहुई भाषा मे तमिळ के समानार्थी शब्दो का पाया जाना इस अनुमान को पुष्ट करता है कि किसी समय द्रविड लोगो का घनिष्ट सबध बलूचिस्तान के साथ था।

द्रविड शब्द की उत्पत्ति के सबध मे सस्कृत विद्वानो का मत है कि यह शब्द सस्कृत का है और द्र (भागना) तथा विड (देश) के सयोग से बना है। आर्यों से पराजित होकर भारत के मूल निवासी उत्तर भारत को छोडकर दक्षिण की ओर भाग आये थे। अत उस भाग का नाम द्रविड पड गया। इस शब्द का दूसरा अर्थ भारत का दक्षिणी छोर भी हो सकता है। भारत का दक्षिणी कोना समुद्र मे धस गया है और तीन ओर से समुद्र से वेष्टित है। सभव है इस भौगोलिक स्थिति के कारण ही सस्कृत विद्वानो ने उसका नाम द्रविड दे दिया हो। कुछ लोगो का यह भी कथन है कि तमिळ शब्द का अपभ्रश-रूप ही 'द्रविड' है।

द्रविड शब्द का उपयोग अनेक अर्थो मे होता है। प्राचीन काल मे दक्षिण भारत को—अर्थात जहा द्रविड-परिवार की भाषाए बोली जाती है, उस विशाल भू-भाग को—दक्षिणापथ या द्रविड देश कहते थे। इसमे वर्तमान आध्र, तमिळ, कर्णाटक, केरल आदि प्रदेश शामिल थे। आगे चलकर आध्र और कर्णाटक उससे अलग हो गये और द्रविड शब्द तमिळ शब्द का पर्यायवाची बनकर रह गया और द्रविड देश की चौहद्दी तिरुपति की पहाडी से लेकर कन्याकुमारी तक, एव बगाल की खाडी

से लेकर अरव सागर तक सीमित रह गई। इस भू-खड मे केरल का वर्तमान प्रदेश भी सम्मिलित था। पर कालातर मे पश्चिमी घाट की पहाडी और घने जगलो द्वारा तमिळ देश से पृथक रहने और सस्कृत भापा और साहित्य से अधिक प्रभावित होने के कारण केरल देश तमिळ देश से अलग हो गया। उसने अपनी अलग भापा और अलग सस्कृति विकसित की। यद्यपि आज भी प्राचीन तमिळ सस्कृति की अनेक बाते ज्यो-की-त्यो केरल मे पाई जाती है, तो भी वहुत-सी बातो मे भिन्नता तथा पृथकता आ गई है। मलयालम भापा प्राचीन तमिळ और सस्कृत के मिश्रण से बनी है।

द्रविड शब्द का दूसरा अर्थ है, द्रविड देश का निवासी। इस अर्थ मे तमिळ, आध्र, केरल, कर्णाटक——इन चारो प्रातो के निवासी इसके अतर्गत आ जाते है। परतु आजकल प्राय इन प्रातो के निवासी अपने को द्रविड न कहकर तमिळ, आध्र, कन्नड आदि नामो से सबोधित करते है।

द्रविड नाम का उपयोग दक्षिण के ब्राह्मणो के लिए भी होता है। ब्राह्मणो के दो वर्ग माने गये है——पच-गौड और पच-द्रविड। विध्य के दक्षिण मे रहने-वाले ब्राह्मण प्राय पच-द्रविडो के नाम से प्रसिद्ध है। आर्यावर्त से दक्षिण मे जाने के बाद ब्राह्मणो के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन और आचार-विचार मे बहुत परिवर्तन हुए। अपने पुराने आचारो की रक्षा करने के हेतु कुछ कट्टरपन भी उनमे आ गया। उन्होने अपने लिए अनेक कठिन नियम बनाये, जिन्हे 'द्रविडाचार' या 'द्रविड-सप्रदाय' कहते है। इन नियमो को माननेवाले सभी ब्राह्मण अपने को पच-द्रविड मानते है। इस तरह तमिळ, आध्र, केरल और कर्णाटक के ब्राह्मण अपने को पच-द्रविड कहते है। इनके अतिरिक्त बबई प्रात मे रहनेवाले अनेक ब्राह्मण भी द्रविड-आचार के अनुकरण के कारण अपने को पच-द्रविड मानने लगे और वे भी पच-द्रविडो मे गिने जाते है। उत्तर के ब्राह्मण, जो इन द्रविडाचारो को स्वीकार नही करते, वे पच-गौड कहे जाते है। कोकण प्रात मे ब्राह्मणो की ऐसी शाखाए पाई जाती है, जिनकी गणना पच-द्रविडो मे न होकर पच गौडो मे होती है। अनुमान है कि ये लोग बहुत पीछे चलकर दक्षिण भारत मे आये होगे या द्रविडाचार को न स्वीकार करने के कारण ही पच-गौडो मे गिने गये होगे। आजकल दक्षिण के ब्राह्मण अपने को द्रविड न कहकर अपनी जाति के भिन्न-भिन्न नामो से अपने को सबोधित करते है।

तीसरे अर्थ मे द्रविड शब्द का प्रयोग दक्षिण के भाषा-परिवार के लिए होता है। डाक्टर काल्डवेल ने इसी अर्थ मे द्रविड शब्द का प्रयोग किया है। उन्होने दक्षिण की तमिळ, तेलुगु, मलयालम, कन्नड आदि भाषाओ को, जो आर्य-परिवार से सबध नही रखती, द्रविड-परिवार की भाषाए एव उनके बोलनेवालो को द्रविड कहा है। इससे प्रतीत होता है कि द्रविड शब्द द्रविड देश, द्रविड भाषा-परिवार और दक्षिण के ब्राह्मणो के लिए प्रयुक्त होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि तमिळ के प्राचीन ग्रथो मे सब जगह तमिळ नाम का ही प्रयोग मिलता है, जिससे प्रतीत होता है कि द्रविड शब्द की उत्पत्ति दक्षिण मे न होकर अन्यत्र हुई होगी और किसी दूसरी भाषा से यह शब्द लिया गया होगा।

द्रविड लोग कौन थे, कहा से आये थे और किस जाति विशेष के साथ उनका सबध था, ये दक्षिण भारत के ही मूल निवासी थे या किसी दूसरे देश से आकर यहा बसे थे, इन बातो के सबध मे विद्वानो मे बहुत मतभेद है। भिन्न-भिन्न विद्वानो ने इस विषय मे भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये है, परतु किसी मत के सबध मे यह नही कहा जा सकता कि यही मत प्रामाणिक तथा अतिम है।

आर्य ग्रथो से द्रविड जातियो के सबध मे कोई प्रामाणिक जानकारी नही प्राप्त होती। 'ऐतरेय ब्राह्मण' मे द्रविड लोगो को दस्यु लिखा है और आध्रो को ऋषि विश्वामित्र के निर्वासित पुत्रो की सतान कहा है। मनु ने लिखा है कि द्रविड लोग क्षत्रिय थे, परतु क्रिया और आचारहीन होने के कारण वृषल अर्थात शूद्र बन गये थे। हरिवश ने चोळो और केरलो को क्षत्रिय माना है, जो क्रियाहीनता के कारण राजा सगर द्वारा अपनी उच्च जाति और पद से च्युत कर दिये गये थे। परतु ये सारी कथाए कपोल-कल्पना मालूम होती है। इनसे इतना ही ज्ञात होता है कि आर्यों को द्रविडो की उत्पत्ति के सबध मे कोई स्पष्ट ज्ञान नही था। द्रविड भाषा-परिवार आर्य भाषा-परिवार से भिन्न और स्वतत्र है, अतएव उस भाषा को बोलनेवाले भी आर्यो से भिन्न जाति व परिवार के होगे, इसे मानने मे कोई बाधा नही। अत यह अनुमान ठीक नही कि द्रविड जाति की उत्पत्ति आर्यों से हुई और ये लोग क्षत्रिय या वृषल वर्ग के थे।

अब हम द्रविड जाति की उत्पत्ति और निवास-स्थान के सबध मे पाश्चात्य एव भारतीय इतिहासकारो के विचारो पर प्रकाश डालेगे।-

इस बात को समझने के लिए कि द्रविड लोग कौन थे और कहा से आये, हमे

भाषा-विज्ञान, प्राणीशास्त्र, भूगर्भशास्त्र आदि विषयों का थोड़ा-बहुत ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि इन्हीके आधार पर द्रविड जाति के मूल निवास-स्थान के संबंध में अन्वेषण या अनुमान किया गया है।

यों तो द्रविड लोगों के इस देश मे आने और बसने के संबंध में अनेक मत प्रचलित है, परंतु उनमें से विशेष रूप से प्रचलित सिद्धांत निम्नलिखित है

(१) द्रविड लोग समुद्र में लुप्त लेमोरिया देश के निवासी थे और वहां से आकर दक्षिण भारत में बसे।

(२) द्रविड लोग मध्य एशिया के पठार में मंगोलिया के समीप रहते थे और वहां से तिब्बत और असम के मार्ग से यहां आये।

(३) द्रविड लोग पश्चिम एशिया में असीरिया और एशिया माइनर के रहनेवाले थे और पश्चिम घाट के रास्ते से भारत में आये।

(४) द्रविड लोग भूमध्य सागर के तटवर्ती देशों में या क्रीट, साइप्रस आदि टापुओं में रहते थे।

(५) द्रविड लोग दक्षिण भारत के ही मूल निवासी है।

द्रविड लोगों के संबंध में सबसे दिलचस्प तथा प्रचलित सिद्धांत यह है कि वे जलमग्न लेमोरिया देश के निवासी थे और वहां से दक्षिण भारत में आये। इस मत के अनुसार भारत के दक्षिण-पूर्व में यव द्वीप (जावा) से लेकर पश्चिम में मेडागास्कर के टापू तक फैला हुआ एक विशाल भूखंड था, जिसका पूर्वी छोर आस्ट्रे-लिया से मिलता था और पश्चिमी छोर अफरीका को छूता था तथा उत्तर की ओर से यह देश दक्षिण भारत से लगा हुआ था। समुद्र में किसी विराट हलचल के कारण यह देश जलमग्न हो गया और यहां के निवासी भागकर दक्षिण भारत में आ बसे। प्रसिद्ध प्राणीशास्त्री डा० आर० डी० ओल्डम ने अपनी 'मैन्यूल ऑफ जॉगराफी ऑफ इंडिया' नामक पुस्तक में इस देश का नाम 'लेमोरिया' दिया है। यही लेमोरिया देश द्रविडों का आदि-निवास स्थान था और इस देश के जलमग्न होने पर या उसके कुछ समय पूर्व द्रविड लोग दक्षिण भारत में आये होंगे।

लेमोरिया के इस सिद्धांत का समर्थन अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने किया है, जिनमें से कीन, काटेलियट, ओल्डम और सर टी० वी० होल्डरनेस के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रोफेसर कीन का कथन है कि भूमध्य रेखा के दक्षिण में एक महादेश था,

जो पूर्व मे यव द्वीप से लेकर पश्चिम मे अफरीका तक फैला हुआ था। प्रथम मानव सृष्टि यव द्वीप या लेमोरिया प्रदेश मे ही हुई होगी। उनका विचार है कि सृष्टि का आरभ पृथ्वी के मध्य मे ही सवप्रथम हुआ होगा, क्योकि यहा की जलवायु इसके लिए अत्यत अनुकूल प्रतीत होती है। इनके अनुसार आस्ट्रेलिया के आदि-निवासियो और द्रविड लोगो के रूप-रग मे अनेक समानताए पाई जाती है, जिससे यह अनुमान होता है कि दोनो जातिया एक-दूसरे मे सबध रखती है।

काटेलियट ने अपने 'लॉस्ट लेमोरिया' नामक ग्रथ मे लिखा है—"कुमारी अतरीप के दक्षिण मे एक बहुत बडा भू-भाग था, जिसकी सीमाए पूर्व मे मलाया द्वीप-समूह से तथा पश्चिम मे मेडागास्कर तथा अफरीका से मिलती थी। इस सबध मे सीलोन और दक्षिण अफरीका मे पाई जानेवाली चट्टानो की प्राचीनता गौर करने लायक है।" वह लिखते है कि वर्तमान पश्चिमी घाट की पहाडिया लेमोरिया प्रदेश मे स्थित 'कुमरि मलै' की ही शृखलाए है। काटेलियट का यह भी कहना है कि अब तक इस पृथ्वी पर पाच बार प्रलय हो चुके है। ये प्रलय प्राय सब-के-सब एकदेशीय थे। इस तरह के प्रलयो का जिक्र धर्म ग्रथो मे भी मिलता है। हमारे देश मे मनु-कथा का आधार भी जल-प्रलय ही है। हिब्रू धर्म ग्रथो मे चालीस दिन और चालीस रात तक लगातार वर्षा होने के कारण घोर जल प्लावन और महाप्रलय होने का विस्तृत वर्णन दिया गया है। अनुमान है कि इसी प्रकार के एक प्रलय काल मे यह लेमोरिया देश समुद्र के गर्भ मे समा गया होगा।

ओल्ढम ने लिखा है—"अफरीका और दक्षिण भारत मे पाये जानेवाले पशु-पक्षी और वृक्ष एक-दूसरे से मिलते-जुलते है, जिससे प्रतीत होता है कि किसी समय दक्षिण भारत और अफरीका की भूमि एक-दूसरे से लगी हुई थी। दक्षिण भारत, उत्तर अफरीका और मिस्र मे पाये गये प्राचीन हथियार भी असाधारण तौर पर एक-दूसरे से मिलते-जुलते है।" दक्षिण भारत की कुछ जातियो मे आज भी नीग्रो जाति के चिह्न मिलते है। ये चिह्न विशेष तौर पर तमिळनाडु के इरुलर, कदिर, कुरुवर, पानियन आदि जातियो के लोगो मे देखे जा सकते है।

सर टी० वी० होल्डरनेस ने 'पीपुल एड दि प्रॉब्लम्स ऑफ इडिया' नामक पुस्तक मे लिखा है—"भारत का अतरीप, अर्थात दक्षिण भारत भू-तत्व के अनुसार हिमालय प्रदेश के इडो-गैजेटिक मैदान से सर्वथा भिन्न है। यह उस विशाल देश का अवशेष है, जो किसी समय अफरीका तक फैला हुआ था और जिसके स्थान

मे आज हिंद महासागर लहरा रहा है। दक्षिण मे हम लोग पृथ्वी के प्रारभिक युग मे है। यहा की भूमि आज भी उसी अवस्था मे है जिस अवस्था मे वह जीव-सृष्टि के पूर्व थी। तब पृथ्वी वन हो रही थी और ऊचे हिमालय तथा गगा की उपत्यका का कही ठिकाना भी नही था।'

बाहरी आधारो के साथ साथ प्राचीन तमिळ ग्रथो मे भी इस घटना का उल्लेख मिलता है। 'शिलप्पदिकारम', 'एट्टुत्तोहै', 'पत्तुपाट्टु' आदि प्राचीन तमिळ ग्रथो मे जो उल्लेख मिलते है, उनसे भी यह अनुमान होता है कि कुमारी अतरीप के दक्षिण मे एक बडा देश था, जो अब समुद्र के गर्भ मे समा गया है। इन ग्रथो से यह भी मालूम होता है कि वहा के निवासी सभ्य और सुसस्कृत थे। वे अनेक प्रकार की वस्तुए बनाने मे कुशल थे तथा दूर-दूर के देशो के साथ व्यापार करते थे। प्राचीन तमिळ ग्रथो मे कहा गया है कि पाडिय राज्य की सर्वप्रथम राजधानी दक्षिण मदुरा थी। यह वर्तमान मदुरा या शायद कन्याकुमारी के भी दक्षिण मे था। यदि यह अनुमान सत्य हो, तो यह दक्षिण मदुरा लेमोरिया मे ही रहा होगा। 'शिलप्पदिकारम' और 'मदुरा-स्थल पुराण' मे दक्षिण मदुरा के जलमग्न होने की कथा दी गई है। 'शिलप्पदिकारम' के भाष्यकार ने लिखा है कि कुमरि (कुमारी) और पहरुलि नदियो के बीच ७०० कवाटम (१ कवाटम १० मील के बराबर होता है) लबा एक विशाल देश था, जिसमे ४९ नदिया, अनेक पर्वत और विशाल जगल थे। कुमारी पर्वत के शिखर तक यह विशाल देश किसी बडी हलचल के कारण समुद्र के गर्भ मे समा गया।

यही लेमोरिया तमिळ लोगो का आदि निवास-स्थल माना जाता है।

डा० हटर आदि कुछ विद्वानो का मत है कि द्रविड लोग मध्य एशिया के निवासी थे और आर्यो के भारत मे आने के पूर्व ही इस देश मे आ गये थे। ये लोग मध्य एशिया मे बोली जानेवाली एक अविकसित भाषा बोलते थे। द्रविड लोग उन अनार्यो से भिन्न थे जिन्हे आर्य लोग दस्यु कहा करते थे। आर्य लोग द्रविडो को अपना मित्र समझते थे और आर्य राम ने रावण के साथ युद्ध मे द्रविडो से सहायता भी प्राप्त की थी।

इनका कहना है कि द्रविडो की दो शाखाए भारतवर्ष मे आई—कोलेरियन और द्रविडियन। पहली शाखा ने उत्तर-पूर्व की ओर से भारत मे प्रवेश किया और विध्य पर्वत के उत्तरी भागो पर अधिकार करके वहा बस गई। उसके कुछ

काल वाद असली द्रविडो की टोलिया उत्तर-पश्चिम की ओर से भारत मे आई। उन्होने कोलेरियन शाखा के लोगो को परास्त करके तितर-वितर कर दिया और स्वय उत्तर भारत मे वस गई। उसके पीछे कुछ दूसरी अनार्य जातिया भारत मे आई, जिन्होने द्रविडो को दक्षिण की ओर खदेड दिया। इस घटना के कई शताब्दियो के वाद ही आर्य लोग भारत मे आये।

श्री कनकसभै नामक एक तमिळ विद्वान का मत है कि द्रविड लोग पहले एशिया के पठार मे मगोलिया प्रात मे रहते थे और तिव्वत, नेपाल या आसाम के मार्ग से भारत मे आये। उन्होने दक्षिण मे आकर यहा के आदिम निवासियो को जगलो और पहाडो मे खदेड दिया और खुद समतल भूमि मे वस गये। उनके इस अनुमान का एकमात्र आधार तमिळ भाषा के कुछ वर्णो तथा चीनी-वर्मी तथा मगोलियन भाषाओ के कुछ वर्णो के उच्चारण मे समानता है। तमिळ भाषा का विचित्र अक्षर 'ळ' केवल तिव्वती भाषा मे पाया जाता है। इसीसे श्री पिल्लै ने द्रविड लोगो का सवध मगोलियन लोगो के साथ जोडने का प्रयत्न किया है।

कुछ पाश्चात्य विद्वान मानते है कि सर्वप्रथम मानव सृष्टि भूमध्य सागर और उसके आस-पास आरभ हुई और वही से वह सारे ससार मे फैली। इनके मत के अनुसार द्रविड लोग भी पहले भूमध्य सागर के तटवर्ती देशो मे रहते थे। प्रोफेसर पेरी का सिद्धात है कि सभ्यता का सर्वप्रथम विकास मिस्र (ईजिप्ट) मे ही हुआ। सुमेर और एलम की सभ्यताओ का आधार भी मिस्र की सभ्यता ही थी। उनका विश्वास है कि द्रविडो का मुख्य क्षेत्र भी यही मेडिट्रेनियन प्रदेश था। वह कहते है कि मेडिट्रेनियन और द्रविड जातियो की खोपडी की रचना, वर्ण, वाल, आखो के रग और शरीर-रचना असाधारण रूप से एक-दूसरे से मिलते है। द्रविड लोग तीन हजार वर्ष ईसा पूर्व से लेकर ई० पू० ८०० मे दक्षिण भारत मे आये। जेमिन हार्नवेल नामक विद्वान का भी यही मत है कि द्रविड लोग आरभ मे मेडिट्रेनियन तट पर रहते थे और मेसोपोटामिया के मार्ग से भारत मे आये और उस यात्रा मे कुछ काल तक वलूचिस्तान मे रहे। ब्राहुई भाषा मे तमिळ शब्दो के अस्तित्व का वह यही कारण मानते है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का कथन है कि द्रविड भूमध्य सागर (मेडिट्रेनियन) के आस-पास क्रीट मे रहनेवाली एक जाति मालूम होते है, जो एशिया माईनर और मेसोपोटामिया के मार्ग से यहा

आये और रास्ते मे कुछ काल तक सुमेर और एलम के निवासियो के सपर्क मे भी रहे। पहले ये लोग सिंध मे आये और वहा से दक्षिण भारत मे। सिधु घाटी, मेडिट्रेनियन प्रदेश, सुमेर, एलम आदि देशो मे सभ्यता के समान रहने से यह अनुमान होता है कि द्रविड लोग मेडिट्रेनियन समुद्र के आस-पास से ही भारत मे आये होगे।

द्रविड भाषाओ के तुलनात्मक व्याकरण के लेखक डा० काल्डवेल का खयाल है कि द्रविड भाषा का सबध युरल-आलटेक या फिनो-तारतारिक परिवार की भाषाओ से है। इस परिवार की अकेडियन भाषा सबसे उन्नतिशील थी और अत्यत सभ्य तूरानियन जातियो द्वारा बोली जाती थी। लेखक ने अकेडियन भाषा के अनेक शब्दो और व्याकरण के नियमो को लेकर तमिळ के शब्दो और नियमो के साथ उनकी समता दिखलाई है। बलूचिस्तान मे बोली जानेवाली ब्राहुई भाषा का तमिळ भाषा के साथ निकट सबध भी इस बात का समर्थन करता है कि द्रविड लोग किसी समय पश्चिम एशिया मे रहते थे और बलूचिस्तान से होते हुए भारत आये थे।

श्री डेनिज ब्रे, आई० सी० एस० ने तमिळ और ब्राहुई भाषाओ की तुलना करके बतलाया है कि दोनो एक ही परिवार की भाषाए है। श्री ब्रे का यह भी कथन है कि ब्राहुई बोलनेवाली और तमिळ बोलनेवाली जातिया शरीर-रचना मे भी एक-दूसरे से मिलती है। एच० आर० हाल नामक एक विद्वान ने मेसोपोटामिया की पहाडियो की उपत्यकाओ मे तमिळ बस्तियो का उल्लेख करते हुए लिखा है—"प्राचीन सुमेरियन लोग अपने अडोस-पडोस के सेमेटिक, आर्य तथा अन्य निवासियो से सूरत-शक्ल एव शरीर-रचना मे बिल्कुल भिन्न थे और उनकी भाषाए भी एक-दूसरे से भिन्न थी। ये निश्चय ही प्राचीन भारतीयो की आकृति के थे। आज भी एक साधारण भारतीय की मुखाकृति हजारो वर्ष पूर्व के द्रविड पुरखो की मुखाकृति से मिलती-जुलती है।"

नीचे हम ब्राहुई और तमिळ भाषाओ के कुछ मिलते-जुलते शब्दो को उद्धृत करते है, जिससे ज्ञात होता है कि दोनो भाषाए एक-दूसरी के कितने निकट है

तमिळ्	ब्राहुई
वाय	वा (मुह)
व	वै (पुआल)
कल	खळ (पत्थर)

विल	विल (धनुष)
कण	खन (आख)
मूक्कु	मुख (नाक)
तेल	तेलृ (बिच्छू)
पाल	पालूह (दूध)
तूगु	तुध् (सो)
इरडु	इरट् (दो सख्या)

मद्रास के चेंगलपटे, नेल्लूर, दक्षिण और उत्तर आर्काट जिलो मे खुदाई मे अनेक वस्तुए मिली है, जो बगदाद मे खुदाई मे प्राप्त वस्तुओ से समानता रखती है। ईसा की दूसरी शताब्दी मे 'मणिमेखलै' काव्य के रचयिता ने तमिळ देश के पुहार नगर मे प्रचलित मृत-सस्कार की निम्नलिखित रीतियो का उल्लेख किया है

(१) अग्नि-सस्कार, (२) पशु-पक्षियो के लिए मृत शरीर को मैदान मे छोड देना, (३) गाडना, (४) शरीर को गढो मे डाल देना, (५) मिट्टी के भाडो मे बदकर जमीन मे गाडना। इन रीतियो मे से दूसरी रीति प्राचीन काल मे ईरान (फारस) के निवासियो मे प्रचलित थी और आज भी भारत के पारसी लोग इस प्रथा का पालन करते है।

मृत-सस्कार की पाचवी रीति आर्यो के दक्षिण मे आने के पूर्व दक्षिण भारत मे द्रविड लोगो मे प्रचलित थी। मद्रास राज्य के तिरुनेलवेली जिले के आदिच्चनल्लूर और चेंगलपट जिले के पेरुबयार नामक स्थानो मे खुदाई करने पर पूर्व-आर्य युग की अनेक कब्रे मिली है, जिनमे मृत शरीर मिट्टी के घडे मे बद करके गाडे गये है और उनके साथ लोहे के अनेक आयुध तथा कौडियो के आभूषण भी रखे हुए है। मृत-सस्कार की यह रीति प्राचीन काल मे क्रीट, साइप्रस, अनातोलिया और बेबिलोनिया मे भी प्रचलित थी। हडप्पा और मोहनजोदडो की खुदाई मे भी इस तरह की कब्रे मिली है। आर्यो मे मृतको के अग्नि-सस्कार करने की प्रथा थी। मृतको को गाडने या घडे मे रखकर दफन करने की प्रथा शुद्ध द्रविडी मालूम होती है। इससे प्रतीत होता है कि दक्षिण भारत, क्रीट, साइप्रस, हडप्पा, मोहनजोदडो आदि स्थानो मे जो जातिया निवास करती थी, वे आर्यो से भिन्न थी और उनका एक-दूसरे के साथ परस्पर सबध था।

तमिळ के प्राचीन ग्रथो से मालूम होता है कि प्राचीन तमिळ असीरिया

और बेबिलोनिया के निवासियो की तरह ही खूख्वार, लडाके और बहादुर होते थे। वे शिकार और युद्ध के प्रेमी होते थे और धनुप और भाला धारण करते थे। वे मृत्यु की चिता नही करते थे और उसे गले लगाने को सदा तैयार रहते थे सभवत इसी जाति ने आगे चलकर सुमेरियन सभ्यता की नीव डाली थी इससे अनुमान लगाया गया है कि द्रविड लोगो का सबध असीरिया और मेसोपोटामिया की उपत्यका के निवासियो से रहा होगा और ये वही से चलकर भारत आये होगे।

मोहनजोदडो और हडप्पा की खुदाई ने भारत के प्राचीन इतिहास मे एक क्राति-सी पैदा कर दी है। इन खुदाइयो के पूर्व लोगो का खयाल था कि भारतवर्ष मे सभ्यता का विकास आर्यो के इस देश मे प्रवेश करने के बाद ही हुआ। आर्यो के आने के पूर्व का समय भारतीय इतिहास मे अधकारमय युग माना जाता था। मोहनजोदडो की खुदाई मे मिली वस्तुओ ने इस देश के प्रागैतिहासिक काल पर नया प्रकाश डाला है और भारतीय सस्कृति और सभ्यता की प्राचीनता के सबध मे लोगो के विचारो मे आमूल परिवर्तन कर दिया है। मोहनजोदडो का काल ईसा के पूर्व तीन हजार वर्ष माना जाता है। इससे सिद्ध हो गया है कि आर्यो के भारत मे प्रवेश करने के पूर्व इस देश मे एक बहुत ही उन्नत और विकसित सभ्यता वर्तमान थी। अनुमान है कि सिधु घाटी की सभ्यता का आरभ ईसा से ५००० वर्ष पूर्व हुआ होगा और ईसा पूर्व २५०० मे वह समाप्त हो गई।

सिधु घाटी की यह सभ्यता शुद्ध भारतीय थी, द्रविड थी, या किसी अन्य सभ्यता के साथ इसका सबध था—इन बातो के सबध मे अभी निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। सर जॉन मार्शल का विचार है कि यह सभव है इस सभ्यता का विकास सिंधु-घाटी मे ही हुआ हो। उनका कहना है कि यह सभ्यता द्रविड या शुद्ध भारतीय थी और आर्यो के भारत मे आने के पूर्व विकसित हो चुकी थी। डा० बनर्जी का कथन है कि इस सभ्यता का घनिष्ट सबध भूमध्य सागर की निकटवर्ती क्रीट और एजियन-सभ्यताओ के साथ था। परतु सिडनी स्मिथ इसका सबध सुमेर की सभ्यता से स्थापित करते है। प्राचीन सुमेर निवासी भारतीय द्रविडो की ही शक्ल के थे और उनकी भाषा भी द्रविड-परिवार की भाषा से मिलती-जुलती थी। इससे अनुमान होता है कि सुमेर के निवासियो और मोहनजोदडो के निवासियो मे घनिष्ट सबध था। डा० हाल का भी मत है कि सुमेरियन लोग सिधु घाटी के निवासी भारतीय द्रविडो की ही एक शाखा थे।

द्रविड लोगो के सबध मे अतिम सिद्धात उनके दक्षिण भारत के आदिम निवासी होने का है। इस मत के अनेक समर्थक है, जिनका कहना है कि द्रविड लोग कही बाहर से नही आये, वल्कि इसी भूमि मे पनपे और यही से वे समस्त दक्षिण भारत और उसके बाहर भी फैले। यही से वे व्यापार के नाते बलूचिस्तान भी पहुचे, जहा उन्होने अपनी सभ्यता और भाषा का प्रचार किया। डा० ग्रियर्सन ने लिखा है—"साधारण तौर पर यह माना जाता है कि द्रविड लोग भारत और विशेषकर दक्षिण भारत के आदिम निवासी है। हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नही है जिससे हम यह सिद्ध कर सके कि वे यहा के मूल निवासी नही है।"

सर हरवर्ट रेसली का कहना है कि "भौगोलिक स्थिति, आदिवासियो के बीच शारीरिक गुणो मे समानताए, सर्वभूत आत्मा मे उनका विश्वास, उनकी पृथक भाषा, उनके प्रस्तरो से बने स्मृति-चिह्न आदि को देखने से विश्वास होता है कि द्रविड लोग भारत के निवासियो मे सबसे प्राचीन है।" 'द्रविड लोग दक्षिण भारत के मूल निवासी है'—इस सिद्धात के सबसे बडे समर्थक प्रोफेसर श्री पी० टी० श्रीनिवास अय्यगार थे। उनका विश्वास था कि दक्षिण भारत की जवलायु, भौगोलिक स्थिति, वनस्पति, जीव-जतु एव दूसरी परिस्थितिया सब तरह से मानव सृष्टि के अनुकूल है। अतएव यह अनुमान करने की आवश्यकता नही कि द्रविड लोग किसी दूसरे देश मे विकसित होकर भारत मे आये। भारत की गौडीय-परिवार की भाषाओ और द्रविड-परिवार की भाषाओ की बनावट, व्याकरण और वाक्य-रचना मे इतनी अधिक समानता है कि तमिळ का वाक्य विना किसी परिवर्तन के आर्य भाषा-परिवार की किसी भाषा मे अनूदित किया जा सकता है। भारत के पूर्वी प्रातो की भाषाओ मे तमिळ भाषा के अनेक शब्द मिलते है। उदाहरणार्थ, वगाल मे छोटे गाव को पल्ली कहते है। यह तमिळ का शब्द है और तमिळ मे भी इसका प्रयोग छोटे गाव के लिए ही होता है। इससे भी यह अनुमान होता है कि द्रविड-परिवार की भाषा बोलनेवाले किसी समय समस्त भारत मे फैले हुए थे और तमिळ भाषा से सबध रखनेवाली कोई भाषा दक्षिण से लेकर पश्चिमोत्तर प्रात एव बलूचिस्तान तक फैली हुई थी। उनका यह भी कहना है कि सभ्यता के विकास के आदि काल से लेकर उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओ के चिह्न तमिळ देश मे ही मिलते है और प्रत्येक अवस्था के लिए आवश्यक और उपयोगी शब्द भी तमिळ भाषा मे मौजूद है। इन बातों के

आधार पर विद्वान लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि द्रविड जाति का मूल निवास ढूढने के लिए दक्षिण भारत को छोडकर कही अन्यत्र जाने की आवश्यकता नही।

श्री अय्यगार का यह भी मत है कि उत्तर-पाषाणकालीन (निओलिथिक) सभ्यता का आरभ आज से २०,००० वर्ष पूर्व भारत मे ही हुआ और यही से जल या स्थल मार्ग से असीरिया पहुचकर उसने सुमेर की सस्कृति को जन्म दिया। द्रविडो और सुमेरियनो की मुखाकृति मे समानता का यही कारण है। डा० चटर्जी ने भी इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है—"यदि सुमेर की सभ्यता के सबध मे डा० हाल के विचार प्रामाणिक माने जाय, तो यह स्वीकार करना पडेगा कि सभ्यता का आरभ सर्वप्रथम भारत मे हुआ और द्रविड जातियो द्वारा हुआ। यही से वह मेसोपोटामिया पहुची और वहा पहुचकर बेबिलोन की तथा अन्य प्राचीन सस्कृतियो की जन्मदात्री बनी, जो वर्तमान सभ्यताओ की जननी मानी जाती है।" डा० फरग्यूसन लिखते है कि "द्रविड लोग भारत मे ऐसे अज्ञात और प्रागैतिहासिक काल से निवास करते है कि उनके सबध मे यह कहना सभव नही कि वे कही बाहर से आकर यहा बसे। वे यहा के आदिम निवासी मालूम होते है। अनुमान यह है कि इनका मूल-निवास स्थान सुदूर दक्षिण मे मदुरा या तजाऊर के आस-पास रहा होगा और वही से वे सारे उत्तर भारत मे फैले होगे। उनमे कोई ऐसी प्रथा या आचार-विचार नही है, जिनसे यह कह सके कि वे बाहर से आकर यहा बसे थे और न किसी दूसरी जाति के साथ ही उनका सबध मालूम होता है। जहा तक हम लोगो को ज्ञात है, वे यहा के मूल और आदिम निवासी मालूम होते है।"

आर्य और द्रविड-परिवार की भाषाओ मे परस्पर सबध और सस्कृत मे द्रविड शब्दो का प्रयोग देखकर प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डा० काल्डवेल ने यह मत प्रकट किया है कि आर्य और द्रविड दोनो जातिया भारत मे फैलने से पूर्व कुछ समय तक एक ही स्थान मे रही होगी। उनका अनुमान है कि पहले द्रविड लोग पश्चिम एशिया से आकर पजाब मे बसे उसके बाद आर्य लोग आये। दोनो के कुछ काल तक आर्यावर्त मे एक ही साथ रहने के पश्चात द्रविड लोग दक्षिण की ओर चले आये। काल्डवेल के अनुसार द्रविड लोग महाभारत युद्ध के बाद ई० पू० ११ वी सदी मे दक्षिण भारत मे आये होगे।

इसी आशय का एक उल्लेख तमिळ भाषा के प्राचीन व्याकरण 'तोळकाप्पियम'

के भाष्यकार नच्चिनार्क्किनियर की रचना मे पाया जाता है। उन्होने द्रविड लोगो के दक्षिण मे आने के सबध मे लिखा है कि एक बार अगस्त्य मुनि द्वारका गये और वहा से कृष्णवश के अठारह राजा, वेल जाति के अठारह परिवार और अरुवलर जाति के कुछ लोगो को अपने साथ लेकर दक्षिण भारत मे आये। यहा पहुचकर उन्होने जगलो को साफ किया और अपने साथ आये हुए लोगो को उस स्थान मे बसाया। उनके बसाये हुए राज्यो मे द्वारसमुद्रम भी था, जो मैसूर राज्य मे स्थित है। तमिळ के प्राचीन कवि कपिलर ने (ईसा की दूसरी सदी मे) यहा के ४९ वे राजा की प्रशसा मे पद्य रचे थे। इससे अनुमान होता है कि द्वारसमुद्रम की स्थापना ई० पू० १०७५ मे हुई होगी। इसके वाद ही अगस्त्य मुनि तमिळ देश मे आये होगे।

कुछ अन्य विद्वानो का कथन है कि तमिळ लोगो मे 'नाग' नाम की जाति के लोग मिले हुए है और वर्तमान कल्लर, वेडर वगैरा प्राचीन नाग जाति के ही अग है। 'शिलप्पदिकारम' मे कहा गया है कि नाग पहाडो पर रहनेवाली एक जाति है। एक पर्वतीय प्रदेश वर्तमान वगाल की खाडी मे था, जिसका उल्लेख 'शिलप्पदिकारम' और 'मणिमेखलै' नामक तमिळ ग्रथो मे मिलता है।

दक्षिण मे अति प्राचीन काल से ही नाग जाति के लोग निवास करते थे। उनकी भी दो शाखाए थी। एक असभ्य और जगली और दूसरी अर्ध-सभ्य। ये दोनो शाखाए आस्ट्रेलिया की ओर से उस समय दक्षिण भारत मे आई, जिस समय दक्षिण भारत का स्थल-सबध उस देश के साथ था। दूसरी शाखा के आने के बाद पहली शाखा के लोग जगलो और पहाडो मे जा छिपे और बाद मे आनेवाले लोगो ने विशाखपट्टणम से लेकर कन्याकुमारी तक के समुद्र तटो पर फैलकर उन्हे अपना निवास-स्थान बनाया। पहली शाखा मे ही वानर और राक्षस जातियो के लोग थे। इनके वाद द्रविड लोग एशिया माईनर की ओर से भारत मे आये। ये काले नही थे। इनका रग तमिळ साहित्य के अनुसार 'आम के कोमल पत्तो के सदृश' था। ये लोग उत्तर-पश्चिम के मार्ग से महाभारत युद्ध के वाद, ईसा से लगभग ग्यारह सौ वर्ष पूर्व, दक्षिण भारत मे आये। अपनी लवी यात्रा मे ये लोग कुछ सदियो तक द्वारसमुद्रम मे रहे। वहा से भिन्न-भिन्न दलो मे चलकर सारे दक्षिण भारत मे फैल गये और इन्होने चोळ, चेर, पाडिय नामक तीन राज्य स्थापित किये।

आरभ मे इन्हे अर्ध-सभ्य नाग लोगो से सघर्ष करना पडा, पर धीरे-धीरे दोनो जातिया मिलकर एक हो गई।

इसमे सदेह नही कि आर्यो के भारत मे आने के पहले यह देश वीरान नही था। यहा जो जाति निवास करती थी, वह सभ्य, उन्नत और सुसस्कृत थी। वह गावो और नगरो मे निवास करती थी और भिन्न-भिन्न कलाओ मे प्रवीण थी। कुछ विद्वानो के मत के अनुसार आर्यो के भारत आने के पहले द्रविड लोग सारे भारत मे फैले हुए थे। भारत के उत्तर-पश्चिम भाग, पजाव और सिधु उनकी सभ्यता के मुख्य क्षेत्र थे, जहा उनके अनेक गाव और शहर बसे हुए थे। दक्षिण भारत की अनेक विशेषताए सिंधु प्रदेश, सुमेर, मिस्र और क्रीट मे मिलती है। मोहनजोदडो और हडप्पा के नगर भी शायद द्रविड सभ्यता के ही केंद्र थे। द्रविड लोग अति प्राचीन काल से नगर-निर्माण कला मे पटु थे। वे पशुओ को पालते थे और खेती-बारी भी करते थे। तमिळ के प्राचीन साहित्य मे दक्षिण की नगर-रचना का जो वर्णन मिलता है, उससे हडप्पा और मोहनजोदडो की रचना मे बहुत समानता पाई जाती है। मोहनजोदडो मे जो वरतनो के टुकडे मिले है, उनपर एक प्रकार की लिपि अकित पाई गई है जो खरोष्टी या ब्राह्मी लिपि से बिल्कुल भिन्न है। उसका कुछ-कुछ सबध क्रीट और साइप्रस के टापुओ मे प्रचलित प्राचीन लिपि से मालूम होता है। क्रीट और साइप्रस का सबध द्रविडो के साथ था, इसका उल्लेख हम पहले कर चुके है। कुछ विद्वानो का खयाल है कि मोहनजोदडो की लिपि प्राचीन तमिळ लिपि से सबध रखती है। यह भी सभव है कि यही लिपि आगे चलकर प्राचीन तमिळ और आर्यो की ब्राह्मी लिपि का आधार बनी हो, जो आज समस्त भारत की प्रधान लिपिया है।

प्राचीन तमिळ ग्रथो मे इस बात का कही उल्लेख नही मिलता कि द्रविड लोग इस देश को छोडकर कही बाहर से आये थे। तमिळ नाम उतना ही पुराना मालूम होता है जितना तमिळ देश, तमिळ भाषा और तमिळ या द्रविड जाति। प्राचीन तमिळ ग्रथो मे तमिळ देश को ही तमिळो की आदि-भूमि माना गया है और तमिळ देश के ही जीवन, प्राकृतिक एव भौगोलिक अवस्था का वर्णन मिलता है। पतजलि के महाभाष्य, कात्यायन की वार्तिका, अशोक के शिलालेख, सीलोन के प्राचीन ग्रथ तथा विदेशी यात्रियो के वर्णन मे प्राचीन तमिळ देश की सभ्यता व सस्कृति की गरिमा का उल्लेख मिलता है। इन ग्रथो मे कही इस बात

का उल्लेख नही होता है कि द्रविड लोग किसी बाहरी देश से आकर यहा बसे थे। डा० मेकलिन ने लिखा है कि द्रविड जाति इस देश के आदिम निवासियो मे से है और वह भारतवर्ष की या सभवत तमिळ देश की मूल जाति है।

द्रविड जाति के प्राचीन इतिहास पर अभी तक पूर्ण प्रकाश नही पडा है। परतु जितना ज्ञात हो सका है, उससे मालूम होता है कि यह जाति एक प्राचीन जाति है और कई हजार वर्षो से दक्षिण भारत मे निवास करती आई है। प्रागैतिहासिक युग मे भी इस जाति ने एक उच्च कोटि की सभ्यता का विकास किया था और सभवत सारे भारत मे और उसके बाहर भी अपनी सस्कृति और भाषा का प्रचार किया था। पश्चिमी एशिया की अनेक प्राचीन जातियो और सभ्यताओ के साथ इसका घनिष्ट सबध था। सभवत इसीने सिधु-घाटी की सभ्यता को जन्म दिया था और सुमेर, इलम, मिस्र आदि देशो की सभ्यताओ को भी प्रभावित किया था। द्रविड जाति का वास्तविक इतिहास अभी तक विद्वानो के अनुमान और कल्पना का विषय है। यदि किसी दिन इस जाति के प्राचीन इतिहास पर से अध-कार का परदा हटा, तो सभव है इसके सबध मे अनेक नये रहस्यो का उद्घाटन हो सकेगा।

: ३ :

तमिळ राजवंश

प्राचीन ग्रथो के अनुसार अनादि काल से तमिळहम मे चेर, चोळ, पाडिय नाम के तीन छोटे-छोटे राज्य विद्यमान थे। इतिहास मे इस प्रात के सबसे प्राचीन राजवशो मे इन तीन के नाम ही मिलते है। पाडियो का राज मदुरा और उसके दक्षिण मे कन्याकुमारी तक था। उसकी राजधानी मथुरा या मदुरा थी। चोळ वश कावेरी के किनारे, वर्तमान तिरुच्चिरापल्ली और तजाऊर के जिलो पर राज्य करता था। उसकी राजधानी पहले उरैयूर (तिरुच्चिरापल्ली) थी, फिर पुहार या कावेरी-पु-पट्टिणम और अत मे तजाऊर बनी। चेर वश का राज्य वर्तमान केरल प्रात पर था। उसकी राजधानी कोल्लम के पास करूर नामक स्थान मे थी। आरभ मे ये तीनो राज्य बहुत छोटे-छोटे थे।

इन तीनो वशो के सबध मे एक दतकथा प्रचलित है कि चेर, चोळ और पाडिय तीनो भाई थे। उनकी राजधानी ताम्रपर्णी नदी के किनारे कोर्कै थी। यही कोर्कै द्रविड-सभ्यता का सबसे प्राचीन केद्र था। कुछ दिनो के बाद तीनो भाई एक-दूसरे से अलग हो गये। पाडिय ने आकर मदुरा मे अपनी राजधानी स्थापित की, चोळ ने उरैयूर को और चेर ने करूर को अपनी राजधानी बनाया। पता नही, इस कथा मे कितनी सचाई है।

प्राचीन काल मे उत्तर भारत की तरह ही दक्षिण मे भी इतिहास लिखने की प्रथा नही थी, इसलिए आरभिक युग का दक्षिण का कोई क्रमिक इतिहास प्राप्त नही है। तमिळ के प्राचीन ग्रथो, ताम्र-पत्रो और शिला-लेखो के आधार पर दक्षिण के इतिहास की एक रूप-रेखा तैयार की गई है, जो कई स्थलो पर अपूर्ण और अस्पष्ट है। विशेषकर, पाचवी सदी ईसवी के पहले का तमिळ देश का इतिहास बिल्कुल अधकारमय है।

पाडिय, चोळ और चेर वशो मे अक्सर भयकर युद्ध हुआ करते थे। कभी एक वश की अभिवृद्धि होती तो दूसरे का पराभव होता, कभी तीसरा शक्तिशाली

होकर बाकी दोनो को अपने अधीन कर लेता। तमिळनाडु का प्राचीन इतिहास इन्ही तीन राजवशो के इतिहास से सबध रखता है।

प्रारभ मे चेर, चोळ और पाडिय तीनो राज्य आदिम जातियो के (ट्राइबल) राज्य थे। पाडिय लोग समुद्र के किनारे बसनेवाले पडवर जाति के थे और तमिळ देश के सुदूर दक्षिण भाग मे बसते थे, जहा नीम के वृक्ष अधिक होते है। इसीलिए इनका राजचिह्न नीम की शाखा था। इनका मुख्य व्यवसाय मछली पकडना था और ये चतुर नाविक थे।

चोळ लोग किसान (वेळ्ळाळर) थे और खेती-बारी के काम मे प्रवीण थे। ये कावेरी नदी के जल से सिंचित तजाऊर और तिरुच्चिरापल्ली के जिलो मे निवास करते थे। ये दोनो जिले खेती के लिए बहुत उपयुक्त है और आज भी ये तमिळनाडु के अन्नकोष के नाम से प्रसिद्ध है। आत्ति (अगस्त) का पेड इस प्रदेश मे बहुत होता है, इसलिए इस जाति का चिह्न अगस्त का फूल था।

चेर लोग कुरवर जाति के थे और तमिळनाडु के पश्चिम प्रदेश मे रहते थे। यह भाग विशेष रूप से पहाडी और जगली है। यहा ताड के पेड अधिक होते है, अत ताड का पत्ता और फूल इस जाति की प्रिय वस्तुए थी और ये ही इनके विशेष चिह्न भी थे। वास्तव मे ये तीनो जातिया प्राचीन द्रविड जाति से सबध रखती थी, पीछे चलकर जब आर्य लोग दक्षिण मे आये, तब ब्राह्मणो ने सूर्यवशी, चद्रवशी आदि उपाधियो से इन्हे विभूषित किया।

पांडिय वंश

ईसा पूर्व पाचवी शताब्दी से लेकर ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी तक तमिळ-साहित्य का सघम-काल था। इस अवधि मे इस भाषा मे अनेक ग्रथ रचे गये जो 'अहम' और 'पुरम' नाम से प्रचलित है। अहम मे अतर-प्रकृति, अर्थात धर्म, प्रेम, नीति आदि का वर्णन है। पुरम ग्रथो मे उस समय के राजाओ, उनके कार्य-कलापो और युद्ध एव दानशीलता के वर्णन है। इन्ही पुरम ग्रथो के आधार पर उस काल के इतिहास की रूप-रेखा तैयार की गई है। पर इनमे से अधिकाश बातो के अभी तक कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही मिले है।

सघम काल का सबसे पहला राजा, जिसका नाम तमिळ-साहित्य मे मिलता है, मुदुकुडुबी था। यह वैदिक सस्कृति का समर्थक था और ब्राह्मणो की मदद से

उसने कई यज्ञ किये थे और पलयागशालै (अनेक यज्ञो का कर्ता) की पदवी प्राप्त की थी। भारतवर्ष की एकता की कल्पना भी इस समय मे तमिळ देश मे प्रचलित हो चुकी थी। कवि लिखता है—"मुदुकुडुवी की कीर्ति उत्तर मे हिमालय से लेकर दक्षिण मे कन्याकुमारी तक और पूर्व के समुद्र से लेकर पश्चिम के समुद्र तक विस्तारित है।" मुदुकुडुवी के बाद दूसरा प्रसिद्ध राजा नेडुचेलियन हुआ। इसने तलयालगम के युद्ध मे विजय पाई थी, जो उस समय का एक बहुत बडा युद्ध माना जाता था। 'मदुरैकाची' नामक काव्य के नायको मे इसका भी स्थान है। अनेक अन्य कवियो ने भी इसकी कीर्ति गाई है, जिससे ज्ञात होता है कि नेडुचेलियन अपने समय का एक बडा प्रसिद्ध तथा प्रतापी राजा था। वह बहुत छोटी अवस्था मे सिहासन पर बैठा था। उसकी छोटी अवस्था के कारण चोळ और चेर राजा उस पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित हुए, परतु नेडुचेलियन ने उन्हे परास्त करके वापस भेज दिया और मदुरा को नष्ट होने से बचा लिया। इस घटना से प्रभावित होकर अनेक तमिळ कवियो ने उसकी प्रशसा मे पद रचे। इसी समय कोवलन और कण्णकी की दुर्घटना घटी थी, जिसमे कोवलन मारा गया था और कण्णकी के श्राप से मदुरा जल गया था। इसका विस्तृत वर्णन आगे तमिळ-साहित्य के इतिहास मे दिया गया है। निरपराध कोवलन की हत्या करने के कारण राजा को बडा क्षोभ हुआ और इसी दुख मे उसने अपने प्राण छोड दिये। नेडुचेलियन भी ब्राह्मण धर्म का हिमायती था और वेदपाठी ब्राह्मणो की मदद से उसने कई यज्ञ किये थे। यह राजा विद्वानो का बडा आदर करता था। तमिळ के प्राचीन कवि नक्कीरर, परणर आदि कवियो ने अपने-अपने ग्रथो मे उसकी कीर्ति गाई है। राजा स्वय भी कवि था।

इस काल मे पाडिय वश का अतिम प्रतापी राजा उग्र पाडियन था। इसके सबध मे अधिक विवरण प्राप्त नही, पर कहा जाता है कि इसने पुरम काव्यो का एक सग्रह तैयार कराया था।

इनके अतिरिक्त पुरम काव्यो मे अनेक अन्य राजाओ के भी नाम और सक्षिप्त वर्णन मिलते है, पर उनका कोई सिलसिलेवार इतिहास नही मिलता। शायद किसी कारणवश तीसरी शताब्दी मे पाडिय राज्य समाप्त हो गया, जिससे तीसरी से छठी शताब्दी तक इस वश का कोई इतिहास नही मिलता।

सघम काल के ग्रथो से मालूम होता ह कि उस समय के पाडिय राजा वडे वीर, उदार और विद्या-प्रेमी थे। उन्होने तमिळ-साहित्य की अभिवृद्धि के लिए विद्वानो का सघम स्थापित किया था, जिमसे साहित्य की वहुत उन्नति हुई। इस वश के कई राजा स्वय कवि और सघम के सदस्य थे। सघम काल के पाडिय राजा ब्राह्मण धर्म के समर्थक थे और यज्ञ आदि भी करते थे, पर वे दूसरे धर्मो की ओर भी काफी उदार रहते थे। देश मे बौद्ध और जैन-धर्मो का भी प्रचार था। मदुरा नगर मे इन दोनो धर्मावलवियो के कई मदिर व विहार थे।

राजा अपनी प्रजा को खुश रखना और धर्म से उसका पालन करना अपना कर्तव्य समझते थे। विद्वान और सत लोग देश मे घूम-घूमकर जनता को अपने-अपने धर्म का ज्ञान कराया करते थे। 'तिरुक्कुरल' ग्रथ मे राजा-प्रजा के कर्तव्य की जो व्यवस्था दी गई है, उससे यह प्रकट है कि उस समय मे शासन-तत्र वहुत उन्नत दशा को पहुच चुका था।

देश मे लोगो का सामाजिक जीवन भी वहुत ही सुसस्कृत और उन्नत था। 'मदुरेकाची' नामक ग्रथ मे मदुरा नगर और उसके निवासियो के रहन-सहन का वडा सुदर एव रोचक वर्णन पाया जाता है। उस समय मदुरा दक्षिण भारत मे कला-कौशल का वहुत वडा केद्र था। विलास और वैभव की सभी सामग्रिया यहा मिलती थी। लोगो का जीवन विनोद और आनद से भरा हुआ था। 'शिलप्पदिकारम' और 'मणिमेखलै' ग्रथो मे उस समय की सामाजिक अवस्था का वर्णन मिलता है।

पहला पाडिय साम्राज्य—ईसा की तीसरी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी के अत तक पाडियो का कुछ पता नही चलता। शायद इस अवधि मे दूसरे किन्ही राजाओ ने मदुरा पर अधिकार कर लिया था और पाडिय वश लुप्त-प्राय हो गया था। छठी शताब्दी के अत मे इस वश का फिर अभ्युदय आरभ होता ह।

इस अभ्युदय-काल का सवसे पहला प्रतापी राजा कडुकोन था। उसने शत्रुओ को जीतकर फिर से पाडिय वश का आधिपत्य स्थापित किया था। उसके वाद दूसरा प्रतापी राजा अरिकेसरी मारवर्मन हुआ। उसने उत्तर मे पल्लवो और पश्चिम मे चेरो को जीतकर अपना राज्य विस्तारित किया। इसीके समय मे तिरुज्ञानसवधर नामक प्रसिद्ध शैव सत पैदा हुए, जिन्होने पाडिय राजा को जैन-धर्म से शैव-धर्म मे परिवर्तित किया।

अरिकेसरी के वाद अरिकेसरी पराकुशन, मारवर्मन, राजसिहन, वरगुण महाराज, जटिल परातक, नेडुचेलियन, परातक, वीर नारायणन, वरगुण वर्मन, मारवर्मन राजसिह आदि राजाओ ने सन ६२० ईसवी तक मदुरा पर राज किया। इनके समय मे मदुरा की वहुत उन्नति हुई। पाडिय वश के अतिम राजाओ के काल मे वौद्ध और जैन-धर्मो का ह्रास और हिदु-धर्म की अभिवृद्धि होने लगी थी। सत माणिक्कवाचकर ने चिदवरम आदि स्थानो मे शास्त्रार्थ मे वौद्धो को परास्त करके वहुत से वौद्ध मतावलवियो को शैव-धर्म मे परिवर्तित कर लिया।

इस काल मे कई शैव और वैष्णव सत भी हुए। शैव सतो मे तिरुज्ञानसववर का नाम सवसे विख्यात है। उन्होने ईसा की सातवी शताब्दी के अत मे पाडिय राजा अरिकेसरी को जैन-धर्म से शैव-धर्म मे परिवर्तित किया था और वहुत से जैनो को शैव-धर्म मे मिला लिया था। यह भी कहा जाता है कि हजारो जैन, जिन्होने शैव-धर्म स्वीकार करने से इन्कार किया, तिरुज्ञानसवधर के आदेश से सूली पर चढा दिये गये।

ईसा की नवी शताब्दी मे चोळ वश का आधिपत्य पुन स्थापित हुआ और लगभग तीन सौ सालो तक पाडिय वश की शक्ति क्षीण पड गई। उन्होने कई वार चोळवशी राजाओ से युद्ध मे हार खाई और अत मे उनके अधीन हो गये। इस काल का पाडिय वश का इतिहास वहुत कम मिलता है।

दूसरा पांडिय साम्राज्य—वारहवी शताब्दी के आरभ मे चोळ साम्राज्य कमजोर पडने लगा। इस समय मदुरा पर विक्रम पाडिय का पुत्र जटावर्मन कुलशेखर पाडियन नामक एक योग्य राजा राज्य कर रहा था। चोळो की कमजोरी से फायदा उठाकर उसने स्वतत्रता की घोपणा कर दी। कुलशेखर पाडियन के वाद उसका छोटा भाई मारवर्मन सुदर पाडियन गद्दी पर वैठा। वह वडा वीर और योग्य शासक था। सिहासन पर वैठते ही वह अपने राज्य का विस्तार करने लगा। उसने चोळ देश पर आक्रमण किया। वहा का राजा युद्ध मे हारकर भाग गया और सुदर ने काची और तजाऊर को मटियामेट कर दिया। पर कुछ ही वर्ष वाद उसने चोळ राजा को वापस वुलाकर उसका राज्य उसे लौटा दिया। चोळो पर विजय पाने की यादगार मे सुदर पाडियन ने वीराभिपेक नामक यज्ञ किया।

आगे चलकर इस वश मे जटावर्मन सुदर पाडियन नामक वडा प्रतापी राजा हुआ। वह सन १२५१ मे मदुरा की गद्दी पर वैठा। उसने पाडियो के छोटे

से राज्य को बढाकर एक साम्राज्य मे परिणत कर दिया और करीब-करीब सारे दक्षिण भारत पर उसका अधिकार हो गया। दक्षिण मे सिहल, उत्तर-पश्चिम मे मैसूर और उत्तर मे नेल्लूर तक उसके राज्य की सीमा फैल गई। चोळ और चेर दोनो राज्य उसके अधीन हो गये। उसने चिदबरम और श्रीरगम के मदिरो मे जाकर भगवान की पूजा की, तुला-भार दिये और श्रीरगम के मदिर के गुबंद पर सोने के पत्तर लगवाये। उसने श्रीरगम के भगवान को बहुत से हीरे, मोती व सोने के बहुमूल्य आभूषण भी अर्पित किये।

इस कुल मे जटावर्मन कुलशेखर पाडियन, जटावर्मन वीर पाडियन और मारवर्मन कुलशेखर पाडियन आदि कई प्रतापी राजा हुए। शायद उनमे से कुछ सुदर पाडिय के समकालीन थे और उसके अधीन किसी प्रात विशेष पर राज्य करते थे। इन्ही पाडिय राजाओ के समय मे मार्को पोलो और वासफ नामक दो विदेशी यात्री यहा आये थे जिन्होने अपने यात्रा-विवरण मे पाडिय राज्य की अवस्था का विस्तृत वर्णन किया है।

इन दोनो यात्रियो के विवरण से मालूम होता है कि उस समय अरब के व्यापारी अक्सर नावो पर सुदर घोडे बेचने के लिए यहा लाया करते थे और उन्हे अच्छे दामो पर बेचते थे। पाडिय राजा घोडो के बडे शौकीन थे और प्रति वर्ष हजारो की तादाद मे घोडे खरीदते थे।

बहुत प्राचीन काल से पाडियो का देश मोतियो के लिए प्रसिद्ध है। उस समय भी समुद्र से मोती निकालने का काम खूब चालू था। प्रति वर्ष व्यापारी मछुओ को लेकर समुद्र मे जाते और मोती निकलवाते थे। जितने मोती निकलते, उनका दसवा हिस्सा पाडिय राजा लेते थे। राजा के खजाने मे बडे-बडे और सुदर मोतियो का एक बडा भडार था।

मार्को पोलो लिखता है—"पाडिय राजा के पास अपार सपत्ति है। उसका खजाना हीरे, जवाहरातो तथा सोना-चादी से भरा हुआ है। राजा के खजाने मे १२०० करोड सोने की मोहरे है। राजा हीरे-मोती से जडे हुए बहुमूल्य आभूषण पहनता है। वह रोज आभूषण पहनकर मदिर मे पूजा करने जाता है।" मार्को पोलो ने यह भी लिखा है कि राजा के कई सौ पत्निया है।

लोगो के रहन-सहन के बारे मे वह लिखता है—"यहा लोग बहुत कम कपडा पहनते है। कपडा सीने के लिए दर्जी नही मिलते। सब लोग करीब-

करीब नगे रहते है। राजा भी खाली वदन ही बाहर निकलता है। लोग अपना घर गोवर से लीपते है। गाय की पूजा करते है और गो-मास कभी नही छूते। सभी स्त्री-पुरुष दिन मे दो बार स्नान करते है। जो स्नान नही करते, उनसे लोग नफरत करते है। लोग वर्तनो को जूठा नही करते, यानी वर्तन को मुह से लगाकर पानी नही पीते। शराव पीनेवालो और समुद्र-यात्रा करनेवालो का कोई विश्वास नही करता। शराव वहुत कम लोग पीते है। यहा वहुत से ज्योतिषी है, जो लोगो की आकृति देखकर उनका चरित्र व भविष्य वतला देते है। लोग अपने वच्चो की जन्म-पत्री लिखवाते है और उसके फलाफल के अनुसार काम करते है। यहा के लोग एक तरह का पत्ता (पान) मुह मे रखकर चवाते रहते है। राजा भी ऐसा ही करता है।"

इस तरह की अनेक वाते मार्को पोलो ने अपनी पुस्तक मे लिखी है, जो उस समय यहा प्रचलित थी और जिनमे से वहुत सी वाते आज भी तमिळ प्रात मे देखने को मिलती है।

जटावर्मन कुलशेखर पाडिय के दो पुत्र थे। एक विवाहिता स्त्री से, जिसका नाम सुदर पाडिय था और दूसरा अविवाहिता स्त्री से, जिसका नाम तिरा पाडिय था। शायद तिरा ज्यादा योग्य था, इसलिए कुलशेखर ने उसीको अपना उत्तराधिकारी चुना। इसपर सुदर और तिरा मे झगडा हो गया। सुदर ने क्रोध मे आकर अपने पिता की हत्या कर दी और गद्दी पर अधिकार कर लिया। इस पर तिरा और सुदर मे अनेक युद्ध हुए। अत मे तिरा की जीत हुई और सुदर राज्य छोडकर भाग गया।

इस घरेलू युद्ध के कारण पाडिय राज्य बहुत कमजोर हो गया। इसी समय दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के एक सेनापति मलिक काफूर ने मदुरा पर चढाई कर दी। वह मदुरा पर विजय तो न पा सका, पर इस आक्रमण से राज्य की शक्ति नष्ट हो गई। मलिक काफूर के धावे से मदुरा सभलने भी न पाया था कि चेर राजा रविवर्मन कुलशेखर ने उस पर चढाई करके उसे अपने अधिकार मे कर लिया। इसके वाद से पाडियो की उत्तरोत्तर अवनति होती गई और ईसा की सोलहवी शताव्दी के अत मे पाडिय राज इतिहास के पृष्ठो से सदा के लिए मिट गया।

जटावर्मन सुदर पाडियन, मारवर्मन कुलशेखर पाडियन आदि राजाओ के

समय के वहुत से शिलालेख मिलते हैं, जिनसे उस समय की सामाजिक अवस्था का पता चलता है। पाडिय राजा वडे उदार और दानी होते थे। देश मे ब्राह्मणो का वडा आदर था। राजा लोग मदिरो और वेद-पाठी ब्राह्मणो को जागीरे दिया करते थे, जिनको 'देवदान' कहते थे। प्रत्येक गाव मे एक वडा मदिर होता था। मदिर गाव के सामाजिक और आर्थिक जीवन का केद्र होता था। लोगो के घर मदिर के चारो तरफ वने होते थे। भिन्न-भिन्न लोगो के लिए मदिर मे अलग-अलग सेवाए नियत थी और उसके लिए उनको जागीरे मिली होती थी। ब्राह्मण मदिरो मे पूजा और वेदपाठ करते, माली पूजा के फूल पहुचाते, तेली तेल और ग्वाले दूव और घी लाते थे। इसी तरह हर तरह की सेवा के लिए अलग-अलग आदमी नियुक्त थे।

प्रत्येक मदिर के पास पर्याप्त जायदाद होती थी, जिसकी आमदनी से पूजा-आदि की व्यवस्था होती थी। राजा के अतिरिक्त गाव की पचायते और अन्य लोग भी मदिरो को जागीरे दिया करते थे। अगर किसी अपराधी की जायदाद जब्त होती, तो वह मदिर को दे दी जाती थी। मदिरो मे वडे-वडे वखार होते थे, जिनमे अन्न जमा रहता था। सकट या अकाल के समय लोगो को मदिर से अन्न की सहायता मिलती थी।

मदिर विद्या के भी केद्र होते थे। प्रत्येक मदिर के साथ प्राय वेद-पाठशाला लगी रहती थी, जहा विद्यार्थियो को मुफ्त भोजन व शिक्षा दी जाती थी। कुछ मदिरो मे पुस्तकालय भी होते थे, जिनमे सव विषयो की पुस्तको का अच्छा सग्रह होता था। मदिर की दीवारो पर राजाज्ञाए और बहुत से ऐतिहासिक लेख खुदे रहते थे, जिन्हे पढकर लोग उनकी जानकारी प्राप्त करते थे। कभी-कभी सारा शहर मदिर की ऊची चहारदीवारियो के अदर वसा होता था। ये चहारदीवारिया शत्रुओ द्वारा आक्रमण होने पर शहर-पनाह का काम देती थी।

मदिर हर तरह से कला और कारीगरी के केद्र होते थे। उनमे पत्थर के काम करनेवाले, चित्र बनानेवाले, सोने-चादी के वर्तन और गहने बनानेवाले, मूर्तिया वनानेवाले, गरज यह कि सव तरह के व्यवसायी, रहते थे और प्रत्येक का किसी-न-किसी तरह मदिर के साथ सबध अवश्य होता था और उसे वहा से सहायता मिलती थी। दक्षिण मे उस प्राचीन सभ्यता के अनेक चिह्न आज भी मिलते हैं। वास्तव मे दक्षिण का इतिहास वहुत हद तक यहा के मदिरो के साथ लगा हुआ है।

चोळ वंश

दक्षिण के राजवशो मे चोळ वश सबसे प्रसिद्ध और प्रभावशाली था। ईसा की दूसरी शताब्दी के पहले से ही वर्तमान तजाऊर और तिरुच्चिरापल्ली के जिलो पर इस वश का राज्य था। इस वश की पहली राजधानी तिरुच्चिरापल्ली के पास उरैयूर थी और बाद मे कावेरी नदी के मुहाने पर कावेरि-पु-पट्टिणम हुई। पाडिय वश की तरह इस वश का भी प्राचीन इतिहास अप्राप्य है। तमिळ के प्राचीन ग्रथो मे इस वश के सबध मे जो उल्लेख मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि चोळ राजा बडे ही विद्या-व्यसनी और कला-प्रेमी थे। इनके समय मे तमिळ साहित्य की अच्छी उन्नति हुई थी और इन राजाओ ने अनेक कवियो और विद्वानो को आश्रय दिया था।

पुराणो मे चोळ वश के प्राचीन राजाओ मे राजा शिवि, जिन्होने एक बाज से कबूतर की रक्षा की थी, राजा कुबेर, जो कावेरी नदी के पिता थे, राजा मशु-गुडन, जिन्होने किसी युद्ध मे इद्र की सहायता की थी, मनु, जिन्होने एक गाय की फरियाद सुनकर अपने अपराधी पुत्र के शरीर पर रथ चलाया था, आदि नाम दिये गये है। पर ये नाम केवल पौराणिक और काल्पनिक मालूम होते है। इनका कोई ऐतिहासिक आधार नही। इस वश के राजाओ मे सर्वप्रथम एव सबसे प्रतापी राजा, जिसकी कीर्ति गाथा तमिळ कवियो ने गाई है और जिसकी शासन-कुशलता की प्रशसा इतिहास लेखको ने की है, वह करिकाल चोळ था।

करिकाल ईसा की पहली या दूसरी शती मे चोळ देश पर राज्य करता था। चोळ देश अतीत काल मे ही अत्यत सपन्न और उपजाऊ रहा है। इसके मध्य से होकर कावेरी नदी बहती है और अपने जल से इस राज्य की भूमि को उर्वर बनाती है। करिकाल अत्यत चतुर, राजनीतिज्ञ और प्रतापी राजा था। उसने वेण्णी के युद्ध मे पराक्रमी चेरल आडन नामक चेर राजा को परास्त किया था। चेर नरेश ने अपनी पराजय मे लज्जित होकर युद्ध-भूमि मे ही आत्महत्या कर ली थी। कोविलवेण्णी की एक कवयित्री ने इस घटना का वर्णन निम्नलिखित शब्दो मे किया है

"हे करिकाल चोळ! तुम उन महाप्रतापी राजाओ की सतान हो, जो समुद्र मे बडे-बडे जहाजो को गति देनेवाली वायु पर भी नियत्रण रखते थे और जिनके

पास बलशाली हाथियो का एक बडा समूह था। तुम अपने शत्रु पर सिह के समान टूट पडे और युद्ध मे उसे परास्त करके अपना विक्रम दिखाया। शत्रु ने अपनी पीठ पर घाव लगने से लज्जित होकर युद्ध-भूमि मे ही अपने प्राण छोड दिये।"

कथा है कि उसने चेर और पाडिय राजाओ की सम्मिलित सेना को भी युद्ध मे परास्त करके अपनी कीर्तिध्वजा फहराई थी। यह भी कहा जाता है कि वह अपनी दिग्विजयी सेना को हिमालय पर्वत तक ले गया था और वहा अपना राज्य चिह्न—सिंह-मूर्ति—बनवाया था और मार्ग के सभी राजाओ पर विजय प्राप्त की थी। मगध, वज्र (बुदेलखड) और अवति के राजाओ के साथ उसकी गहरी मित्रता थी। उसने काची के पल्लव राजा को भी पराजित करके काची पर अधिकार कर लिया था और वहा से आगे बढकर आध्र देश मे वर्तमान कडप्पा और करनूल के जिलो पर अपना शासन स्थापित किया था।

परतु इन दिग्विजयो की अपेक्षा करिकाल के निर्माण-कार्य अधिक महत्व-पूर्ण कहे जा सकते है। उसने जगलो को साफ करके अनेक नगर और गाव बसाये। कावेरी नदी के दोनो तटो पर ऊचे और मजबूत बाध बनवाये, जिससे प्रति वर्ष आने-वाली बाढ से देश की रक्षा हो। उसने कावेरी नदी के मुहाने पर कावेरि-पु-पट्टीणम नामक प्रसिद्ध नगर बसाया और उसे व्यापार का बहुत बडा केद्र बनाया। फिर उरैयूर से हटाकर वह अपनी राजधानी कावेरि-पु-पट्टीणम मे ले गया। उसने बहुत से तालाब खुदवाये और उनके जल से खेतो को सीचने की व्यवस्था की। कावेरी से नहरे खुदवाई, जिससे किसानो को आबपाशी के लिए पर्याप्त जल मिल सके। इन प्रबधो के कारण चोळ राज्य की भूमि अत्यत उर्वर बन गई और देश धन-धान्य से सपन्न हो गया। राजाश्रय पाकर कावेरि-पु-पट्टीणम समुद्र के पूर्वी तट पर व्यापार का एक बहुत बडा केद्र बन गया और अनेक देशो के साथ व्यापार मे वृद्धि हुई। आयात और निर्यात के द्वारा भी राज्य को खासी आय होती थी और देश-विदेश की बहुमूल्य वस्तुए यहा के बाजारो मे भरी रहती थी।

करिकाल के समय मे चोळ देश बहुत सुखी और सपन्न था। देश मे शाति विराजती थी और प्रजा सतुष्ट थी। राजा विद्वानो का बडा आदर करता था। 'पट्टिणपालै' नामक काव्य की रचना इसीके समय मे हुई थी। इस ग्रथ मे करिकाल के राज्य का तथा कावेरि-पु-पट्टिणम नगर के वैभव का विस्तृत वर्णन है।

करिकाल के बाद इस वश मे दूसरा प्रतापी राजा चेरनशेगुट्टुवन हुआ। उसने

भी चेर और पाडिय राजाओ को युद्ध मे परास्त किया और देश मे शाति स्थापित की। शेगुट्टुवन के बाद चोळ वश की शक्ति क्षीण होने लगी और पाडिय वश का प्रभाव बढने लगा। उसी समय काची मे पल्लव राजाओ की बल-वृद्धि होने से बहुत काल तक चोळ वश अधकार मे विलीन हो गया।

प्रथम चोळ साम्राज्य—देश पर से यद्यपि चोळो का आधिपत्य चला गया था, तो भी उस वश के कई छोटे-छोटे राजा किसी तरह अपनी स्वतत्रता की रक्षा करते हुए राज्य कर रहे थे। सन ८६२ ई० के लगभग पाडिय और पल्लव राजाओ मे घोर युद्ध हुआ, जिससे दोनो राज्य बहुत कमजोर पड गये। विजयालय नामक एक चोळ राजा ने इस मौके से लाभ उठाकर तजाऊर पर अधिकार कर लिया और उसे अपनी राजधानी बनाकर अपना राज्य विस्तार करने लगा। अपने जीवन काल मे ही उसने एक विस्तृत राज्य स्थापित कर लिया। इसके बाद उसके पुत्र आदित्य ने अपराजित नामक पल्लव राजा को परास्त कर उत्तर मे बहुत दूर तक अपना राज्य विस्तारित किया। आदित्य का पुत्र परातक प्रथम भी बडा शक्तिशाली राजा हुआ। वह सन ६०७ ई० के आस-पास गद्दी पर बैठा और अपने राजत्व के तीसरे ही साल मे दक्षिण मे पाडिय राजा को हराकर लका पर चढाई कर दी और उत्तर मे उसने आध्र देश तक अपने राज्य की सीमा बढा ली। परातक एक योग्य शासक था। उसने अपने बल-विक्रम से देश मे शाति स्थापित कर राज्य की बहुत सुदर व्यवस्था की थी। वह बडा शिव-भक्त था। उसके समय मे वैष्णव और शैव आचार्यो द्वारा देश मे धार्मिक जागृति का आरभ हुआ।

जिस समय चोळ वश दक्षिण मे अपना राज्य फैला रहा था, उसी समय आध्र मे राष्ट्रकूट अपना राज्य विस्तारित करने मे सलग्न थे। उन्होने चोळो की विजयो से घबराकर उनपर चढाई कर दी। उस समय परातक का पुत्र राजदित्य तजाऊर की गद्दी पर था। उसने बडी बहादुरी से राष्ट्रकूटो का मुकाबला किया, पर तक्कोलम के युद्ध मे वह हार गया और मारा गया। राष्ट्रकूट राजा कृष्णन तृतीय ने काचीपुरम पर अधिकार कर लिया और तजाऊर पर चढाई की। पर किसी तरह चोळो ने तजाऊर को बचा लिया। इसके कुछ काल बाद राष्ट्रकूटो की शक्ति कम होने लगी। इधर मौका पाकर चोळ राजा अपना खोया हुआ वैभव फिर से एकत्रित करने लगे। इसी समय इस वश मे जगत्प्रसिद्ध राजराज चोळ का जन्म हुआ।

द्वितीय चोळ साम्राज्य—राजराज चोळ चोळ वश का सबसे चतुर, नीति-

कुशल और प्रतापी राजा था। वह बचपन ही से बडा योग्य और होनहार था। जब उसका चाचा उत्तम चोळ राज करता था, तब राजराज उसका सलाहकार बनकर राज-काज मे उसकी सहायता करता था। उत्तम चोळ के मरने पर सन ९८५ ई० मे राजराज गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते ही उसने राज्य की भीतरी दशा का सुधार करना आरभ कर दिया। उसने ऐसी व्यवस्था की जिससे राज्य मे होनेवाले सभी उपद्रव शात हो गये और सर्वत्र सुख-शाति विराजने लगी। इस काम से छुट्टी पाकर वह अपना राज्य बढाने लगा। उस समय चोळ राज्य चारो तरफ से शत्रुओ से घिरा हुआ था। दक्षिण मे पाडिय, पश्चिम मे चेर, उत्तर-पश्चिम मे चालुक्य और उत्तर-पूरब मे गगा राजा चोळ राज्य की सीमाओ को सकटपूर्ण बना रहे थे। राजराज ने कुछ को अपनी नीति से और कुछ को युद्ध मे परास्त करके अपने वश मे कर लिया। उसने अपने शासन-काल के १४ वे वर्ष मे पाडियो को परास्त किया तथा १६ वे वर्ष मे पश्चिम मे कोल्लम (केरल) और कलिगम (उडीसा) पर अधिकार कर लिया। इसके बाद धीरे-धीरे मैसूर, सिहल, मालद्वीप तथा दक्षिण-भारत के आस-पास के द्वीपो को जीतकर उन्हे अपने राज्य मे मिला लिया। दक्षिण के देशो को जीतने के बाद उसने उत्तर की ओर अपनी सेना भेजी। यह सेना दिग्विजय करती हुई गगा के किनारे तक पहुच गई और बगाल के राजाओ को परास्त करके बहुत सा गगा-जल साथ लेकर वापस लौटी। राजराज ने तिरुच्चिरापल्ली जिले मे गगैकोडचोळपुरम मे एक बहुत बडा तालाब खुदवाया और उत्तर से लाये हुए गगा-जल से इस तालाब को पवित्र किया। उत्तर-विजय की यादगार मे उसने अपना नाम 'गगैकोडचोळन' (गगा को लाने-वाला चोळ) रखा। उसने बर्मा, मलाया, सुमात्रा आदि देशो पर भी चढाई की थी और वहा अपना आधिपत्य स्थापित किया था।

राजराज के बाद इस वश का दूसरा प्रतापी राजा राजकेसरी वर्मन राजेद्र चोळ उर्फ कुलोतुगचोळ हुआ। यह राजराज चोळ का पोता था। वह लगभग सन १०७० ईसवी मे गद्दी पर बैठा। राजराज की मृत्यु के बाद कई छोटे-छोटे राजाओ ने विद्रोह कर दिया था। कुलोतुग ने सबको परास्त करके फिर से देश मे शाति स्थापित की। उसने शत्रुओ से देश की रक्षा करने व विद्रोहियो को कब्जे मे रखने के लिए राज्य की सीमाओ पर योग्य सेनापतियो को नियुक्त किया। उसने कलिग देश पर फिर से विजय प्राप्त की।

कुलोतुग चोळ की मृत्यु के बाद चोळ साम्राज्य कमजोर पडने लगा। उसके उत्तराधिकारी उतने योग्य न थे। पाडिय आदि राजाओ ने बगावत शुरू कर दी और स्वतत्र हो गये। धीरे-धीरे १३ वी शताब्दी के अत मे चोळ साम्राज्य का अत हो गया।

चोळो की राज्य-व्यवस्था—चोळ राजा राज्य-व्यवस्था व देश-परिपालन मे बडे निपुण थे। आज से हज़ार वर्ष पूर्व उन्होने गावो के शासन, देवालयो के प्रबध, न्याय-सचालन, आबपाशी आदि की जो उत्तम व आदर्शपूर्ण व्यवस्था की थी, उसे पढकर आजकल के बडे-बडे राजनीतिज्ञ भी आश्चर्य मे पड जाते है।

चोळ राजाओ ने खेतो की सिचाई के लिए बडे-बडे तालाब व नहरे बनवाई थी। गगैकोडपुरम का प्रसिद्ध तालाब, जिसकी लबाई १६ मील है और जिससे तजाऊर और तिरुच्ची की बहुत सी भूमि सिचित होती है, राजराज का ही बनवाया हुआ है। उसने तजाऊर जिले मे खेतो की सिचाई के लिए कावेरी पर बाध बाधकर कई बडी-बडी नहरे भी खुदवाई थी, जिनमे मे कुछ नहरे आज भी वर्तमान है।

चोळ राजाओ को मदिर बनवाने का बडा शौक था। उन्होने तजाऊर जिले मे कई सौ मदिर बनवाये। तजाऊर मे बरदराज (शिव) का विशाल मदिर राजराज चोळ के वैभव की निशानी है। इस वश के अधिकाश राजा शैव थे, पर उनमे धार्मिक उदारता इतनी थी कि कई राजाओ ने वैष्णव और जैन मदिरो को बनवाने मे भी सहायता की। उन्होने तमिळ साहित्य की भी बडी अभिवृद्धि की।

चेर वंश

चेर वश का इतिहास अत्यत अधकारपूर्ण है। तमिळ के प्राचीन ग्रथो मे भी इस वश का कोई विस्तृत विवरण नही मिलता। अहम और पुरम सग्रहो मे कही-कही किसी राजा का उल्लेख मात्र मिलता है। इस वश का राज्य दक्षिण भारत के पश्चिमी भागो पर था, जिसे आजकल केरल कहते है।

इस वश का सबसे प्रसिद्ध राजा, जिसका उल्लेख तमिळ काव्यो मे मिलता है, चेरल आडन था। वेण्णी के युद्ध मे करिकाल चोळ ने उसे परास्त किया था। पीठ पर घाव लगने के कारण उसने युद्ध-क्षेत्र मे ही आत्महत्या कर ली थी। इस घटना का वर्णन तमिळ के अनेक प्राचीन ग्रथो मे मिलता है, जिससे प्रकट होता है कि आडन करिकाल चोळ का समकालीन था।

इस वश का दूसरा प्रतापी राजा उदयन चेरन आडन था। तमिळ देश मे यह कथा प्रचलित है कि इस राजा ने कौरव-पाडव युद्ध मे अठारह दिनो तक दोनो दलो को (भात का) भोज दिया था। उसके इस भोज का वर्णन कई प्राचीन पद्यो मे मिलता है। किंतु इस कथा की सत्यता पर विश्वास करना कठिन है। सभव है, उदयन ने अपने यहा महाभारत का नाटक रचाया हो और दोनो दलो के अभिनेताओ तथा दर्शको को भोज दिया हो। यह राजा सभवत पाचवी शताब्दी ईसवी मे राज करता था।

उदयन का पुत्र नेडुचेरल था। तमिळ के प्राचीन ग्रथ 'पत्तु पाट्टु' मे इसका वर्णन मिलता ह। इसने समुद्र मार्ग से चलकर किसी द्वीप को विजय किया था और जगलो को साफ करके कई मदिर वनवाये थे। यह भी कथा है कि उसने कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक अनेक देशो पर विजय प्राप्त की थी और इस दिग्विजय के उपलक्ष्य मे उसने 'सात मुकुटो की माला' अपने गले मे धारण की थी, जो राजा के दिग्विजयी होने का चिह्न माना जाता था।

नेडुचेरल का पुत्र वेलकेलु कूट्टुवन था। ऐसा ज्ञात होता ह कि यह भी चेर वश का एक प्रतापी राजा था। प्राचीन तमिळ ग्रथो मे इसके वल-विक्रम और दिग्विजय की कथाए बहुत वढा-चढाकर लिखी गई है। कहा जाता है कि उसने अपना शूल फेककर समुद्र को भी पीछे हटा दिया था।

प्राचीन तमिळ ग्रथो मे अनेक दूसरे चेर राजाओ के नाम भी मिलते है। किंतु उनके सवध मे कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलते। उनमे जो वर्णन है, उनके आधार पर इस वश का कोई सिलसिलेवार इतिहास अभी तक उपस्थित नही किया जा सका है।

पल्लव वंश

ऊपर हमने तमिळ देश के तीन प्राचीन राजवशो का उल्लेख किया है। लगभग इन्ही वशो के राजत्व काल मे काची पर पल्लवो का राज था। इस वश के राजाओ ने भी तमिळ देश के साहित्य एव कला-कौशल की अभिवृद्धि मे कुछ कम हिस्सा नही लिया था। किंतु यह आश्चर्य की वात है कि तमिळ के प्राचीन साहित्य मे पल्लवो का कोई उल्लेख नही मिलता। इतिहास के कुछ पृष्ठो से ज्ञात होता है कि ईसा की तीसरी शताब्दी से ही पल्लव लोग काचीपुरम पर

राज करने लगे थे। विद्वानो का मत है कि काची यद्यपि तमिळ देश के ही अतर्गत थी, किंतु वहा आर्य-सस्कृति और सस्कृत भाषा का अधिक प्रचार था। इसी कारण से तमिळ के कवियो ने उस नगर का एव पल्लव वश के राजाओ का अपने ग्रथो मे कही विस्तृत वर्णन नही किया है। परतु तमिळ देश की प्राचीन सस्कृति का परिचय प्राप्त करने के लिए इस वश का सक्षिप्त विवरण जानना आवश्यक है।

ईसा की पहली शताब्दी से लेकर पाचवी शताब्दी तक तमिळनाडु का इतिहास प्राय अधकारपूर्ण है। पाचवी शताब्दी मे काचीपुरम मे पल्लव वश के राजाओ का उदय होता है और उसके बाद लगभग चार सो सालो तक तमिळनाडु के इतिहास मे पल्लवो की प्रधानता देखी जाती है।

ये पल्लव कौन थे, कहा से आये थे, इस सबध मे बहुत मतभेद है। पल्लव राजा सस्कृत के प्रेमी थे। उनके दिये हुए अनेक दान-पत्र मिले है जिनमे से कुछ सस्कृत और कुछ प्राकृत मे है। इससे सदेह होता ह कि पल्लव लोग उत्तर भारत से आये थे और आर्य थे या आर्य-सस्कृति से प्रभावित हुए थे।

कुछ विद्वानो का मत है कि पल्लव लोग प्रसिद्ध वाकाटक शाखा से सबध रखते थे। ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर उसकी पाचवी या छठी शताब्दी तक मध्य भारत मे प्रतापी वाकाटको का राज्य था। उसीकी एक शाखा ने दक्षिण की ओर बढकर काची पर अधिकार कर लिया था और पल्लव वश चलाया था।

ईसा की दूसरी शताब्दी मे तमिळनाडु के कुछ भागो पर आध्र देश के प्रतापी राजवश शतवाहनो का राज्य था। आरभ मे पल्लव लोग उन्हीकी तरफ से क्षत्रप या गवर्नर की हैसियत से काचीपुरम पर शासन करते थे। ईसा की चौथी शताब्दी मे समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत पर धावा किया, जिससे शतवाहनो की शक्ति कमजोर पड गई। इस मौके से लाभ उठाकर पल्लवो ने अपने को स्वतत्र बना लिया और काचीपुरम मे स्वतत्र राज्य स्थापित किया। पर पल्लव लोग अब तक विदेशी समझे जाते थे। इस खयाल को लोगो के दिल से दूर हटाने के लिए उन्होने यहा के लोगो से विवाह-सबध आरभ कर दिया। सबसे पहले एक पल्लव राजा ने नाग जाति की किसी राजकुमारी के साथ विवाह करके अपने राज्य की जड मजबूत की और दहेज मे बहुत सी भूमि भी प्राप्त की। ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर नवी तक तमिळनाडु के अधिकाश भाग पर पल्लवो का प्रभुत्व बना रहा।

इस वश का सबसे पहला प्रतापी राजा सिहविष्णु था। यह सन ५७५ ई० के आस-पास गद्दी पर बैठा और स्वतत्र पल्लव राज्य स्थापित किया। इस वश का दूसरा प्रतापी राजा महेद्रवर्मन था, जिसने ६०० ई० के आस-पास काची पर राज्य किया। इसने अपने अनेक शत्रुओ को जीतकर देश मे शाति स्थापित की और अपना राज्य दूर-दूर तक फैलाया। इसने चालुक्यो को हराकर उनकी राजधानी वातापी पर अधिकार कर लिया और सिहल (लका) पर भी चढाई की। मद्रास से करीब २० मील की दूरी पर महाबलिपुरम मे जो पत्थर की चट्टानो को काटकर रथ, मदिर आदि बनाये गये है, वे इसीके तत्वावधान मे बने थे। महेद्र बडा ही प्रतिभावान नरेश था। वह लेखक, कलाकार, सगीतज्ञ तथा कुशल चित्रकार था और इन्ही गुणो के कारण उसने 'विचित्र चित्त' की उपाधि प्राप्त की थी। वह सब धर्मो के प्रति समान भाव रखता था और जैन, बौद्ध, वैष्णव तथा शिव-भक्तो के लिए कई मदिर बनवाये थे। उसके राज्य-काल मे चीनी यात्री ह्वान च्वाङ भारत आया था और कुछ काल तक काचीपुरम मे ठहरा था। नदी-वर्धन पल्लव मल्ल इस वश का अतिम प्रतापी राजा था। उसने सन ७२७ से ७८२ तक राज्य किया। उसके समय मे चालुक्यो ने कुछ काल के लिए काची पर अधिकार कर लिया था, पर नदीवर्धन ने दक्षिण के पाडिय आदि राजाओ की सहायता से फिर काची पर पल्लवो का आधिपत्य स्थापित कर लिया। पल्लव मल्ल बडा विष्णु-भक्त था। उसने भगवान विष्णु के कई मदिर बनवाये। प्रसिद्ध वैष्णव सत तिरुमगै आळवार उसीके राज काल मे हुए थे।

नवी शताब्दी के मध्य मे चोळवशी राजाओ का प्रताप बढने लगा और पल्लवो का प्रभुत्व धीरे-धीरे नष्ट हो गया।

पल्लवो का समय दक्षिण मे अद्भुत धार्मिक जागृति और साहित्यिक उन्नति का काल था। इस काल मे अनेक वैष्णव और शैव आचार्य हुए जिनकी भक्ति-पूर्ण रचनाओ ने जनता मे बडी जागृति उत्पन्न की। पल्लव राजा हिंदू मतावलबी थे। उनका आश्रय पाकर देश मे हिंदू धर्म का प्रभाव बहुत बढा और जैन और बौद्ध-धर्म का ह्रास होने लगा। सारे देश मे बहुत से शिव और विष्णु मदिर बने। इस काल मे अनेक बडे-बडे कवि पैदा हुए, जिन्होने अपनी रचनाओ से तमिळ भाषा और साहित्य को समृद्धिशाली बनाया।

पल्लव राजा कला और विद्या के भी वडे प्रेमी थे। वे सस्कृत को अधिक प्रोत्साहन देते थे। उनके समय मे काचीपुरम कला और विद्या का बहुत वडा केंद्र वन गया। नगर मे वेदाध्ययन के लिए अनेक पाठशालाए स्थापित हुई, जिनमे दूर-दूर के विद्यार्थी पढने आया करते थे। इसी समय कवि भारवी ने अपना 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य सस्कृत मे लिखा और दडी ने 'काव्यादर्श' नामक ग्रथ की रचना की।

उस समय काची कला-कौशल और व्यापार का भी वडा केंद्र वन गया था। यहा वडे सुदर व बहुमूल्य कपडे व अन्य वस्तुए तैयार होती थी। दूर-दूर से व्यापारी लोग अपना माल वेचने और यहा की वनी वस्तुए खरीदने के लिए काची आते थे। विदेशो के साथ भी काची का व्यापारिक और सास्कृतिक सवध था। यहा मे ब्राह्मणो की एक टोली पूर्वी वोर्नियो मे जाकर वसी थी, जहा उन्होने कई यज्ञ भी किये थे। फाहियान ने अपनी पुस्तक मे लिखा है कि उस समय मलाया और सुमात्रा मे हिंदू-धर्म का वहुत प्रचार था और ब्राह्मण धर्म के माननेवाले लोगो की अनेक वस्तिया थी। पीछे चलकर ईत्जिग नामक एक चीनी यात्री को सुमात्रा मे सस्कृत का प्रचार देखकर आश्चर्य हुआ था। वहा उसे सस्कृत की वहुत सी पुस्तके देखने को मिली थी, जिनका प्रचार भारत मे था। इससे प्रकट है कि पल्लवो के समय मे जावा, सुमात्रा, वोर्नियो, मलाया आदि देशो मे हिंदू-धर्म और हिंदू-सस्कृति का अच्छा प्रचार हुआ था। सुमात्रा द्वीप मे वोरोवुदूर का हिंदू मदिर भी उसी युग मे वना होगा।

पल्लवो के समय मे पत्थर काटकर मदिर वनाने की कला का वडा विकास हुआ। जगह-जगह पर चट्टानो को काटकर मदिर वनाये गये। चट्टानो को खोदकर उन पर महाभारत व रामायण की कथाए चित्रित की गई तथा हिंदू देवी-देवताओ की सुदर-सुदर मूर्तिया वनाई गई। ये मदिर और चित्र आज भी मद्रास के पास महावलिपुरम, काची, तिरुच्चिरापल्ली आदि जगहो मे देखने को मिलते है। महावलिपुरम के पच-रथ एक-प्रस्तरी कला के अद्भुत नमूने है। ये रथ एक ही पत्थर को काटकर भीम, अर्जुन आदि पाच पाडवो के नाम पर वनाये गये है। इनका निर्माण सातवी शताब्दी के आरभ मे हुआ था।

: ४ :

तमिळ भाषा

ससार की प्राचीनतम भापाओ में तमिळ का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह द्रविड-परिवार की भापाओ मे सबमे पुरानी और समृद्ध है। वर्तमान काल मे इसका क्षेत्र तमिळनाड् के जिले और लका का उत्तरी भाग है। इसके बोलनेवालो की सख्या लगभग तीन करोड है। श्री एम० हावेल के अनुसार ससार मे बोली जानेवाली ५०० भापाओ में तमिळ का एक मुख्य स्थान है। कुछ विद्वानो ने इसका सबध यूरल-अलताई भापा-परिवार मे और कुछ लोगो ने आस्ट्रेलिया की आस्ट्री भापा के साथ जोडने का प्रयत्न किया है।

तमिळ पुराणो मे लिखा है कि तमिळ भापा का निर्माण भगवान शिव के द्वारा किया गया और उन्होने ही अगस्त्य मुनि को तमिळ व्याकरण का उपदेश दिया। पर यह तो किवदति मात्र है। इससे इतना ही ज्ञात होता है कि अज्ञात काल मे तमिळ भापा इस देश मे प्रचलित है और यहा की यह मूल भाषा है।

तमिळ के दो रूप है—शेतमिळ और कोडुनतमिळ। प्राचीन काल में ही भापा का साहित्यिक रूप बोल-चाल के रूप से अलग हो गया था। उसके साहित्यिक रूप को 'शेतमिळ' और बोल-चाल के रूप को 'कोडुनतमिळ' कहते थे। शेतमिळ का प्रधान केंद्र मदुरा और उसके आस-पास की भूमि थी, जहा तमिळ सघम की स्थापना हुई थी। तमिळ देश के बाकी प्रदेशो मे कोडुनतमिळ का प्रचार था। पिछले दो हजार वर्षो मे तमिळ भापा मे बहुत से परिवर्तन हुए है। बहुत से शब्द, जो आज से हजार वर्ष पूर्व प्रयोग मे आते थे, भापा से निकल गये है और उनका स्थान नये शब्दो ने ले लिया है, जिससे प्राचीन ग्रथो को समझने के लिए काफी प्रयत्न और अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है।

द्रविड-परिवार की मुख्य भापाए तमिळ, तेलुगु, मलयालम और कन्नड है। इनकी बनावट, इनका मौलिक शब्द-भडार और इनका व्याकरण बहुत बातो मे

सस्कृत और सस्कृत-जन्य भाषाओ से भिन्न है। कुछ विद्वान भारतीय भाषाओ के दो परिवार मानते है—पचगौडीय और पचद्रविड। तेलुगु, कन्नड, मलयालम और तमिळ द्रविड-परिवार की भाषाओ मे प्रधान है। ये चारो भाषाए सस्कृत से स्वतत्र है और इनका सबध द्रविड-परिवार से है, यद्यपि पीछे चलकर इन चारो भाषाओ पर कम-बेशी मात्रा मे सस्कृत का प्रभाव पडा है। प्राय एक भाषा दूसरी भाषा से सज्ञाए, विशेषण आदि ही उधार लेती है, सर्वनाम, क्रियापद, विभक्तिया आदि उसकी निजी सपत्ति होती है। द्रविड-भाषाओ मे भी सस्कृत के जो शब्द आये है, उनमे से अधिकाश शब्द ऐसे ही है जो धर्म और सस्कृति से सबध रखते है। इससे स्पष्ट है कि इन शब्दो का प्रचार आर्य-सस्कृति के दक्षिण मे फैलने के बाद ही हुआ होगा।

कुछ विद्वानो ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि द्रविड-भाषाए आर्य-भाषा से ही निकली है, परतु यह मत सर्वमान्य नही। अधिकाश विद्वान इसी मत के पोषक है कि द्रविड-परिवार की भाषाए आर्य-भाषा से भिन्न और स्वतत्र है, यद्यपि समय-समय पर एक-दूसरे से लेन-देन होता रहा है। द्रविड भाषा-विज्ञान के विद्वान काल्डवेल का कथन है—"द्रविड लोगो का सबध तुरानियन जातियो से है। आर्यो के भारतवर्ष मे आने के पहले ही द्रविड-भाषाए बहुत विकसित हो चुकी थी। बनावट, शब्द-भडार आदि की दृष्टि से द्रविड-भाषाओ का सबध सस्कृत से न होकर तुरानियन और सेमेटिक-परिवार की भाषाओ के साथ है। इनमे आर्य-भाषाओ का जो अश पाया जाता है, वह आर्य और द्रविड दोनो के भारतवर्ष मे आने के पूर्व इडो-यूरोपियन और तुरानियन जातियो के साथ प्राग्-ऐतिहासिक काल मे निकट निवास का परिणाम है।"

तमिळ द्रविड-परिवार की सबसे पुरानी भाषा है। इस बात के अनेक प्रमाण मिलते है कि तमिळ भाषा सस्कृत से स्वतत्र हस्ती रखती है। प्रारभिक काल मे उसका विकास सस्कृत के प्रभाव से दूर रहकर ही हुआ था। खेती-बारी, खान-पान, नातेदारी, साहित्य एव कला, घर-गृहस्थी, व्यापार, नक्षत्रशास्त्र, वैद्यक, धर्म, राजनीति, प्रेम, युद्ध, माप-तोल आदि जीवन के सभी अगो से सबध रखने-वाले शब्द तमिळ भाषा मे मिलते है, जो इस भाषा की अपनी निजी सपत्ति है। उदाहरण के लिए—नाडु (देश), कै (हाथ), काल् (पैर), तिगल् (चद्र, महीना), ञायिरु (सूर्य), नेल् (धान), पाल् (दूध), मडै (वर्षा), पनि (ओस),

वेल्लि (चादी), ताय (मा), पोन् (सोना), अप्पन (पिता), अवु (तीर), विल् (धनुप), एळुत्तु (अक्षर), मुवडि (किताव), शोल् (शब्द), चेरिद (समाचार), कल्वि (शिक्षा), कळकम (सस्था), कोन (नायक), कडवुळ (भगवान) आदि शुद्ध तमिळ के शब्द हैं। सस्कृत, ग्रीक, लैटिन, केल्टिक आदि इडो-यूरोपियन-परिवार की भापाओ मे माता, पिता, भाई-जैसे शब्द एक ही मूल शब्द से सवध रखते है। सस्कृत 'पितृ' 'मातृ' शब्द ग्रीक मे 'पेतर' 'मेतर', लैटिन मे 'पातर' 'मातर' और अग्रेजी मे 'फादर' 'मदर' बन जाते हैं। परतु तमिळ मे इनके लिए स्वतत्र शब्द हैं—तहअप्पन (पिता), ताय (मा) आदि।

भापा की स्वतत्रता का निर्णय उसके मूल शब्दो, सर्वनामो तथा क्रियापदो को देखकर किया जाता है। तमिळ भापा के सर्वनाम, क्रियापद, विभक्तिया, सख्यावाचक आदि शब्द सस्कृत से बिल्कुल भिन्न है। ये शब्द किसी भी भापा की मौलिक और निजी सपत्ति माने जाते हैं। उदाहरण के लिए—सर्वनाम नान् (मै), नी (तुम), अवन् (वह—पु०), अवळू (वह—स्त्री०), अदु (वह—नपु०), आदि है। क्रियाए पो (जा), वा (आ), चेयि (कर), पार् (देख), केळ (सुन), कुडि (पी), अडि (मार), एळुदु (लिख), नड (चल), पेशु (बोल), एडु (ले), कोडु (दे), वै (रख), और विभक्तिया आल (से), कु (को), इल (में), उडैय (का) आदि है। तमिळ भापा के सख्यावाचक शब्द भी आर्य-परिवार के सख्या-वाची शब्दो से भिन्न हैं—ऑन्नु (एक), रडु (दो), मूण्रु (तीन), नालू (चार), ऐदु (पाच), आरु (छ), एळु (सात), ऍट्टु (आठ), ओबदु (नौ), पत्तु (दस)।

तमिळ का प्राचीन साहित्य सस्कृत के प्रभाव से मुक्त और प्राय स्वतत्र है। पुराने तमिळ के अहम, पुरम आदि ग्रथो मे सस्कृत के वहुत ही कम शब्द पाये जाते हैं। तमिळ का प्राचीन और प्रसिद्ध ग्रथ 'कुरळ' भापा, रचना और शैली की दृष्टि से एक स्वतत्र कृति माना जाता है। तमिळ मे व्याकरण लिखने की परिपाटी अत्यत प्राचीन काल से चली आई है। डॉ० वर्नेल्ड ने लिखा है—"दक्षिण भारत मे व्याकरण शास्त्र की रचना वहुत पहले प्रारभ हुई थी। यहा के लोग उसका दैवी आरभ मानते हैं, जिसका अर्थ यह होता है कि यह शास्त्र स्वतत्र और देशज है।"

अर्वाचीन तमिळ मे सस्कृत के वहुत से शब्द आ मिले हैं। तमिळ का सपर्क

मस्कृत के साथ किस समय आरभ हुआ, यह कहना कठिन है। वर्तमान तमिळ मे तो सस्कृत के शब्द मिलते ही है, परतु सघम-काल के तमिळ ग्रथो मे भी सस्कृत के कुछ थोडे से शब्द पाये जाते है, जिससे ज्ञात होता है कि सघम-काल मे ही तमिळ पर सस्कृत का प्रभाव पडना आरभ हो गया था। कुछ विद्वानो का कथन है कि दक्षिण भारत मे आने के पूर्व द्रविड लोग कुछ काल तक आर्यो के सपर्क मे रहे, इसलिए उनकी भापा मे आर्य भाषा-परिवार के अनेक शब्द आकर मिल गये है। इसके विपरीत अनेक विद्वानो का मत है कि आर्यो के दक्षिण भारत मे आने के बाद ही तमिळ मे सस्कृत शब्दो का प्रवेश हुआ। तमिळ ग्रथो के अनुसार अगस्त्य के ममय से ही आर्य लोग दक्षिण मे आने लगे थे, इसलिए सघम-काल से ही तमिळ भापा का सपर्क सस्कृत के साथ मानना चाहिए।

वर्तमान तमिळ मे प्रधानत दो प्रकार के शब्द है—शुद्ध तमिळ के और सस्कृत के। माल व अदालत से सबध रखनेवाले थोडे से फारसी-अरबी के शब्द भी मिलते है, जिनका प्रचार मुसलमानी सल्तनत के समय मे हुआ था। तमिळ के कुछ शब्द सस्कृत मे भी मिलते है। विशप एम० काल्डवेल ने ऐसे शब्दो की एक लबी सूची दी है, जो उनके मतानुसार तमिळ मे सस्कृत मे गये है। उनमे से कुछ शब्द ये है—अक्का, अत्तै, अम्मा, कुटि, कोट्टै, पट्टणम, नीर, मीन आदि।

तमिळ लिपि की उच्चारण और व्याकरण की भी अपनी निजी विशेपताए है, जिन्हे हम सस्कृत मे नही पाते। सस्कृत-वर्णमाला मे १३ स्वर और ३३ व्यजन है। तमिळ मे दोनो मिलाकर केवल इकतीस अक्षर है—१२ स्वर और १८ व्यजन। तमिळ मे कई अक्षर ऐसे है, जो देवनागरी या आर्य-परिवार की भाषाओ मे नही मिलते। ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' द्रविड-परिवार की भापाओ की विशेपता है और 'ळ' अक्षर तो तमिळ की निजी सपत्ति है। तमिळ भापा की कुछ विशेषताए निम्नलिखित है

(१) तमिळ मे सयुक्ताक्षर से किसी शब्द का आरभ नही होता।

(२) शब्द के मध्य मे सजातीय ध्वनियो को छोडकर अन्य ध्वनियो का सयोग तमिळ मे नही होता, जैसे ज्य, ध्य, न्य, म्य जैसी ध्वनिया शब्द के बीच मे नही आ सकती।

(३) तमिळ मे द्वित्ताक्षर बहुत आते है, जैसे अक्का, अम्मा, अण्णा, इल्लै, एप्पो, एट्टु आदि।

(४) शब्द के आरभ, मध्य और अत मे कौन-कौन से अक्षर आ सकते हे और कौन-कौन से अक्षर नही आ सकते, इस सबध मे तमिळ वैयाकरणो ने अनेक नियम बनाये है। तमिळ शब्द का आरभ र, ल, ट, क, ण, प आदि अक्षरो से नही हो सकता। हलत अक्षर शब्द के आरभ मे नही आते। दक्षिण की किसी भी भाषा मे 'ल' से किसी शब्द का आरभ नही होता। ऐसे शब्द प्राय सस्कृत से लिये गये है।

(५) तमिळ के धातु प्राय एक ही शब्द-खड के होते है। इस भाषा मे ८२ धातु ऐसे है, जो एक ही अक्षर के है।

(६) तमिळ मे प्राय शब्द के अत मे 'आ' की ध्वनि आने पर 'आ' का 'ऐ' हो जाता है, जैसे माला का माले, गगा का गगै, सीता का सीदै आदि। प्राय सस्कृत के आकारत शब्दो का उच्चारण इस तरह होता है।

(७) ऐसे सस्कृत शब्द जव तमिळ मे आते है, जो तमिळ की प्रकृति के विरुद्ध होते है या जिनका आरभ 'ल' या 'र' अक्षर से होता है, जो तमिळ मे निषिद्ध माने जाते है, तो इनके आगे स्वर लगा दिया जाता है, जैसे रत्न, रामन, लक्ष्मण आदि शब्द तमिळ मे इरतिनम, इरामन, इलक्कुमणन आदि लिखे जाते है।

(८) तमिळ मे सबधबोधक सर्वनाम जो, जिस, जहा आदि नही होते। तमिळ की वाक्य-रचना मे ऐसे प्रयोगो के लिए गुजाइश नही होती।

(९) तमिळ मे हिदी के 'कि' सयोजक जैसा कोई शब्द नही होता। जैसे 'उसने कहा कि मै कल काशी जाऊगा' वाक्य का तमिळ-रूप इस प्रकार होगा—"मै कल काशी जाऊगा ऐसा उसने कहा।"

(१०) तमिळ के छद सस्कृत के छदो से भिन्न है। प्राचीन तमिळ ग्रथो मे वेण्बा, आसिरियप्पा, कलिप्पा और वजिप्पा—चार प्रकार के छद ही मिलते है। ये शुद्ध तमिळ छद है। सस्कृत छदो का प्रचार बहुत पीछे चलकर हुआ।

(११) सस्कृत के अलकारो के जैसे तमिळ मे अलकार नही होते। प्राचीन तमिळ की सबसे बडी विशेषता उक्ति की सरलता और घटना का वास्तविक चित्रण है।

(१२) सस्कृत की तरह तमिळ मे भी पुल्लिग, स्त्रीलिग व नपुसक, तीन लिग है, पर तमिळ मे उनके विभाजन मे एक विशेषता होती है। जीवधारियो के दो भेद—उयर तिणै (उच्च श्रेणी), अह्रिणै (निम्न श्रेणी) या विवेकी और अविवेकी

माने गये है। देवता, मनुष्य आदि उच्च श्रेणी और गाय, बैल, घोडे आदि निम्न श्रेणी मे आते है। स्त्रीलिंग-पुल्लिग का भेद उच्चताबोधक शब्दो मे ही होता है। निम्नताबोधक शब्द प्राय नपुसक माने जाते है। विवेकी (उयर तिणै) जीवधारियो के तीन भेद होते है—आण्पाल (पु० एकवचन), पेण्पाल (स्त्री० एकवचन) और पलर्पाल (बहुवचन)। परतु अविवेकी (अह्रिणै) के दो ही भेद, ओट्रन्पाल (न० एकवचन) और पलविन्पाल (न० बहुवचन) रूप होते है। अन्यपुरुष मे सर्वनाम के दो रूप होते है—विवेकी जीवधारियो के लिए और अविवेकी जीवधारियो के लिए। उदाहरणार्थ—अवन् (वह—पु० एकवचन), अवळ् (वह—स्त्री० एकवचन), अवर्, अवर्गळ् (वे—पु० स्त्री० बहु०), अदु (वह—न० एकवचन), अवै, अवैगळ् (वे—न० बहुवचन)।

(१३) तमिळ मे अन्य पुरुषवाची सर्वनामो मे एकवचन मे पुल्लिंग-स्त्रीलिंग का भेद होता है। उत्तम और मध्यम पुरुषो मे यह भेद नही होता।

(१४) हिंदी मे स्त्रीलिग और पुल्लिग के बहुवचन मे क्रिया के अलग-अलग रूप होते है। तमिळ मे एक ही बहुवचन रूप सर्वत्र उपयोग मे आता है।

(१५) हिंदी मे उत्तम और मध्यम पुरुष के साथ आनेवाली क्रिया मे स्त्रीलिग और पुल्लिग के अलग-अलग रूप होते है, तमिळ मे ऐसा नही होता। तमिळ मे 'न्' पुल्लिग एकवचन का, 'ळ्', 'र' पुल्लिग बहुवचन का और 'हळ्' बहुवचन का चिह्न होता है, जैसे अवन् (वह—पु० एक०), अवर् (वे—पु० बहु०), अवरहळ् (स्त्री० पु० बहु०)।

(१६) प्राचीन तमिळ वैयाकरणो ने शब्द के दो ही रूप माने है—पेयर (सज्ञा) और विनै (क्रिया)। शब्दो के बाकी विभाग पीछे से सस्कृत व्याकरण के आधार पर किये गये है।

(१७) सस्कृत की तरह तमिळ शब्दो मे भी सधि होती है, पर इसके नियम सस्कृत के नियमो मे भिन्न होते है।

(१८) सस्कृत के अनेक शब्दो का अर्थ तमिळ मे बदल जाता है, अर्थात हिंदी मे जिस अर्थ मे उनका प्रयोग होता है, तमिळ मे उनका प्रयोग भिन्न अर्थ मे होता है, जैसे उपन्यास (व्याख्यान), ससार (कुटुब), अतिशय (आश्चर्य), अभिमान (प्रेम, वात्सल्य), पशु (गाय), अवसर (जल्दी), कल्याणम (विवाह) वगैरा।

(१९) द्रविड-परिवार की सभी भाषाओ की एक विशेषता यह भी है कि

उनमे वडे भाई तथा छोटे भाई और बडी वहन एव छोटी वहन के लिए अलग-अलग शब्द है। तमिळ मे वडे भाई के लिए 'अण्णा' और छोटे भाई के लिए 'तवि' शब्द व्यवहृत होते है। इसी तरह वडी वहन के लिए 'अक्का' और छोटी वहन के लिए 'तगै' शब्द आता है। आर्य-परिवार की भाषाओ मे इस तरह का भेद नही होता।

(२०) दक्षिण की भाषाओ मे 'मामा' शब्द बहुत प्रचलित है। मामा का का अर्थ तो वही होता है जो हिंदी मे है (माता का भाई), परतु छोटे बच्चे साधारण तौर पर अपरिचित व्यक्तियो और मेहमानो के लिए इसी शब्द का प्रयोग करते है। इस अर्थ मे यह प्यार और आदर-सूचक होता है।

दक्षिण की प्राय सभी जातियो मे मामा की कन्या से व्याह करने की प्रथा प्रचलित है। ऐसा सबध स्थापित होने पर मामा श्वसुर वन जाता है। इसलिए श्वसुर के पर्याय शब्द की उत्पत्ति भी मामा शब्द से ही हुई है। तमिळ मे श्वसुर को 'मामनार' कहते है।

तमिळ भाषा का इतिहास तीन कालो मे विभक्त किया जा सकता है—आदि-काल—ई० पू० ६०० से लेकर ईसा के वाद छठी शताब्दी तक, मध्य-काल—छठी शताब्दी के वाद से वारहवी शताब्दी के अत तक और आधुनिक-काल—वारहवी शताब्दी से वर्तमान युग तक।

आदि-काल—इस काल की आरभिक सदियो मे लोग प्राय अर्ध-सभ्य अवस्था मे रहते थे। मृत पुरुषो (भूत-प्रेत) की आत्माओ की पूजा करते थे और सीधी और सरल भाषा मे अपने विचार व्यक्त करते थे। इस युग की भाषा शेतमिळ थी, जिसके नमूने 'अहनानूरु', 'पुरनानूरु', 'पत्तुप्पाट्टु', 'शिलप्पदिकारम', 'मणि-मेखलै' आदि ग्रथो मे मिलते है। इस युग के प्रामाणिक व्याकरण ग्रथ 'तोळका-प्पियम', 'पन्निरुपडलम', 'अग्निमुरी' आदि थे। इस युग की भाषा सस्कृत के प्रभाव से प्राय मुक्त थी। इस युग का सारा वाङ्मय पद्यमय है। वर्णन अत्यत रोचक और भाषा अलकार-रहित, सीधी और स्वाभाविक है। छदो मे वेण्वा, आसि-रियप्पा, कलिप्पा आदि शुद्ध तमिळ छदो का उपयोग हुआ है। प्रारभिक रचनाए प्राय मुक्तक है। वाद मे महाकाव्यो की रचना हुई। इस काल की कविता के विषय राजाओ के प्रेम, युद्ध, वैभव, प्रताप, दानशीलता आदि है। कही-कही दरिद्रता, दुख, वियोग आदि का भी वर्णन मिलता है।

मध्य-काल—यह युग दक्षिण मे ब्राह्मणो तथा आर्य-सस्कृति की प्रधानता का युग था। यहा अनेक सदियो तक बौद्धो, जैनो एव ब्राह्मणो के बीच सघर्ष चलता रहा। अत मे ब्राह्मण धर्म विजयी हुआ। बौद्ध और जैन धर्मो का प्रभाव लुप्त हो गया। बौद्ध धर्म सदा के लिए दक्षिण से निर्वासित हो गया और जैन धर्म अपने सारे प्रभावो को खोकर, पगु बनकर पहाडो की कदराओ और छोटी-छोटी बस्तियो मे जा छिपा। ब्राह्मण धर्म का प्रभुत्व स्थापित हो जाने से आर्य-कथा-कहानियो, आर्य-पुराणो तथा आर्य-विचारधारा का प्रचार तीव्रता मे बढने लगा। सस्कृत के अनेक पुराणो तथा अन्य ग्रथो के अनुवाद तमिळ मे हुए। राम, कृष्ण आदि देवताओ की पूजा आरभ हुई। तमिळ रचनाओ मे सस्कृत छद, अलकार एव मुख्यत धर्म और सस्कृति से सबध रखनेवाले सस्कृत शब्दो का प्रचार बढा। रामायण, स्कद-पुराण, महाभारत-जैसे ग्रथ लिखे गये। मदिरो का निर्माण हुआ और धार्मिक भावनाओ को प्रोत्साहन मिला। धर्मो के बीच आपसी सघर्ष मे तमिळ भाषा को बहुत लाभ हुआ। प्रत्येक धर्मावलबी अपने-अपने इष्टदेव का गुण-गान करने मे एक-दूसरे से आगे बढ जाना चाहता था। उन्होने अपने-अपने देवता की प्रशसा मे अत्यत सुदर, ललित और भावपूर्ण पद्य रचे, जो भक्ति रस से परिपूर्ण और तमिळ साहित्य की अमूल्य निधि है। मध्य युग की रचनाओ मे इन भक्तो की कृतियो का बहुत ऊचा स्थान है। इस युग की तमिळ पर सस्कृत का स्पष्ट प्रभाव देखने मे आता है।

वर्तमान युग—ईसा की तेरहवी शताब्दी मे उत्तर और मध्य भारत मे बडी तीव्रता से परिवर्तन हो रहे थे। इस परिवर्तन का असर दक्षिण के राज्यो पर भी पडा। अति प्राचीन काल से सगठित चोळ और पाडिय राजाओ का पतन हो चुका था। तुगभद्रा के तट पर शक्तिशाली विजयनगर राज्य का उदय हुआ, जिसने कुछ काल तक के लिए तमिळ देश पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया। विजयनगर की ओर से नायक राजा मदुरा मे राज्य करने लगे। नायको की मातृभाषा तेलुगु थी, अतएव इनके हृदय मे तमिळ के प्रति कोई सहानुभूति नही थी। विजयनगर के शासक तेलुगु व सस्कृत के समर्थक थे। अतएव नायको के राजत्व-काल मे सस्कृत को अधिक प्रोत्साहन मिला। विजयनगर के पतन के बाद एक-एक करके मराठो, मुसलमानो और अग्रेजो का आधिपत्य इस प्रात पर हुआ। इस उथल-पुथल का असर तमिळ भाषा और साहित्य पर पडना स्वाभाविक था। पाडिय और चोळ

राजाओ के आधिपत्य मे तमिळ भाषा की जो वृद्धि हो रही थी, वह रुक गई। इस युग मे तमिळ एव सस्कृत ग्रथो पर उनके भाष्य तो लिखे गये, पर मौलिक ग्रथो की रचना प्राय बद सी हो गई। अग्रेजी के प्रभाव से तमिळ मे गल्प का विकास हुआ।

लिपि की अपूर्णता, सधियो की विकटता और क्रिया के रूपो मे अनियमितता के कारण तमिळ भाषा सीखने मे कठिन और पढने मे दुरूह हो जाती है। भाषा जाने बिना तमिळ पुस्तक पढना कठिन है। जिस तरह अग्रेजी या उर्दू पढने के लिए शब्द के साथ पूर्व परिचय की जरूरत है, उसी तरह तमिळ पढने के लिए भी भाषा की जानकारी और दीर्घ अभ्यास की आवश्यकता है। तमिळ की ध्वनि भी हिंदी की ध्वनि से भिन्न है। तमिळ शब्द का अर्थ मीठा है। तमिळ लोग अपनी भाषा को बहुत मीठा मानते भी है, पर द्वित्ताक्षरो की प्रचुरता के कारण अनभ्यस्त कानो को तमिळ भाषा कठोर प्रतीत होती है। यहा तमिळ भाषा का एक नमूना देखिये

"महात्मा गाधी १९४५ म् आड् तमिळ नाट्टिर्कु विजयम चेयिदार्। अच्चमयम् मदुरै मीनाक्षी कोयिलुक्कु चेन्रु स्वामिदर्शनम् चेयिदार्। मदुरै मीनाक्षी कोइल् तमिळ नाट्टिन् पेरिय कोयिल्कळिल् ओडराकुम्। अगु तेन्नाट्टुळ कलैयिन् अळकै कड् कळिकक्लाम्। मदुरै ओरुपेरिय नगरम्। मुन् कालत्तिल् अदु पाडिय नाट्टिन् तलैनगरमाह इरुददु।"

अर्थात "महात्मा गाधी सन १९४५ मे तमिळनाडु मे आये थे। उस वक्त उन्होने मदुरै मीनाक्षी-मदिर मे मीनाक्षी के दर्शन किये। मदुरै मीनाक्षी मदिर तमिळनाडु के बडे मदिरो मे से एक है। वहा दक्षिणी कला की सुदरता देख सकते है। मदुरै एक बडा शहर है। पुराने जमाने मे वह पाडिय राज्य की राजधानी था।"

हम ऊपर लिख चुके है कि तमिळ और सस्कृत का सबध अति प्राचीन काल से है और सघम-काल के साहित्य मे भी सस्कृत के शब्द पाये जाते है। कुछ विद्वानो की राय है कि सस्कृत भी द्रविड भाषा से प्रभावित हुई है और वैदिक सस्कृत के बाद, भारतवर्ष मे आने के बाद सस्कृत का जो रूप विकसित हुआ, उस पर द्रविड भाषा का प्रभाव है। उनका खयाल है कि आर्य लोग जब भारत के पश्चिमोत्तर प्रात मे आये, तब वहा उनको एक विकसित सस्कृति मिली, जो द्रविड सस्कृति थी। इसके सपर्क मे आने के बाद ही सस्कृत भाषा का विकास हुआ। इसलिए

उस पर द्रविड भाषाओ का प्रभाव पडना स्वाभाविक था। श्री पी० टी० श्रीनिवास अय्यगार का कथन है कि प्राचीन काल मे भारत के निवासियो के उच्चारण भी बदल गये और सस्कृत के व्याकरण मे भी थोडा-बहुत परिवर्तन हुआ। प्रोफेसर रीज़ डेविड का भी कथन है कि प्राचीन भारत मे द्रविड भाषाओ ने वैदिक सस्कृत को बहुत प्रभावित किया, जिसके कारण उसके उच्चारण, शब्दावली, ध्वनि, बनावट, मुहावरे आदि मे बहुत अतर आ गया। द्रविड भाषाओ का सस्कृत पर यह प्रभाव शताब्दियो तक जारी रहा। डाक्टर गुडर्ट ने लिखा है कि द्रविड भाषा के अनेक धातुओ को सस्कृत ने आत्मसात कर लिया है।

अभी तक भाषा-विज्ञानियो का ध्यान द्रविड और आर्य-परिवार की भाषाओं की तुलना की ओर नही गया है। आर्य-परिवार की भाषाओ की तुलना द्रविड भाषाओ से करने मे अनेक रहस्यो का उद्घाटन हो सकता है। हम देखते हैं कि यद्यपि हिदी, मराठी, बगला, गुजराती आदि भाषाए सस्कृत से सबध रखती है, परन्तु उनकी वाक्य-रचना, व्याकरण, मुहावरे, प्रयोग, क्रिया के रूप आदि सस्कृत की अपेक्षा द्रविड भाषाओ मे अधिक मिलते-जुलते है। तमिळ भाषा के किसी वाक्य का शब्दानुवाद यदि हिदी म किया जाय, तो वह पूरा-पूरा शुद्ध उतरेगा। इससे ज्ञात होता है कि हिंदी, बगला, मराठी आदि की वाक्य-रचना-पद्धति द्रविड भाषाओ से बहुत मिलती-जुलती है। दोनो परिवारो की भाषाओ के विकास मे किसी मूल भाषा का हाथ अवश्य रहा होगा, जिसने आर्य और द्रविड दोनो परिवारो की भाषाओ पर अपना प्रभाव डाला होगा। मोहनजोदडो और हडप्पा की खुदाई के बाद यह साबित हो चुका है कि आर्यो के भारतवर्ष मे आने के पूर्व भारत मे एक विकसित सस्कृति वर्तमान थी। अतएव यह बहुत सभव है कि उस सस्कृति ने बाद को आनेवाले आर्यो की भाषा व सस्कृति को नई दिशा प्रदान की हो। डॉ० टेलर ने यह विचार प्रकट किया है कि दक्षिण की वर्तमान भाषाओं की जन्म-दात्री कोई भाषा सारे भारतवर्ष मे प्रचलित थी और वही भारतवर्ष की तमाम भाषाओं का आधार बनी। श्री पी० टी० श्रीनिवास अय्यगार का विश्वास है कि उत्तर भारत की गौडीय कही जानेवाली आर्य-परिवार की भाषाए (हिदी, बगला, उडिया आदि) सस्कृत से अत्यधिक प्रभावित प्राचीन द्रविड या द्रविड जैसी किसी भाषा का ही रूप है।

: ५ :

तमिळ लिपि

तमिळ भाषा की तरह तमिळ लिपि भी बहुत प्राचीन है। ईसा के पहले पाचवी शताब्दी मे भी तमिळ भाषा मे लिपि और पुस्तक के लिए 'एळुत्तु' और 'सुवडि' शब्द का होना इसका प्रमाण है कि उस अतीत काल मे भी तमिळ भाषा लिखी जाती थी और उसमें पुस्तको की रचना होती थी। तिरुवळ्ळुवर ने लिखा है कि मनुष्य जाति की दो आखे हैं अक और अक्षर। इससे ज्ञात होता है कि तमिळ लोग लिपि को कितना महत्व देते थे।

बहुत प्राचीन काल से तमिळ देश मे दो लिपियो का प्रचार चला आया है। एक को 'वट्ट एळुत्तु' या 'वेट्ट एळुत्तु' और दूसरी को 'ग्रथम' कहते हैं। 'वट्ट एळुत्तु' का अर्थ है 'गोल अक्षर'। जिस समय कागज नही था, तमिळ लोग लिखने के लिए ताड के पत्ते काम मे लाते थे और उन पर लोहे की कलम से लिखा करते थे। आज भी ताड के पत्तो पर लिखे हुए हजारो प्राचीन ग्रथ तमिळनाडु मे मिलते हैं। इनका एक बहुत बडा सग्रह तजाऊर के 'सरस्वती महळ' पुस्तकालय मे एकत्रित है। प्राचीन काल मे पत्थरो पर भी अक्षरो को खोदकर लिखने की परिपाटी प्रचलित थी। 'वेट्ट' शब्द का अर्थ होता है 'खोदना'। प्राय प्राचीन मदिरो की दीवारो पर मदिर का पूरा इतिहास, उसके दाताओ का परिचय और मदिर से सबध रखनेवाली समय-समय पर घटित घटनाओ का वर्णन खुदा रहता है। यह खुदाई का काम बडी सफाई व सावधानी से होता था। पत्थर पर खोदने और ताड के पत्तो पर लिखने मे अक्षरो का गोल हो जाना स्वाभाविक था। सीधे अक्षरो से पत्ते फट जाते और पत्थर चटककर टूट जाते थे। इसीलिए उन्हे गोल कर देना पडता था। शायद यही कारण है कि इन अक्षरो के नाम वट्ट एळुत्तु पड गया। ग्रथम का प्रचार ब्रह्मणो द्वारा किया गया। तमिळ लिपि सस्कृत शब्दो को लिखने के लिए अपर्याप्त साबित होने पर ब्राह्मणो ने सस्कृत लिखने के लिए इस लिपि का प्रचार किया। ग्रथम की मूल लिपि तमिळ की ही है, परतु जो ध्वनिया तमिळ मे

नही होती, उनके लिए अलग चिह्न बना लिये गये है। प्रथम का सबध अशोक की ब्राह्मी लिपि से माना जाता है।

वट्ट एळुत्तु लिपि का आरभ ईसा के लगभग ५०० वर्ष पहले माना जाता है। पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि ईसा से लगभग ८०० वर्ष पहले भारत मे लिपि का आरभ हुआ होगा। लेकिन मोहनजोदडो की खुदाई ने इस अनुमान को असत्य कर दिया है। डाक्टर बर्नल का कहना है कि वट्ट एळुत्तु एक स्वतत्र लिपि है और आर्य व्याकरण-रचयिताओ के उत्तर से दक्षिण मे आने के पहले से ही तमिळनाडु मे प्रचलित थी। यद्यपि अगस्त्य और तोळकाप्पियर ने तमिळ को व्याकरण दिया, पर यह मानना गलत होगा कि उन्होने तमिळ को लिपि भी दी।

हम पहले लिख चुके है कि मोहनजोदडो और हडप्पा की खुदाई से इस बात का पता चला है कि वे लिपि का प्रयोग करते थे। वह लिपि आर्यो की ब्राह्मी लिपि से बिलकुल भिन्न थी। यदि पजाब और सिंधु की सभ्यता द्रविड-सभ्यता थी, तो यह मानना होगा कि तमिळ लिपि भी उतनी ही पुरानी है जितनी सिधु-पजाब की सभ्यता। उस खुदाई मे मिट्टी के कई ऐसे पात्र मिले है, जिन पर कुछ लिखा हुआ पाया गया है। अभी तक यह लिपि पढी नही जा सकी, पर बहुत सभव है कि यही लिपि वर्तमान तमिळ लिपि की जननी रही हो।

श्री पी० टी० श्रीनिवास अय्यगार का कहना है कि तमिळ लिपि ई० पू० दूसरी या तीसरी शताब्दी मे अशोक-काल की ब्राह्मी लिपि के आधार पर बनी। दक्षिण की अनेक गुफाओ मे पत्थर की दीवारो पर प्राचीन तमिळ लिपि के नमूने मिलते है। ये नमूने बौद्धो और जैनो के समय के है। बौद्ध और जैन साधु प्राय एकात-सेवी होते थे और पहाडी जगहो और गुफाओ मे रहते थे। उन्होने ही पहले-पहल ब्राह्मी अक्षरो के आधार पर तमिळ लिपि का निर्माण किया होगा।

श्री गौरीशकर हीराचद ओझा का भी यही मत है। वह मानते है कि ब्राह्मी की दक्षिणी शैली से तमिळ, तेलुगु, कन्नड आदि दक्षिणी लिपियो का विकास हुआ। परतु जिस समय अगस्त्य और तोळकाप्पियर ने तमिळ भाषा का व्याकरण लिखा, उस समय तक तमिळ लिपि का निर्माण हो चुका था। बिना लिपि के किसी भाषा का व्याकरण तैयार करना कठिन है। तोळकाप्पियर ने अपने व्याकरण मे लिखा है—"गुरु ने लिखा है कि 'अ' से लेकर 'न' तक ३० अक्षर है।" इससे ज्ञात होता

है कि अगस्त्य के समय मे तमिळ लिपि बन चुकी थी और उसमे ३० अक्षर थे। यदि अगस्त्य का समय ई० पू० ५०० माना जाय, तो यह मानना होगा कि बौद्ध और जैन धर्मों का प्रचार होने के पहले ही तमिळ लिपि का निर्माण हो चुका था। यदि अगस्त्य की कथा पर अविश्वास किया जाय और तोळकाप्पियर को ही तमिळ व्याकरण का प्रथम रचयिता माना जाय, तो तोळकाप्पियर से कम-से-कम सौ-दो-सौ वर्ष पूर्व, अथवा ई० पू० ५०० तमिळ लिपि की उत्पत्ति का समय माना जा सकता है।

ब्राह्मी मे विकसित भारत की सभी लिपियो की वर्णमालाए समान है। दक्षिण की तेलुगु, मलयालम और कन्नडी भाषाओ की वर्णमालाए भी हिंदी, बगला आदि आर्य-परिवार की भाषाओ के समान ही है। केवल तमिळ की वर्णमाला ही इन सबमे भिन्न है और उसमे केवल ३० अक्षर है। यदि इसका विकास भी ब्राह्मी लिपि के आधार पर हुआ होता, तो यह स्वाभाविक था कि इसकी वर्णमाला भी देवनागरी के समान होती। परतु इस लिपि का अधूरापन और सरलता इस बात को व्यक्त करती है कि इसके विकास का क्षेत्र कही अन्यत्र रहा होगा। श्री सिवेल का कथन है कि तमिळ लिपि मे अक्षरो की कमी और रूप की सरलता इसको सिद्ध करती है कि इसका विकास खरोष्टी के पूर्व सेमेटिक, आरमाइक या हेमेटिक लिपि के आधार पर हुआ होगा।

तमिळ लिपि की कुछ और विलक्षणताए है, जो इसकी स्वतत्र हस्ती का प्रमाण है। ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न सभी लिपियो मे सयुक्ताक्षर की जो पद्धति प्रचलित है, वह तमिळ से भिन्न है। तमिळ मे अक्षरो को मिलाकर लिखने की प्रथा बिल्कुल नही है। जहा दो ध्वनिया साथ आती है, वहा भी दोनो अक्षर अलग-अलग लिखे जाते है और पहले अक्षर के सिर पर एक बिदी लगाकर उसे हलत बना लिया जाता है। इससे तमिळ के सयुक्ताक्षरो के रूप देवनागरी के सयुक्ताक्षरो की तरह जटिल और विकृत नही होते। तोळकाप्पियर ने अपने व्याकरण मे लिपि की जो व्याख्या दी है, वह वट्ट एळुत्तु के लिए ही लागू हो सकती है।

यह कहना कठिन है कि तमिळ लिपि का विकास दक्षिण भारत मे ही हुआ या यह लिपि कही बाहर से इस देश मे आई। कुछ लोगो का विचार है कि वट्ट एळुत्तु की विकास-भूमि तमिळ देश न होकर पश्चिम एशिया मे आर्केडिया और असीरिया थी, जहा द्राविड लोग भारत मे आने के पहले निवास करते थे और जहा

आज भी तमिळ भाषा का अवशेष पाया जाता है। द्रविड लोग जब भारत मे आये, तब अपने साथ यह लिपि भी लाये। बौद्ध विद्वान डॉ० आर० डेविड्स का कहना है कि सभी उपलब्ध प्रमाणो से यह ज्ञात होता है कि तम्मिळ लिपि आर्यो की देन नही है। ईसा की या सातवी आठवी सदी मे द्रविड व्यापारियो ने विदेशो से लाकर यहा इसका प्रचार किया। इसमें सदेह नही कि ईसा के सात-आठ सौ वर्ष पूर्व से ही द्रविड लोगो का व्यापारिक तथा अन्य प्रकार का सबध आर्केडिया आदि देशो से था, पर द्राविड जाति की तरह तमिळ लिपि के सबध मे भी यह कहना कठिन है कि तमिळ लिपि भारत से आर्केडिया पहुची या आर्केडिया से भारत मे आई।

आज से हजार वर्ष पूर्व तमिळ लिपि का जो रूप था, उसमे अनेक परिवर्तन हो चुके है। वर्तमान तमिळ लिपि वट्ट एळुत्तु और ग्रथम दोनो के समिश्रण से बनी है। इसमे कई अक्षर ऐसे है, जो ग्रथम लिपि के आधार पर बने है और देव-नागरी अक्षर से बहुत मिलते-जुलते है। पर उनके रूपो मे भी काफी परिवर्तन हो गया है। तमिळ लिपि के वर्तमान रूप का निर्माण अनुमानत ईसा की चौदहवी शताब्दी मे हुआ था।

तमिळ प्रदेश मे ग्रथम लिपि का प्रचार अब भी पाया जाता है। पर उसका उपयोग केवल सस्कृत की पुस्तके छापने मे होता है और सस्कृत जाननेवाले ही उसे पढ सकते है। अब धीरे-धीरे ग्रथम लिपि का स्थान देवनागरी लेती जा रही है।

वर्तमान तमिळ लिपि मे केवल ३१ अक्षर है, जिनमे १२ स्वर और १९ व्यजन है। स्वरो मे तीन ऐसे है जो देवनागरी वर्णमाला मे नही मिलते, पर द्रविड-परिवार की सभी भाषाओ मे पाये जाते है। ये है ह्रस्व 'ऍ' और ह्रस्व 'ऑ' और अख्। व्यजनो मे ख, छ, ठ, थ ,फ, ग, ज, ड, द, ब, घ, झ, ढ, ध, भ, श, ष, स, ह आदि अक्षर तमिळ वर्णमाला मे नही है। प्राय शुद्ध तमिळ शब्दो मे इन अक्षरो की आवश्यकता बहुत कम पडती है। आवश्यकता पडने पर वर्णमाला के पहले अक्षर से ही काम लिया जाता है। तमिळ मे तीन व्यजन ऐसे है जो देवनागरी वर्णमाला मे नही मिलते, ये है—ऱ, ळ और ऩ।

यद्यपि तमिळ मे ग, ज, ड, द, ब, अक्षर नही होते, पर ये ध्वनिया तमिळ मे पाई जाती है। सभव है, इन ध्वनियो का विकास सस्कृत के ही आधार पर हुआ

हो। तमिळ मे इन ध्वनियो के लिए अलग अक्षर नही है । क, च, ट, त, प, अक्षरो मे ही इनका काम लिया जाता है। स्थान के अनुसार इनका उच्चारण बदलता है। तमिळ व्याकरण मे इसके लिए विस्तृत नियम बने हुए है कि किस स्थान मे आने पर किस अक्षर का उच्चारण कैसा होता है। ख, छ, ठ, थ, फ और घ, झ, ढ, ध, भ, अक्षर तमिळ मे नही आते। संस्कृत के तत्सम शब्दो मे ही इनका प्रयोग होता है और लिखते समय क, च, ट, त, प, से ही इन अक्षरो का काम लिया जाता है। हम लिख चुके है कि ग्रंथम लिपि मे इनके लिए अलग-अलग अक्षर बने हुए है।

नीचे तमिळ लिपि वर्णमाला तथा तमिळ लिपि का नमूना दिया जा रहा है।

तमिल वर्णमाला

स्वर

அ	ஆ	இ	ஈ	உ	ஊ	
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	
எ	ஏ	ஐ	ஒ	ஓ	ஔ	ஃ
ऍ	ए	ऐ	ऑ	ओ	औ	अक्

व्यंजन

க	ங	ச	ஞ	ட	ண	
क	ङ	च	ञ	ट	ण	
த	ந	ப	ம	ய	ர	ல
त	न	प	म	य	र	ल
வ	ழ	ள	ற	ன		
व	ऴ	ळ	ऱ	न		

बारहखडी

க	கா	கி	கீ	கு	கூ	கெ	கே
क	का	कि	की	कु	कू	कॅ	के
கை	கொ	கோ	கௌ	க்			
कै	कॉ	को	कौ	क्			

तमिळ के स्वर देवनागरी की तरह ही होते है, अंतर इतना ही है कि तमिळ मे दो स्वर ऐसे होते है जो नागरी मे नही मिलते ऍ और ऑ।

प्राय तमिळ सज्ञाए अ या आ मे अत नही होती। शब्द के अत मे अ, आ आने पर उनका रूप उ या औ मे परिवर्तित हो जाता है। आकारात सस्कृत शब्द भी तमिळ मे आने पर ऐकारात हो जाते है। जैसे, माला—मालै, कथा—कदै, सीता—सीदै आदि।

तमिळ मे स्थान-विशेष के कारण अक्षरो के उच्चारण मे भेद होता है। अनुनासिक वर्णो के बाद आने पर क, च, ट, त, प का उच्चारण ग, ज, ड, द, व हो जाता है। उदाहरण—तेंकु, इंचि, चेंटु, ये तेंगु, इंजि, चेंडु आदि होगे।

तमिळ मे व्यजनो की सख्या १८ है, इनमे चार विचित्र अक्षर भी है जो आर्य-परिवार की भाषाओ मे नही मिलते। तमिळ का 'ळ' अक्षर तमिळ वर्णमाला मे अपना विशेष स्थान रखता है। दूसरी भाषा बोलनेवालो के लिए इसका उच्चारण भी कठिन है। इसका उच्चारण र और ज का समिश्रण मालूम होता है। जीभ को ऊपर मोडकर तालू के पिछले भाग से लगाकर धीरे से आगे की ओर लाने मे इसकी ध्वनि निकलती है। हमने इसके लिए ळ चिह्न का उपयोग किया है, क्योकि इसका उच्चारण मराठी के ळ अक्षर के अति निकट होता है। बाकी तीन अक्षर अ ख्, ऱ और न है। न और न के उच्चारण मे अधिक भेद नही होता। पर किस 'न' का कहा उपयोग करना चाहिए, इस विषय मे तमिळ मे नियम बने हुए है।

तमिळ मे अक्षरो की कमी के कारण सस्कृत या अन्य भाषा के शब्दो को लिखने मे कठिनाई उपस्थित होती है। इस कारण प्राय शब्दो के रूप बदल जाते है। सस्कृत शब्दो के रूप तमिळ मे अधिक सरल और मधुर बन जाते है और उनके उच्चारण की कठोरता निकल जाती है। जैसे मात्रा तमिळ मे मात्तिरै, पत्रिका पत्तिरिकै और चरित्र चरित्तिरम लिखे जाते है।

तमिळ लोग अपने अक्षरो की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न देवताओ से मानते है। उनका विश्वास है कि १२ स्वरो को ब्रह्मा ने और १८ व्यजनो को शिव, विष्णु, कार्तिकेय, इद्र, सूर्य, चद्र, कुबेर, यम, वरुण आदि देवताओ ने बनाया।

जहा हमने तमिळ और देवनागरी वर्णमाला और अक्षरो के बीच अतर बतलाये है, वहा दोनो के बीच बहुत सी बाते एक-दूसरे से मिलती-जुलती भी दृष्टिगोचर होती है। तमिळ और नागरी वर्णमालाओ की परस्पर तुलना करने पर दोनो की वर्णमालाओ मे भेद होते हुए भी कुछ विलक्षण समानता देखने मे आती

है, जिससे यह प्रतीत होता है कि या तो इन दोनो वर्णमालाओ का स्रोत एक ही रहा होगा या दोनो मे आदान-प्रदान हुआ होगा। सेमेटिक या पाश्चात्य देशो की वर्णमालाओ से भारत की सभी भाषाओ की वर्णमालाए भिन्न है, चाहे वे द्रविड-परिवार की हो या आर्य-परिवार की। तमिळ और देवनागरी मे निम्नलिखित समानताए देखने को मिलती है

(१) देवनागरी और तमिळ दोनो मे स्वरो का क्रम समान है। यद्यपि तमिळ और उस परिवार की भाषाओ मे ह्रस्व ऍ और ऑ अक्षर भी पाये जाते है, परतु अक्षरो के क्रम मे कोई अतर नही पाया जाता।

(२) यद्यपि तमिळ मे ककारादि वर्गो मे बीच के तीन अक्षर नही होते, तो भी जो अक्षर वर्तमान है, उनका क्रम भी देवनागरी वर्णमाला के ही अनुरूप है।

(३) य, र, ल, व आदि वर्णो का भी वही क्रम है जो देवनागरी मे है। हा, स, श, ष, ह आदि अक्षर तमिळ वर्णमाला मे नही है, पर क्रम देवनागरी ही का है।

(४) स्वर चिह्नो की परिपाटी भी देवनागरी से ही मिलती-जुलती है। यूरोपीय और सेमेटिक भाषाओ मे अक्षर ही स्वर का काम देते है, परतु भारतीय भाषाओ मे स्वर चिह्न अलग होते है, यही नियम तमिळ के लिए भी लागू है।

(५) तमिळ के अनेक अक्षरो के रूप नागरी अक्षरो के रूप से मिलते-जुलते है। इसी आधार पर अनेक विद्वानो ने यह मत प्रकट किया है कि तमिळ लिपि भी ब्राह्मी लिपि के ही आधार पर बनाई गई है।

तमिळ भाषा मे प्रत्येक अक्षर का उच्चारण, यदि वह हलत न हो तो, पूरा किया जाता है। जिस अक्षर का उच्चारण पूरा नही होता, वह भी पूरा ही लिखा जाता है, पर उसे हलत या स्वरहीन बनाने के लिए उसके सिर पर बिंदी लगा दी जाती है। हिंदी के उच्चारण मे यह त्रुटि है कि अक्षर लिखे तो पूरे जाते है, पर उनका उच्चारण कही पूरा और कही आधा होता है। उदाहरण—इसका, उनका, लडका, किस्मत आदि शब्दो मे स, न, ड, स, त आदि अक्षर लिखे तो पूरे जाते है, पर उनका उच्चारण हलत की तरह होता है। तमिळ मे ऐसे स्थानो पर हलत अक्षर ही लिखे जाते है, जिससे तमिळ शब्दो को शुद्ध पढना आसान होता है।

जिस अक्षर के ऊपर बिंदी लगी हो, वह आधा या हलत की तरह पढा जाता है। तमिळ मे किसी अक्षर का आधा रूप नही लिखा जाता, जिससे सयुक्ताक्षर

बनाने की रीति अत्यत सरल हो जाती है। यह तमिळ लिपि की सबसे बडी विशेषता है। वास्तव मे नागरी की तरह अक्षरो को मिलाकर लिखने की रीति तमिळ मे प्रचलित है ही नही। यहा प्रत्येक अक्षर पूरा और अलग-अलग लिखा जाता है, जिसमे अक्षरो के रूप मे विकार नही होता और उनको सीखने मे कठिनाई नही होती। जैसे—नागरी का च्छ तमिळ में च्छ, और त्म—त्म, द्ध—द्ध, राष्ट्र—राष्ट्र की तरह लिखे जायगे।

तमिळ मे मात्राए (स्वर चिह्न) पूरे अक्षर पर ही लगती है, नागरी की तरह आधे अक्षर पर नही। इससे शब्द को शुद्ध-शुद्ध पढने म सहायता मिलती है। हिंदी के अस्ति शब्द को ही लीजिये। यहा इ की मात्रा म् के पूर्व लिखी गई है। तमिळ मे यह शब्द इस प्रकार लिखा जायगा—अस्ति (अस्ति)। स्वभावत तमिळ विद्यार्थी हिंदी लिखते समय भी कभी-कभी यही रूप लिखते है।

तमिळ मे भी हिंदी की तरह ही स्वर चिह्न अक्षरो के ऊपर, नीचे, आगे, पीछे लिखे जाते है, पर सयुक्ताक्षर लिखने की पद्धति तमिळ का विशेष-गुण है, जिसे हिंदीवालो को भी अपना लेना चाहिए। इससे नागरी अक्षरो की जटिलता दूर हो जायगी और उच्चारण-सबधी दोष जो आज हिंदी मे है, वह भी निकल जायगा। इससे टाइपिंग भी आसान हो जायगा।

उ, ऊ की मात्राओ को छोडकर बाकी स्वर चिह्न तमिळ मे अक्षरो के सिर पर या नीचे न लगाकर अक्षर के आगे या पीछे लिखे जाते है। देवनागरी के लिए भी यह रीति उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

: ६ :

तमिळ साहित्य

तमिळ का साहित्य अत्यत प्राचीन, विशाल और मुख्यत धार्मिक है। उसमे व्याकरण, छद, अलकार, ज्योतिष, आयुर्वेद, नक्षत्र शास्त्र, रसायन, सगीत, शिल्प-कला आदि सभी विषयो पर प्रचुर मात्रा मे ग्रथ मिलते है। उसमे धर्म, नीति, युद्ध और प्रेम—सभी अगो की यथेष्ट पुष्टि हुई है। उसका प्राय समस्त प्राचीन साहित्य पद्यमय है। उसके अधिकाश प्राचीन ग्रथ नष्ट हो गये है, तो भी जितने उपलब्ध है, उन्हीसे उसकी प्राचीनता और वैभव का पूरा प्रमाण मिलता है।

तमिळ का प्राचीन साहित्य बहुत हद तक मौलिक और स्वतत्र है। उस पर आर्य सस्कृति, आर्य भाषा और आर्य कथा-कहानियो का बहुत कम प्रभाव पडा है। प्राय सारे उत्तर भारत के साहित्य की पृष्ठ-भूमि एक ही आर्य सस्कृति और आर्य कथा-कहानिया है, पर तमिळ साहित्य इस बात मे अपना स्वतत्र अस्तित्व रखता है। उसका अपना अलग क्षेत्र है, अपनी स्वतत्र विचारधारा और विषय प्रति-पादन का अपना अलग तरीका है।

तमिळ साहित्य की प्राचीनता का पता इस बात से लग सकता है कि आज से लगभग ३००० वर्ष पूर्व इसमे काव्य-रचना आरभ हो गई थी। ढाई हजार वर्ष पूर्व इस भाषा का प्रथम व्याकरण लिखा गया था तथा लगभग डेढ हजार वर्ष पूर्व इसमे महाकाव्यो की रचना हुई थी। इसमे तिरुवल्लुवर जैसे नीतिज्ञ, कबन जैसे महाकवि, अप्पर और माणिक्कवाचकर जैसे सत और आळवारो जैसे भक्त पैदा हुए। तमिळ साहित्य की विशालता और प्रचुरता को देखते हुए मुक्तकठ होकर यह कहना पडता है कि आज भारत की कोई भी जीवित भाषा अपने प्राचीन वैभव मे इसकी समता नही कर सकती। तमिळ की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह पिछले तीन हजार वर्षो से अक्षुण्ण चली आ रही है और जब दुनिया की सभी प्राचीन

भाषाए मृत भाषाओ मे अपना नाम लिखा चुकी है, तमिळ आज भी एक जीवित, जागृत, प्रगतिशील और सशक्त भाषा है ।

तमिळ विद्वानो ने साहित्य के तीन अग माने है—इयल (काव्य), इगै (सगीत) और नाटकम (नाटक)। परतु प्राचीन तमिळ के इयल ग्रथो को छोडकर अन्य दो विषयो के ग्रथ नही मिलते। कहा जाता है कि कावेरि-पू-पट्टिणम के समुद्र मे डूब जाने और सती कण्णकी के शाप से मदुरा के भस्म हो जाने के कारण अन्य दो विषयो के ग्रथ नष्ट हो गये। सगीत और नाट्य से सवध रखनेवाले निम्नलिखित ग्रथो के नाम बताये जाते है, परतु इनमे से कोई भी ग्रथ दृष्टि-गोचर नही होता

इगै नुणुक्कम्	(सगीत शास्त्र पर)
इदिर कावियम्	,,
पचमरपु	,,
शेयिट्टियम्	,,
गुणनूल	,,
जयदम्	(नाटक पर)
मतिवाणर्	(एक नाटक)

इयल (काव्य) के भी दो अग माने जाते है—इलक्कणम् (व्याकरण या लक्षण) और इलक्कियम् (लक्ष्य ग्रथ)।

इलक्कणम् के पाच विषय है—(१) अक्षर—इसमे अक्षरो की सख्या, उनका उद्गम, रूप, शब्दो मे उनका स्थान—आदि का विचार होता है।

(२) शब्द—इसमे चार प्रकार के शब्द, अर्थात सज्ञा, क्रिया, विशेषण और प्रत्यय, पर विचार किया जाता है। इसीके अतर्गत व्युत्पत्ति और पद-क्रम का भी विचार होता है।

(३) विषय—इसमे कविता के विषय—मनुष्य के मन की विविध प्रवृत्तियो, जैसे प्रेम, वियोग आदि का, एव बाह्य जगत के व्यापार, जैसे सघर्ष आदि का विचार होता है।

(४) छद—इसमे छद और उसके लक्षणो के सबध मे विचार किया जाता है।

(५) अलकार—इसमे अलकारो का विचार होता है।

तमिळ साहित्य का समय मुख्यत निम्नलिखित पाच कालो मे विभक्त किया जाता है

(१) सघम काल —ईसा से ५०० वर्ष पूर्व से लेकर उसकी पहली या दूसरी शताब्दी के अत तक।

(२) बौद्ध और जैन काल—ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक।

(३) भक्ति काल—छठी शताब्दी से आठवी तक।

(४) महाकाव्य काल—आठवी से लेकर चौदहवी शताब्दी तक।

(५) मठो और धार्मिक सस्थाओ का काल—चौदहवी से लेकर सत्रहवी तक। इसके बाद वर्तमान साहित्य का युग आरभ होता है।

१. संघम काल

तमिळ पुराणो से पता चलता है कि अति प्राचीन काल मे ही तमिळ राजाओ ने साहित्य की अभिवृद्धि के लिए विद्वानो की एक मडली सगठित की थी, जिसका नाम 'सघम' रखा था। इस सघम का कार्य उस समय की प्रत्येक रचना की कडी परीक्षा करके उस पर प्रामाणिकता की मुद्रा लगाना था। सघम के सदस्य अपने समय के पारगत विद्वान और कवि होते थे, जिनके आगे लेखक अपनी रचनाए उपस्थित करते थे। जिस लेखक या कवि की रचना सघम द्वारा स्वीकृत होती थी, उसका देश मे बडा आदर होता था और राज्य की ओर से भी उसे प्रोत्साहन और पुरस्कार मिलता था। इस काल को तमिळ साहित्य मे 'सघम-काल' कहा गया है। तमिळ विद्वानो का मानना है कि एक के बाद एक इस प्रकार के तीन सघम तमिळ साहित्य की अभिवृद्धि के लिए स्थापित हुए थे। ये प्रथम सघम, द्वितीय सघम और अतिम (या तृतीय) सघम के नाम से विख्यात है।

सघम काल के बाद कई शताब्दियो तक तमिळ साहित्य मे अधकार व्याप्त रहा। उस समय की कोई महत्वपूर्ण कृति प्राप्त नही है। सभवत जैन और बौद्ध धर्मो के आक्रमण से दक्षिण का जीवन कुछ काल के लिए अस्त-व्यस्त हो गया था और जब तक जैनो और बौद्धो ने साहित्यिक रचना आरभ नही की, तब तक कोई उल्लेखनीय ग्रथ नही रचा गया।

ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर उसके बाद छठी शताब्दी तक दक्षिण मे जैनो और बौद्धो ने तमिळ साहित्य की अच्छी उन्नति की। उनकी रचनाए साहित्य की अमूल्य सपत्ति है। जैन और बौद्ध धर्मो के इस प्रात मे फैलने से तमिळ भाषा और साहित्य पर सस्कृत का प्रभाव भी बढने लगा। कई जैन विद्वान सस्कृत के प्रकाड पडित थे। उन्होने अपनी रचना मे सस्कृत शब्दो और विचारो का समावेश किया। जैनो ने तमिळ मे महाकाव्यो की रचना की। उनकी रचनाए मुख्यत नीति-प्रधान है। जैनो ने अनेक लक्षण-ग्रथ भी रचे।

जैन और बौद्ध धर्मो के ह्रास होने के बाद दक्षिण मे शैव और वैष्णव मतो का फिर से प्रचार बढा। शैव और वैष्णव सतो ने, जिन्हे नायनमार और आळवार कहते है, देश भर मे भ्रमण करके बौद्ध और जैन धर्मो का खडन किया तथा शैव और वैष्णव मत का प्रचार किया। ये नायनमार और आळवार तमिळ भाषा के प्रगाढ विद्वान, भक्त तथा अपने-अपने सप्रदाय मे गहरी आस्था रखनेवाले होते थे। ये अपने-अपने देवता की प्रशसा मे भक्ति-रसपूर्ण पद्य गाकर जनता को अपने-अपने धर्म की ओर आकर्षित किया करते थे। इनकी रचनाए भक्ति और प्रेम से सराबोर होती थी और लोग उन्हे सुनकर स्वभावत उनकी ओर आकर्षित हो जाते थे। इन्हे राजाओ का भी समर्थन प्राप्त था। इनके प्रभाव मे आकर जनता जैन और बौद्ध धर्मो से पराड्मुख होकर हिंदू धर्म की ओर पुन उन्मुख हुई। इस काल की रचनाए इन्ही सत कवियो के भक्तिपूर्ण उद्गार है। शैव भक्तो मे सबसे प्रमुख सतो के नाम तिरुज्ञानसबधर, अप्परस्वामी, सुदरमूर्ति और माणिक्कवाचकर है तथा वैष्णव भक्तो मे नम्माळवार, कुलशेखराळवार, तिरुमगैआळवार, आडाळ आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन भक्त कवियो ने अपनी रचनाओ मे भक्ति, शात और करुण रस की जो मदाकिनी बहाई है, उसमे स्नान करते-करते कोई साहित्य-रसिक कभी तृप्त नही हो सकता।

शैव और वैष्णव मतो की परपरा समाप्त होने के बाद फिर एक बार तमिळ साहित्य मे गतिरोध का दर्शन होता है। लगभग दो शताब्दी तक साहित्य की कोई विशेष प्रगति नही हुई। इस अवधि मे दक्षिण मे आर्य सस्कृति और साहित्य का प्रभाव बढा और साहित्य के क्षेत्र मे मौलिक रचनाओ का स्थान सस्कृत के पुराणो और महाकाव्यो के अनुवाद ने ग्रहण किया। इस काल मे काव्य-शैली तथा भाषा पर भी सस्कृत का प्रभाव लक्षित होता है। इस युग मे सस्कृत-पुराणो के आधार पर

तमिळ में भी कुछ मौलिक पुराण लिखे गये। इस युग के प्रसिद्ध ग्रंथों में महाकवि कंबन की रामायण, ओट्टकूत्तन का 'उत्तरकांडम', पुकलेंदी की 'नळवेण्बा' और 'पवलक्कोडिमाले' आदि रचनाएं हैं। इसी युग में सिद्ध संप्रदाय के अनेक कवि हुए जिन्होंने वैद्यक, ज्योतिष आदि विषयों पर ग्रंथ रचे। नच्चिनारक्कि-नियार, अडियार्क्कुनल्लर जैसे विद्वान भी इसी युग की देन हैं, जिन्होंने प्राचीन तमिळ ग्रंथों पर व्याख्याएं लिखी हैं।

महाकाव्य काल के बाद मठों और धार्मिक संस्थाओं का काल आता है। चौदहवीं सदी में इनका महत्व अधिक रहा। इनको राजादर प्राप्त था और देश के बड़े-बड़े धनिकों और विद्वानों की सहायता भी प्राप्त थी। इन मठों और धार्मिक संस्थाओं ने शैव मत के प्रचार के साथ-साथ तमिळ साहित्य की भी अनुपम सेवा की। छपाई की सुविधा न होने के कारण ग्रंथ ताड-पत्रों पर लिखे जाते थे और इसीलिए अग्नि, जल, कीड़े-मकोड़ों आदि में सुलभतया नष्ट हो जाते थे। इन ग्रंथों को इकट्ठा करके सुरक्षित रखने का श्रेय इन्हीं मठों व संस्थाओं को है। चौदहवीं, पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में इन मठों के आश्रय में तमिळ साहित्य का विस्तृत प्रचार हुआ, नवीन साहित्य का निर्माण हुआ और नये-नये विद्वान, लेखक और कवि उत्पन्न हुए। धर्मपुरम, तिरुप्पणवदाल आदि नामों से विख्यात मठ आज भी तमिळ साहित्य के गढ़ माने जाते हैं। इस युग में कालमेगम जैसे कवि, नमच्चि-वायर जैसे भाष्यकार, कुमरगुरुपर और तायुमानवर जैसे संत-कवि उत्पन्न हुए।

संघमों की कथा—हम पहले ही बता चुके हैं कि तमिळ साहित्य की अभिवृद्धि के लिए तीन संघम स्थापित हुए थे। प्रथम संघम की स्थापना दक्षिण मदुरा में हुई थी जो अब समुद्र में विलीन हो गया है। दूसरे संघम का केंद्र कवाटपुरम था, शायद यह भी समुद्र के गर्भ में समा गया है या नष्ट हो गया है। तीसरे संघम का केंद्र वर्तमान मदुरा था। ये तीनों नगर एक-दूसरे के बाद पांडिय राजाओं की राजधानी थे।

इन तीनों संघमों की विस्तृत कहानी तमिळ के एक प्राचीन ग्रंथ 'अहप्पोरुळ' के भाष्य में दी गई है। 'अहप्पोरुळ' प्रेम-काव्य का लक्षण-ग्रंथ माना जाता है। इसके रचयिता तमिळ भाषा के एक प्राचीन कवि इरैयनार कहे जाते हैं। इस ग्रंथ के संबंध में एक कथा प्रचलित है कि एक बार पांडिय देश में घोर अकाल

पडा। अकाल के कारण राजा ने अपने दरबार के सभी कवियो को बाहर भेज दिया। जब सुकाल आया तब उसने कवियो को पुन एकत्र किया। परतु यह देखकर उसे बहुत दुख हुआ कि अकाल की अवधि मे छद-शास्त्र के सभी ग्रथ खो गये है और कवियो की रचनाए व्याकरण-दोष से भरी हुई है। राजा की चिता देखकर भगवान शकर ने 'अहप्पोरुळ' नामक ग्रथ की रचना की और उसे अपने आसन के नीचे छिपाकर रख दिया। दूसरे दिन जब पुजारी मदिर की सफाई कर रहा था, तब ताम्र-पत्रो पर लिखा हुआ यह ग्रथ उसे प्राप्त हुआ। उसने उस ग्रथ को लेकर राजा के सम्मुख उपस्थित किया। इरैयनार ईश्वर को भी कहते है, इसलिए शायद किवदनी चली कि 'अहप्पोरुळ' भगवान शिव की रचना है।

तमिळ के महाकवि नक्कीरर ने इस ग्रथ का भाष्य लिखा है। इस सबध मे भी एक रोचक कथा है। जब ग्रथ राजा के सम्मुख उपस्थित किया गया, तब राजा ने पडितो को बुलाकर उसका अर्थ करने के लिए कहा। पर भिन्न-भिन्न विद्वानो ने उसके अलग-अलग अर्थ किये। प्रत्येक पडित अपने ही अर्थ का समर्थन करता था। यह निर्णय करना कठिन हो गया कि किसका अर्थ सही है और किसका गलत। पडितो की दुविधा को दूर करने के लिए भगवान शिव ने आदेश दिया कि उरुत्तिरशन्मन नामक एक पाच वर्ष का गूगा बालक महापडित है, उसके सम्मुख अपना भाष्य रखकर विचार कराओ। वह बालक सुन सकता था, पर बोल नही सकता था। कवियो ने अपना-अपना भाष्य उसके सामने पढकर सुनाया। जब नक्कीरर अपना भाष्य सुना रहे थे, तब बालक की आखो मे आनदाश्रु बहने लगे। यह देखकर विद्वानो ने यह निर्णय किया कि नक्कीरर का भाष्य ही शुद्ध है।

सघम का दूसरा उल्लेख तमिळ के 'तिरुविळैयाडल पुराणम' मे मिलता है। इस ग्रथ के रचयिता पुलियूर नबी नामक विद्वान कहे जाते है। इस ग्रथ का रचना-काल ईसा की बारहवी शताब्दी माना जाता है। परतु सघम सबधी गाथाए बहुत पहले से तमिळ देश मे प्रचलित थी, जिनका उल्लेख कवि ने अपने ग्रथ मे किया है।

तमिळ सतो के भजनो मे भी सघम का उल्लेख कही-कही पाया जाता है। तिरुज्ञानसबधर, तिरुमगैआळवार, आडाळ आदि शैव तथा वैष्णव सतो ने

अपनी रचनाओं में संघम का जिक्र किया है। कथा है कि महाकवि कंबन की रामायण और वैष्णव संतों की रचनाओं (तिरुवायमोली) को भी संघम की प्रामाणिकता प्राप्त हुई थी।

इससे ज्ञात होता है कि तमिळनाडु में संघम की कथा बिल्कुल कपोल-कल्पित नहीं है, परंतु एक ऐतिहासिक घटना है।

इरैयनार के 'अहप्पोरुळ' के भाष्य में तीनों संघमों की कथा निम्न प्रकार दी गई है

पांडिय राजाओं ने तीन संघमों की स्थापना की—प्रथम, मध्यम और अंतिम। प्रथम संघम के सदस्यों की संख्या ५४९ थी। इसका आरंभ अगत्तियर (अगस्त्य मुनि), तीन नगरों को भस्म करनेवाले जटाधारी शिव, पर्वतों पर शासन करनेवाले (भगवान) मुरुगन, मुडिनागरायर तथा धन के देवता कुबेर से हुआ था। इस संघम में ४४४९ कवियों ने अपनी रचनाएं उपस्थित कीं। इन कवियों ने अनगिनत पद्य रचे। ये कवि ४४०० वर्ष तक संघम के सदस्य रहे। इस संघम में ८९ राजाओं ने भाग लिया जिनमें से सात राजा स्वयं कवि थे। इस संघम का केंद्र दक्षिण मदुरा था जो समुद्र में समा गया है। इस संघम का प्रामाणिक व्याकरण 'अगत्तियम्' (अगस्तियम) था।

दूसरे संघम के सदस्य ५९ थे। इसका आरंभ अगत्तियर (अगस्त्य), तोळहाप्पियर, इरिदैयर आदि कवियों द्वारा हुआ था। इस संघम के अधीन ३६०० कवियों ने रचनाएं कीं। इस समय के प्रामाणिक व्याकरण 'अगत्तियम', 'तोळहाप्पियम' 'मापुराणम', 'इशैनुणुक्कम' और 'भूत पुराणम' थे। इस संघम की अवधि ३६०० वर्ष थी। राजा वेदरचोलियन से लेकर ५९ पांडिय राजाओं ने इस संघम का संरक्षण किया था। इनमें से पांच राजाओं ने कविता की। संघम का अंतिम संरक्षक मुदत्तिरुमारन था। इस संघम का केंद्र कपाटपुरम था। शायद यह नगर भी समुद्र में विलीन हो गया।

तीसरे संघम के सदस्य ४९ थे। इसका आरंभ शिरु मेदावियार, नक्कीरर आदि अनेक कवियों द्वारा हुआ था। इसके अधीन ४४९ कवियों ने रचना की थी। इन कवियों द्वारा 'नेडुदोहै', 'कुरुदोहै', 'नट्रिनै', 'पुरम' आदि अनेक ग्रंथ रचे गये। इस काल के भी प्रामाणिक व्याकरण 'अगत्तियम' और 'तोळहाप्पियम' थे। इस संघम की अवधि १८५० वर्ष थी। इसका संरक्षण ४९ राजाओं द्वारा

हुआ था, जिनमे सर्वप्रथम राजा मुडित्तिरुमारन था। कवाटपुरम के समुद्र मे समा जाने के पश्चात वह अपनी राजधानी को मदुरा ले आया था। तव मे इस सघम का केद्र वर्तमान मदुरा वना।

सघमो की इस कथा की प्रामाणिकता के सवध मे विद्वानो मे सदेह है। पहले तो तीनो सघमो की १२००० वर्ष की लवी अवधि विद्वानो को सदेह मे डालती है। इसकी कल्पना आर्यो के चार युगो की कल्पना जैसी ही प्रतीत होती है। इतने लवे अरसे तक किसी सस्था का कायम रहना और इतने कवियो का उसमे भाग लेना सदेह का विषय है। फिर पहले सघम के कवियो मे शिव, मुरुगन, कुवेर आदि देवताओ के नाम भी आये है। इन अशरीरी देवताओ का सवध सघम के साथ जोडने मे उस सघ की वास्तविकता के सवध मे सदेह उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सभव है इसका अर्थ इतना ही हो कि सघम को इन देवताओ के आशीर्वाद प्राप्त थे।

अगस्त्य का नाम तीनो सघमो मे आना भी सदेह का एक विषय है। पता नही वास्तव मे अगस्त्य किस सघ मे वर्तमान थे। सभव है अगस्त्य किसी कुल का नाम रहा हो, जिसमे अनेक विद्वान पैदा हुए हो और उस वश मे पैदा होनेवाले सभी अपने को अपने आदि पुरुष अगस्त्य के नाम से ही पुकारते हो। इस वश के कुछ विद्वानो का सवध पहले सघम मे, कुछ का दूसरे से और कुछ का तीसरे से रहा होगा।

पुराणो के अनुसार पहले सघम का आरभ अगस्त्य से हुआ था। अगस्त्य के सवध मे अनेक दत-कथाए प्रचलित है। कहा जाता है कि अगस्त्य मुनि उत्तर के रहनेवाले थे। उन्होने दक्षिण मे आकर पोदियमलै नामक पर्वत पर अपना निवास स्थापित किया और तमिळ भाषा की अभिवृद्धि मे लगे। पुराणो से पता चलता है कि अगस्त्य ने तमिळ भाषा का एक वृहत व्याकरण लिखा था जिसमे १२००० सूत्र थे। अव इन सूत्रो का पता नही चलता। उसके वाद की रचनाओ मे उनके कुछ सूत्रो का उल्लेख मात्र मिलता है, जिससे पता चलता है कि अगस्त्य ने अपने ग्रथ मे गद्य, पद्य और नाटक इन तीनो की विस्तृत आलोचना की थी।

लोगो का विश्वास है कि अगस्त्य ने ही तमिळ लोगो को आयुर्वेद, शिल्प-कला नक्षत्र-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, ज्योतिष आदि विषयो का ज्ञान दिया। यह भी

समय ईसा से लगभग ५०० वर्ष पूर्व माना जाता है। यह निर्विवाद है कि जब तक किसी भाषा मे साहित्य-रचना न होने लगे, तब तक उसमे व्याकरण और लक्षण-ग्रथो की रचना सभव नही। अगस्त्य और तोळहाप्पियर को अपने ग्रथ लिखने के लिए अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियो की रचनाओ का अध्ययन करना पडा होगा। तोळहाप्पियर का व्याकरण छद-शास्त्र की दृष्टि से बडा पूर्ण है। इससे प्रतीत होता है कि तोळहाप्पियर के समय से पूर्व ही तमिळ भाषा मे साहित्य-रचना आरभ हो गई थी। इन प्रमाणो के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि ईसा से ५०० वर्ष से लेकर १००० वर्ष पूर्व तमिळ मे पद्य-रचना आरभ हुई होगी और पाडिय राजाओ ने साहित्य की उन्नति के लिए ईसा से लगभग ५०० वर्ष पूर्व सघम की स्थापना की होगी।

इन सघमो ने तमिळ साहित्य की अभिवृद्धि और सशोधन के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। इन्होने साहित्य की शुद्धता की रक्षा की और अनधिकारी कवियो की रचनाओ को साहित्य मे स्थान पाने से रोका। इन्होने साहित्य के ऊपर जो सेसर--नियत्रण--रखा, उससे अच्छे साहित्य के प्रचार मे पूरी-पूरी सहायता मिली।

सघम-काल की रचनाए--प्रथम सघम--प्रथम सघम के सबध मे यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि यह कब बना, कितने वर्षो तक कार्य किया, कौन-कौन कवि इसके सदस्य थे और इसके अधीन कौन-कौन-सी रचनाए हुई। इस काल के कवियो मे केवल अगस्त्य और मुरिजियूर मुडिनागरायर, ये दो ही व्यक्ति ऐतिहासिक मालूम होते हैं। बाकी जितने नाम दिये गये हैं, कल्पित व्यक्तियो के या देवताओ के हैं। अगस्त्य के सबध मे भी हमारी जानकारी अपूर्ण और अस्पष्ट है। इनके सबध मे केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह उत्तर भारत से अपने बारह शिष्यो के साथ दक्षिण मे आये और पोदियमलै नामक पहाडी पर उन्होने अपना आश्रम स्थापित किया। तमिळ व्याकरण के रचयिता तोळहाप्पियर उन्हीके शिष्यो मे से थे। पुराणो मे इस काल की अनेक रचनाओ के नाम दिये गये हैं। पर आज उनमें से कोई भी रचना प्राप्त नही है।

द्वितीय सघम--जो बात पहले सघम के बारे मे लिखी गई है, वही दूसरे सघम के बारे मे भी कही जा सकती है। दूसरा सघम भी कब वर्तमान था और इस काल मे क्या-क्या ग्रथ रचे गये, यह कहना कठिन है। इस काल के भी

अनेक ग्रथो के नाम दिये गये है। परतु एक ग्रथ को छोडकर बाकी का पता नही। इस काल की रचनाओ मे तोळहाप्पियर का व्याकरण ही अवशेष है।

तोळहाप्पियर के विषय में कहा जाता है कि वह जमदग्नि ऋषि के पुत्र और अगस्त्य मुनि के शिष्य थे। उन्होने तमिळ भाषा का एक वृहत व्याकरण लिखा, जिसे 'तोळहाप्पियम' कहते है। यह तमिळ भाषा का सबसे प्राचीन और अद्भुत ग्रथ है। इससे तमिळ की प्राचीनता और सपन्नता का पता चलता है। इसमे १२७६ सूत्र है। पूरा ग्रथ तीन अधिकारो म विभक्त है—एळुत्तधिकारम, शोल्लधिकारम और पोरुळधिकारम। पहले अधिकार मे वर्णो और ध्वनियो पर, दूसरे मे शब्द, रूप तथा वाक्य-रचना पर, तथा तीसरे अधिकारम मे अर्थ पर विचार किया गया है और इसी तीसरे अधिकारम मे देश की सामाजिक अवस्था का भी चित्र दिया गया है। व्याकरण की दृष्टि से जहा पहला और दूसरा अधिकारम महत्व रखते है, वहा तीसरा अधिकारम उस समय की सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक अवस्था को समझने मे सहायक है। 'तोळहाप्पियम' का यह अधिकारम सबसे महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। इसमे काव्य के अतरग विषय की विवेचना की गई है। इस अधिकारम के प्रथम दो अध्याय है 'अहम' और 'पुरम'। 'अहम' अध्याय मे प्रेम, प्रेम की विभिन्न अवस्थाए, विवाह-पद्धति आदि का और 'पुरम' अध्याय मे जीवन के इतर अग—प्रधानतया युद्ध और राजनैतिक कार्य आदि का विवेचन किया गया है। इसी अध्याय मे उस समय के पाच 'तिणै' (प्रदेशो) की सभ्यता व सस्कृति का वर्णन मिलता है। प्राचीन काल मे भी इस ग्रथ के अनेक भाष्य लिखे गये थे। 'तोळहाप्पियम' और उसके भाष्यो मे हमे आज से दो हजार वर्ष पूर्व के तमिळ समाज की अवस्था का बहुत-कुछ ज्ञान उपलब्ध होता है।

तोळहाप्पियर ने काव्यो के अगो का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए अपने पूर्व के कवियो की रचनाओ से भी कई उदाहरण दिये है। इससे यह प्रकट होता है कि तोळहाप्पियर के कई सौ वर्ष पहले ही तमिळ भाषा मे साहित्य रचना आरभ हो गई थी।

तृतीय सघम—साहित्यिक उन्नति की दृष्टि से तीसरे सघम का काल ही सबसे महत्वपूर्ण है। तमिळ साहित्य की सभी महत्वपूर्ण रचनाए इसी काल मे हुई थी। यह काल ५०० वर्ष ई० पू० से लेकर उसकी पहली या दूसरी शताब्दी के अत तक माना जाता है। इस काल मे कई बडे-बडे कवि हुए और कई महत्व-

पूर्ण ग्रथ लिखे गये। इस समय की भी बहुत सी रचनाए नष्ट हो गई है, पर जो प्राप्त है, उनसे उस समय के साहित्यिक विकास का अच्छा प्रमाण मिलता है। यह काल तमिळनाडु के लिए विशेष तौर पर धार्मिक शाति और भक्ति का था। इस समय की रचनाए प्रेम, भक्ति, वीरता और नीति के भावो से ओत-प्रोत है। इस काल के अधिकतर पद्य मुक्तक है और भिन्न-भिन्न कवियो द्वारा रचे गये है। आगे चलकर भिन्न-भिन्न नामो से उनका सग्रह किया गया। मागुडी मरुदनार, नक्कीरर, कपिलर, भरणर आदि महाकवि इस काल के जगमगाते नक्षत्र थे। 'करिकालचोळन,' तोडैमान इलदिरैयन, पाडियन नेडुचेलियन आदि राजा सघम के प्रसिद्ध सरक्षको मे से थे। सघम काल के कुछ प्रसिद्ध कवियो का विस्तृत परिचय अन्यत्र दिया गया है।

तीसरे सघम काल की रचनाओ मे 'एट्टुत्तोगै' (आठ सग्रह), 'पत्तुप्पाट्टु' (दस काव्य), 'पदिनेणकील कणक्कु' (अठारह काव्यो का सग्रह), 'ऐवेरुगाप्पियगल' (पाच महाकाव्य) इस तरह के ४६ भिन्न-भिन्न सग्रह मिलते है। इनके अलावा और भी कई छोटे-छोटे ग्रथ है जिनकी रचना उसी काल मे हुई थी, पर जिनकी गणना सघम काल के ग्रथो मे नही होती। 'ऐवेरुगाप्पियगल' को छोडकर शेष प्रत्येक सग्रह मे छदो की सख्या भिन्न-भिन्न है। इन सग्रहो के छद किसी विशेष कवि के न होकर भिन्न-भिन्न कवियो के रचे हुए है। किसी एक विशेष कवि ने या कुछ कवियो ने मिलकर उनका सकलन किया है।

'एत्तोट्टुगै' मे आठ सग्रह के नाम ये है—'नट्रिरनै', 'कुरुतोगै', 'पदिट्रप्पत्तु', 'परिपाडल', 'कलित्तोगै', 'नेडुतोगै', 'अहनानूरु' और 'पुरनानूरु'।

१ **नट्रिरनै**—इसमे ४०१ पद्य है। यह ग्रथ १७५ कवियो की फुटकर रचनाओ का सग्रह है। इन पद्यो मे तमिळनाडु के मुल्लै, मरुदम, कुरिजि, पालै और नेय्दल इन पाच तिणै (प्रदेशो) का वर्णन है। पुस्तक का प्रधान विषय प्रेम है।

२ **कुरुंतोगै**—इसमे ४०२ पद्य है और इसमे २०५ कवियो की रचनाए सगृहीत है। इनमे पाचो प्रदेशो की सामाजिक और धार्मिक अवस्थाओ का वर्णन है।

३ **पदिट्रप्पत्तु**—यह करहण की राजतरगिणी जैसा ग्रथ है। इसमे चेर वश के अनेक राजाओ के नाम और उनके कृत्यो का वर्णन है। इसमे आज से २००० वर्ष पूर्व की राजनैतिक अवस्था का चित्र है।

४ **परिपाडल**—इसमे ७० छद थे, पर इसका अधिकाश भाग खो गया है और अब केवल २४ पद्य ही प्राप्त है।

५ **कलित्तोगै**—इसमे १५० कवियो के,४०९ पद्य सगृहीत है। इनमे भी पाचो प्रदेशो का ही वर्णन है और उस काल की कुछ विचित्र विवाह सबधी प्रथाओ का और देश की अवस्था का वर्णन है।

६ **अहनानूरु और पुरनानूरु**—अहनानूरु मे ५०० और पुरनानूरु मे ४०० पद्य सगृहीत है। 'आठ सग्रहो' मे इन दोनो का स्थान सबसे ऊचा है। इनमे आज से २००० वर्ष पूर्व की तमिळ सभ्यता और सस्कृति का, उस समय के धार्मिक विश्वासो, रस्म-रिवाजो और विवाह-प्रथा आदि का विशद और रोचक वर्णन मिलता है। तमिळ के पाच प्रदेशो मे भौगोलिक आधार पर भिन्न-भिन्न सभ्यताओ का विकास हुआ था, प्रत्येक प्रदेश का अपना-अपना तौर-तरीका और रीति-रिवाज था, जिनका मनोहर वर्णन इन पुस्तको मे पाया जाता है। इस दृष्टि से यह सग्रह अत्यत महत्वपूर्ण है।

'पत्तुप्पाट्टु' का अर्थ है दस काव्यो का सग्रह। इसमे दस ग्रथ है और प्रत्येक भिन्न-भिन्न कवि की रचना है। इस सग्रह के ग्रथ मागुडि मरुदनार, नक्कीरर, कपिलर आदि सघम काल के प्रसिद्ध कवियो द्वारा रचे गये है। इनमे भी उस समय की राजनैतिक और धार्मिक अवस्थाओ का वर्णन है। इस सग्रह के एक ग्रथ मे काचीपुरम का, दूसरे मे कावेरि-पू-पट्टिणम का तथा तीसरे मे पाडिय राजाओ के कार्य-कलापो का रोचक वर्णन है। इसके निम्नलिखित दस ग्रथ है

१ **तिरुमुरुकाट्रुप्पडै**—३१७ पक्तियो का यह छोटा सा ग्रथ तीसरे सघम के प्रसिद्ध कवि नक्कीरर की रचना है। इसमे भगवान मुरुगन के भिन्न-भिन्न अवतारो और तीर्थ-स्थानो का भक्तिपूर्ण वर्णन है। इसके पद्य आज भी मुरुगन (सुब्रह्मण्य) के भक्तो के बीच समादृत है और श्रद्धा से गाये जाते है।

२ **पोरुनर-आट्रुप्पडै**—इस ग्रथ मे करिकाल चोळन के प्रारभिक जीवन का बडा ही मनोहर वर्णन मिलता है। इसमे चोळ राज्य, उसके वैभव, उसकी उर्वरता, राजा की योग्यता आदि का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। चोळो के समय से ही कावेरी के जल से सिचाई का काम लिया जाता था, इसका भी जिक्र पुस्तक मे मिलता है। यह भी २४८ पक्तियो का एक छोटा सा ग्रथ है।

३ **शिरुपाणाट्रुप्पडै**—यह ग्रथ भी पोरुनर-ग्राट्रुप्पडै की तरह छोटा पर रोचक है। इसमे चोळ और पाडिय देश के अनेक छोटे-छोटे राजाओ तथा उस काल की तमिळ देश की राजनैतिक अवस्था का वर्णन है।

४. **पेरुवाणाट्रुप्पडै**—ऐतिहासिक दृष्टि से यह पुस्तक भी अत्यत महत्व-पूर्ण और उपयोगी है। इसमे काची के तोडैमान इलदिरैयन नामक राजा की जीवन-कहानी, काची की आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक अवस्था का वर्णन बडे विस्तार के साथ किया गया है। इलदिरैयन कोई बहुत प्रतापी राजा नही था, पर वह कवियो का पोषक था। इस समय तक काची मे आर्य-सस्कृति का पूरा-पूरा प्रचार हो चुका था। नगर मे विष्णु और शिव के अनेक मदिर स्थापित हो चुके थे। यह ग्रथ उस समय की देश की स्थिति समझने मे बहुत सहायक है।

५ **मुल्लैप्पाट्टु**—यह भी १०३ पक्तियो का एक छोटा सा ग्रथ है। यह भी एक प्रेम-काव्य है और राजा नेडुजेलियन की प्रशसा मे रचा गया है।

६ **मदुरैक्काची**—इसके रचयिता सघम काल के प्रसिद्ध कवि मागुडि-मरुदनार थे। इन्होने अपने समय के पाडिय राजा नेडुजेलियन की प्रशसा मे अत्यत सुदर पद्य रचे है। इस सग्रह का यह सबसे प्रसिद्ध ग्रथ है। इस ग्रथ मे उस समय के नगर, बदरगाह, त्यौहार, देश की शासन-व्यवस्था आदि का विस्तृत वर्णन है। इस ग्रथ में पाडियो की राजधानी मदुरा नगर का एक रोचक वर्णन है। इस ग्रथ से प्राचीन तमिळ सस्कृति पर अच्छा प्रकाश पडता है।

७. **नेडुनलवाडै**—यह भी महाकवि नक्कीरर की रचना मानी जाती है। यह भी एक प्रेम-काव्य है। राजा नेडुजेलियन जब युद्ध पर जाता है, तब उसकी रानी किस तरह विलाप करती है, इसीका वर्णन कवि ने बडे ही मार्मिक ढग से किया है। इस पुस्तक मे उस समय की युद्ध-पद्धति का भी उल्लेख है।

८ **कुरिंजिप्पाट्टु**—इस ग्रथ के रचयिता सघम काल के एक प्रतिभा-शाली कवि कपिलर थे। यह भी एक प्रेम-काव्य है। इसमे कवि ने तमिळनाडु की सामाजिक अवस्था तथा पहाडी प्रदेश मे प्रेम के रूप का चित्र खीचा है। इस प्रेम-काव्य की कहानी इस प्रकार है—एक सुदर लडकी अपनी धाय के साथ अपने खेतो की रखवाली के लिए जाती है। उसी समय एक पहाडी राजा शिकार करता हुआ वहा आ पहुचता है। राजा लडकी की सुदरता पर मोहित हो जाता है।

लडकी के हृदय मे भी राजा के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। उस दिन से दोनो लुक-छिपकर एक-दूसरे से मिलते है। फिर वे आपस मे गाधर्व रीति से विवाह कर लेते है। राजा लडकी को छोडकर अपने देश को लौट जाता है। जब कन्या राजा के विरह मे दुबली होने लगती है, तब उसके माता-पिता को उसके प्रेम का रहस्य ज्ञात होता है। वे अनेक तरह से कन्या के प्रेम की परीक्षा करते है और उन दोनो का विवाह करा देते है। कवि ने इस साधारण सी घटना का बडा रोचक वर्णन किया है।

९ **पट्टिणप्पालै**—यह ग्रथ उरुत्तिरक्कण्णणार की रचना है। कवि ने अपनी रचना मे करिकाल चोळन के अधीन कावेरि-पू-पट्टिणम नगर के बढते हुए वैभव, व्यापार और शासन-व्यवस्था का वर्णन किया है। इस ग्रथ से ज्ञात होता है कि करिकाल के समय से ही भारत के जहाज व्यापार के लिए विदेशो मे जाने लगे थे। राजा ने कवि की प्रतिभा पर प्रसन्न होकर उसे सोलह लाख पोन (सिक्के) इनाम दिये थे।

१०. **कूत्तराट्रुप्पडै**—५८३ पक्तियो का यह काव्य नन्नन नामक किसी राजा की प्रशसा मे लिखा गया है।

पदिनेणकील क्कणक्कु (अष्टादश काव्य)—यह अठारह काव्यो का सग्रह है। इसमे तिरुक्कुरल को छोडकर बाकी सब छोटे-छोटे ग्रथ है। ये सभी सग्रह तीसरे सघम काल के, अर्थात ईसा से पूर्व पहली शताब्दी की रचनाए मानी जाती है। सभव है कुछ रचनाए ईसा के बाद की भी हो। प्राय सभी सग्रहो का मुख्य विषय प्रेम, युद्ध या नीति है।

उपर्युक्त काव्य-सग्रहो मे महाकवि तिरुवल्लुवर के 'मुप्पाल' या 'तिरुक्कुरल' नामक ग्रथ का स्थान सबसे ऊचा है। इस ग्रथ के सबध मे अलग विस्तार के साथ लिखा गया है।

'तिरुक्कुरल' के पश्चात इस काल का दूसरा प्रसिद्ध ग्रथ 'नालडियार' है। यह भी कुरल के ही जैसा ग्रथ है। इसका लेखक एक जैन था। इसमे अर्थ, धर्म और काम की व्याख्या की गई है। इसमे ४०० पद्य है, जो भिन्न-भिन्न कवियो द्वारा रचे गये है। पूर्व के सग्रहो और इस सग्रह मे एक महत्वपूर्ण अतर देखने मे आता है। पूर्व के सग्रह प्राय सब-के-सब भौतिक जीवन के भिन्न-भिन्न कार्य-कलापो से सबध रखते है। उनके मुख्य विषय प्रेम और युद्ध थे। किंतु इस सग्रह का मुख्य

विपय आध्यात्मिक है। इससे सदेह होता है कि ये रचनाए तीसरे सघम के अतिम समय की होगी जबकि जैन और बौद्ध उपदेशको के प्रभाव मे आकर कवियो का ध्यान भौतिक जीवन की सुदरताओ से हटकर आतरिक जीवन की ओर मुड गया था, जब शृगार और प्रेम का स्थान नीति और धर्म ने ले लिया था। 'तिरुक्कुरल' और 'नालडियार' दोनो इसी दृष्टिकोण से लिखे गये है।

तिरिकटुकम—सोठ, गोल मिर्च और पीपल इन तीनो के समूह को 'त्रिकटुकम' कहते है। आयुर्वेद मे ये तीनो चीजे बहुत ही स्वास्थ्यवर्धक मानी जाती है। नल्लादनार नामक कवि ने इसी नाम से जो रचना की है, उसके प्रत्येक छद मे तीन सुदर उपदेश दिये गये है। उदाहरण के लिए

"यौवन के मद मे पथ-भ्रष्ट हो जाना स्वाभाविक है।
निपिद्ध बाते बोलना मूर्खता है।
ओछेपन से क्रोध उत्पन्न होता है।
अतएव ये तीनो त्याज्य है।"

नान्मणिक्कडिकै—इस शब्द का अर्थ 'चार मणियो की लडी' है। इसके प्रत्येक छद मे चार सुदर उपदेश दिये गये है। इसके रचयिता विलवि नागनार नामक एक वैष्णव थे। इसका एक उदाहरण

"कळ्ळि (एक काटेदार पौधा) मे भी सुदर फूल लगते है।
हिरन के शरीर से भी सुगधित कस्तूरी निकलती है।
खारे समुद्र मे भी स्वच्छ मोती उत्पन्न होते है।
नीच जातियो मे भी सज्जन जन्म लेते है।"

शिरुपचमूलम—'पचमूलम' पाच पौधो की जडो को कहते है। इसके प्रत्येक छद मे पाच ऐसे तथ्य व्यक्त किये गये है जो पचमूल की तरह ही हितकारी है। इसके रचयिता कारियाशान नामक जैन थे। उदाहरण के लिए

"नेत्रों का सौदर्य कृपा दृष्टि मे है।
पैरो का सौदर्य दृढता मे है।
गणित का सौदर्य सही आकडो मे है।
सगीत का सौदर्य श्रवण की मधुरता मे है।
और राजा का सौदर्य देश की सपन्नता मे है।"

एलादि—यह भी वैद्यक का ही एक शब्द है जिससे इलायची, सोठ, मिर्च

आदि छ पदार्थों का बोध होता है। 'एलादि' के रचयिता कणि मेदावियार नामक जैन थे। इसके प्रत्येक छद मे छ उपदेश होते है। उदाहरण

"ज्ञानियो ने सच्ची मित्रता के ये छ लक्षण बताये है—एक के बिना दूसरे का जीवन असभव होना, एक की सपत्ति पर दूसरे की भी स्वत्व-भावना, दोनो मे मधुर सभाषण, परस्पर मिलने की उत्कठा, बिछुडने मे दुख, एक के दुख से दूसरे का दुखी होना।"

कार्-नार्पदु—कार शब्द का अर्थ है वर्षा ऋतु और नार्पदु का अर्थ है चालीस। इसमे चालीस छदो मे कवि ने अत्यत सुदर और रोचक ढग से वर्षा ऋतु और एक वियोगिनी के विरह-ताप का भावपूर्ण वर्णन किया है। इसमे वर्षा मे खिलनेवाले फूलो का भी वर्णन है। इसके रचयिता कण्णङकूत्तनार थे, जो मदुरा के निवासी थे।

कलवलि नार्पदु—इसमे चालीस छद है, जिनमे किसी चेर राजा पर कोच्चन कण्णन नामक चोळ राजा की विजय का वर्णन है। इसमे वीर और वीभत्स रस की प्रधानता है। इसके रचयिता पोरकैंयार नामक कवि थे।

इनियवैनार्पदु—इसमे चालीस छदो मे सुदर और मधुर उपदेश दिये गये है। इनिय का अर्थ है मीठा। यह ग्रथ प्राय तमिळ बालको को ठीक उसी तरह सिखाया जाता है जिस तरह उत्तर भारत मे रहीम और वृद के दोहे। इसके रचयिता पूत चेर्दनार है।

इन्ना नार्पदु—इन्ना शब्द का अर्थ है नही। इसमे कपिलर नामक किसी कवि ने चालीस छदो मे निषिद्ध कार्यो को बताया है। उदाहरण के लिए

"निर्धन की उदारता व्यर्थ है। निर्धन का धनिको के बीच रहना अनुचित है। खाने की चीजो को देखने मात्र से भूख मिटाने का प्रयत्न व्यर्थ है। सकट मे साथ छोड देनेवाले मित्रो की मित्रता व्यर्थ है।"

(नोट—'इनियवैनार्पदु' मे करणीय विषयो की और 'इन्ना नार्पदु' मे अकरणीय विषयो की चर्चा की गई है।)

ऐंतिणै—इसके अदर पाच छोटे-छोटे ग्रथ है। ये पाचो शृगार-काव्य है जिनमे पाच तिणै के सबध मे कहा गया है।

पळमोळि—पळमोळि का अर्थ होता है कहावत। इसमे चार सौ

छद हैं, जिनमे प्रत्येक का अतिम चरण कोई-न-कोई लोकोक्ति है। इसके रचयिता मुन्रुरै मरुदनार थे। उदाहरण

"यदि किसी मनुष्य के पास अपार धन-सपत्ति हो,
पर उसमे सच्चा सयम न हो,
ऐसे व्यक्ति को अधिकार देना
बदर के हाथ मे मशाल देने के बराबर है।"

मुदुमोलिक्काचि—यह भी उपदेशो का एक सग्रह है। इसके दस विभाग हैं और प्रत्येक विभाग मे उपदेशो से भरे हुए दस-दस छद हैं। इसके समस्त उपदेश जीवन और लौकिक व्यवहार से सबध रखते हैं। जैसे

"विद्या से भी बडी चीज विनय है,
दान से भी बडा सत्य भाषण है,
उच्च कुल मे उत्पन्न होने का लक्षण दयालुता है,
विदेश के लोगो के आचार-विचार का उपहास करना अनुचित है।"

सघम काल मे उपर्युक्त रचनाओ के अतिरिक्त भी कुछ रचनाए हुई। इनका और इनके रचयिताओ का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

तेरैयार—यह भी अगस्त्य के शिष्यो मे कहे जाते हैं। जिस तरह तोळकाप्पियर ने व्याकरण ग्रथ रचा, उसी तरह तेरैयार ने वैद्यक के ऊपर ग्रथ रचा। कहा जाता है कि इस कला मे वह अपने गुरु अगस्त्य से भी अधिक निपुण थे। उन्होने किसी रोगी की खोपडी का आपरेशन करके उसके अदर से मेढक के आकार का बढा हुआ मास-पिड निकालकर उसे चगा किया था। इसीलिए इनका नाम तेरैयार प्रसिद्ध हुआ। तेरै तमिळ मे एक प्रकार के मेढक को कहते हैं। लोगो का विश्वास है कि इन्होने वैद्यक शास्त्र पर २१ ग्रथ रचे, जिनमे से अब करीब नौ-दस ही प्राप्त हैं, बाकी नष्ट हो गये हैं। 'पदार्थ-गुण-चितामणि' नामक १८०० छदो का उनका वैद्यक शास्त्र ग्रथ अब भी प्राप्त है और बहुत प्रसिद्ध है। यह तमिळ, सस्कृत और तेलुगु भाषाओ के पडित और तमिळ के अच्छे कवि थे। यह वैद्यक-शास्त्रज्ञ ही नही, अपितु नक्षत्र-शास्त्र और रसायन-शास्त्र के भी बडे विद्वान थे। तमिळ भाषा मे वैद्यक और रसायन-शास्त्र पर ग्रथ रचनेवाले प्रथम लेखक यही थे।

औवैयार—सघम काल के कवियो मे औवैयार का स्थान वहुत ऊचा है। आज भी तमिळनाडु मे इनका नाम वहुत प्रसिद्ध है। सभवत तमिळ साहित्य की प्रथम विदुषी और कवयित्री यही है। कहा जाता है कि यह वडी तीक्ष्ण बुद्धिवाली थी और लोग इन्हे सरस्वती का अवतार मानते थे। इनकी रचनाओमे 'आत्तिच्चूडि', 'कोन्रैवेदन', 'नल्वळि' आदि सवसे प्रसिद्ध है। इन ग्रथो मे नीति के उपदेश है। इस युग की और भी अनेक स्त्री कवियो के नाम मिलते है, परतु वे अधिक प्रसिद्ध नही है। इसलिए उनके नाम हम नही दे रहे है।

इरैयनार—इस काल के कवियो मे इरैयनार का नाम भी प्रसिद्ध है। इन्होने 'अहप्पोरुल' नामक व्याकरण ग्रथ रचा, जिस पर नक्कीरर ने भाष्य लिखा था। कुछ लोगो का विश्वास है कि यह ग्रथ भगवान शिव ने स्वय रचाया। इसका उल्लेख हम पहले भी कर चुके है।

२. बौद्ध और जैनकाल

ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी मे ही बौद्ध और जैन मत तमिळनाडु मे फैल चुके थे। तमिळ राजा धार्मिक मामलो मे काफी उदार थे और उन्होने सभी धर्मो को समान रूप से वढने की सुविधा दी थी। ईसा की छठी और सातवी शताब्दी तक यहा इन धर्मो का वहुत ज़ोर रहा। इसके वाद दोनो धर्मो का ह्रास होने लगा। बौद्ध धर्म सदा के लिए भारत से विदा हो गया, पर जैन धर्म अव भी यहा वर्तमान है। दक्षिण भारत के कई स्थानो मे जैनो की वस्तिया है। ये लोग सव-के-सव तमिळ जैन है और पश्चिम भारत के जैनो के साथ इनका जातिगत कोई सवध नही है।

साहित्य रचना मे बौद्धो और जैनो ने पर्याप्त अभिरुचि दिखाई थी। सघम काल मे ही ये लोग तमिळ भाषा मे रचना करने लग गये थे। पर ईसा की पहली शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक तमिळ साहित्य पर उनका अधिक प्रभाव रहा। इसीलिए तमिळ साहित्य के इतिहास मे यह काल जैन काल के नाम से प्रसिद्ध है। इस काल मे फुटकर रचनाओ की अपेक्षा महाकाव्यो की रचना प्रधान रूप से हुई। बौद्ध और जैन लेखको ने महाकाव्य लिखने मे अधिक निपुणता दिखलाई। ये महाकाव्य तमिळ साहित्य की अमूल्य सपत्ति है। इसीलिए इस काल को 'महाकाव्यो का काल' भी कहा जाता है। इन कवियो के ग्रथ मुख्यत

नीति-प्रधान है। इन्होने अपनी रचनाओ मे कथा के साथ अपने धार्मिक विचारो, विश्वासो, नियमो, रूढियो आदि का अच्छा सम्मिश्रण किया है, जिनकी सहायता से उस समय के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन का भी अच्छा ज्ञान होता है। जैन लोग अच्छे साहित्यकार थे और उन्होने अपनी रचनाओ से तमिळ साहित्य के भडार को विशेप रूप से परिपूर्ण किया है। इन्होने महाकाव्यो के अतिरिक्त व्याकरण, छद-शास्त्र आदि के भी अनेक ग्रथ रचे।

इस काल मे तमिळ मे पाच महाकाव्यो की रचना हुई। इनके नाम है—शिलप्पधिकारम, मणिमेखलै, जीवकचितामणि, वलयापति और कुडलकेशी। इनमे से पिछले दो महाकाव्यो का पता नही चलता। शायद दोनो नष्ट हो गये हो, अव उनके नाम ही बचे है।

इन महाकाव्यो के नामो के सवध मे एक विशेष वात यह है कि ये पाचो नाम शरीर के पाच आभूपणो का वोध कराते है। 'शिलप्पधिकारम' मे 'शिलवु' शब्द का अर्थ है नूपुर। 'मणिमेखलै' कमर की करधनी को कहते है। इस कथा की नायिका का नाम भी मणिमेखलै ही है। 'चितामणि' माला की मणि है। 'वलयापति' हाथ के ककण से सवध रखता है। तमिळ मे 'वलय' ककण को कहते है। 'कुडलकेशी' से कान के कुडल का वोध होता है। सभव है कथा की नायिका का नाम भी यही रहा हो। तमिळ विद्वानो का अनुमान है कि ये पाचो सरस्वती के अग के पाच आभूपणो के द्योतक है।

उपर्युक्त पाच महाकाव्यो मे 'मणिमेखलै' और 'शिलप्पधिकारम' दोनो तमिळ साहित्य के अद्भुत ग्रथ है। इन दोनो की कहानिया वौद्ध धर्म से सवध रखती है। इनका रचना-काल ईसा की पहली या दूसरी शताव्दी माना जाता है। इनमे वौद्ध धर्म के सिद्धातो के साथ-साथ उस समय के सामाजिक व धार्मिक जीवन, कला-कौशल, सगीत और नाट्य, आचार-विचार, वाणिज्य और व्यापार, देश की स्थिति आदि का वडा ही सुदर और सजीव चित्र मिलता है। दोनो महाकाव्यो की कहानिया एक-दूसरे से सबध रखती है। 'शिलप्पधिकारम' के नायक-नायिका कोवलन और कण्णकी थे। इनकी कथा तमिळनाडु मे बहुत प्रचलित है और वच्चा-वच्चा इसे जानता है। कोवलन की लडकी मणिमेखला थी। यही 'मणिमेखलै' काव्य की नायिका है।

शिलप्पधिकारम—इस शब्द का अर्थ है नूपुर से सबंध रखनेवाला काव्य। यह कथा चोळ राजाओ की प्राचीन राजधानी कावेरि-पू-पट्टिणम की एक घटना के आधार पर लिखी गई है। इस कथा का नायक कोवलन कावेरि-पू-पट्टिणम (दूसरा नाम पुहार) के एक धनी व्यापारी का पुत्र था। उसकी स्त्री कण्णकी थी। कोवलन बडा विलासी था और माधवी नाम की एक वेश्या से प्रेम करता था। माधवी के प्रेम मे पडकर उसने भोग-विलास मे अपनी सारी सपत्ति बरबाद कर दी और दरिद्र हो गया। कण्णकी बडी सती-साध्वी स्त्री थी। कोवलन के विलासी होने पर भी वह उससे प्रेम करती थी और उसे बुरी सगति से दूर रखने का प्रयत्न करती थी। धन और विलासिता का निकट का सबध है। पुहार के धनी युवक वेश्याओ के फदे मे पडकर किस तरह अपना स्वास्थ्य और सपत्ति बरबाद करते थे और उनकी साध्वी स्त्रिया किस तरह से उन्हे इन दुष्टाओ के माया जाल से बचाने की चेष्टा करती थी, इसका रोचक वर्णन इस महाकाव्य मे पाया जाता है। अत मे जब कोवलन की सारी सपत्ति विलास मे व्यय हो जाती है, तब उसकी आखे खुलती है। उसे जीवन-निर्वाह के लिए धन कमाने की चिता होती है। सकट के समय एक सती स्त्री किस प्रकार पुरुप की सहायता करती है, इसका सुदर उदाहरण कण्णकी के चरित्र मे मिलता है। कोवलन जीवन-निर्वाह के लिए पाडिय राजाओ की राजधानी मदुरा के लिए प्रस्थान करता है। कण्णकी अपने पति के सब अपराधो को भूलकर उसके साथ जाती है। कोवलन मदुरा पहुचकर वहा कुछ रोजगार करना चाहता है, पर रोजगार के लिए पूजी चाहिए। कोवलन के हाथो में तो एक पैसा भी नही था। वह अपनी स्त्री के सारे आभूपण बेचकर विलास मे उडा चुका था। केवल कण्णकी के पैरो मे उसके सुहाग के प्रतीक सोने के नूपुर अभी तक बचे थे। कोवलन की दशा देखकर प्रसन्नतापूर्वक कण्णकी एक पैर का नूपुर निकालकर उसे देती है। कोवलन उसे लेकर बेचने के लिए बाजार चला जाता है। रास्ते मे उसकी मुलाकात एक सुनार से होती है। बदकिस्मती वहा भी उसका पीछा नही छोडती। वह सुनार बडा दुष्ट था। वह राजा की स्त्री के पैर का नूपुर चुराकर बेच चुका था। इस मौके से लाभ उठाकर उसने अपना दोप कोवलन के ऊपर मढना चाहा। उसने राजा को सूचना दी कि कोवलन ने ही रानी का नूपुर चुराया है। पाडिय राजा बिना विचार किये ही क्रोध मे आकर कोवलन को प्राण-दड की आज्ञा दे देता है। बेचारा कोवलन मारा

जाता है। जब कण्णकी को यह समाचार मिलता है, तब वह राजा के पास फरियाद करने के लिए पहुचती है। जब वहा उसकी सुनवाई नही होती, तब वह रानी की एक चेरी की सहायता से रानी के पास पहुचती है। रानी उसकी फरियाद सुनकर राजा को उसका न्याय करने के लिए प्रेरणा देती है। राजा कण्णकी से अपने पति की निर्दोपिता का प्रमाण मागता है। रानी के नूपुर मे मोती के दाने थे, परतु कण्णकी के नूपुर मे माणिक्य के दाने थे। कण्णकी अपने पति की निर्दोपिता प्रमाणित करने के लिए अपने दूसरे पैर का नूपुर निकालकर जमीन पर जोर से पटक देती है और उससे माणिक्य के दाने निकलकर बिखर जाते है। यह देखकर राजा को अपनी भूल मालूम होती है। राजा के हाथ से सेगोल(न्यायदड या वेत्रदड) अपने-आप नीचे गिर जाता है। राजा नेडुजेलियन अपनी इस भयकर भूल के आघात को न सहकर तुरत अपने प्राण छोड देता है। अपने पति के वियोग मे सती पाडिय रानी भी वही अपने पति के पास गिरकर मर जाती है। सती कण्णकी के शाप से सारा मदुरा नगर जलकर भस्म हो जाता है। इसके बाद कण्णकी पश्चिम घाट की पहाडियो मे तप करने चली जाती है।

'शिलप्पधिकारम' के तीसरे खड मे राजा सेगुट्टुवन की कहानी आती है। वह उत्तर भारत के सभी राजाओ को परास्त कर उनके कधो पर हिमालय से पत्थर लादकर लाता है और उन पत्थरो से कण्णकी की प्रतिमा बनवाता है और उसकी पूजा करता है। यह तीसरा खड शायद किसी दूसरे कवि का लिखा हुआ होगा, क्योकि इसमे नूपुर की बात बिल्कुल नही है, बल्कि सेगुट्टुवन की प्रशसा करने के उद्देश्य से लिखा गया है। सभव है पीछे से किसी ने 'शिलप्पधिकारम' की कहानी के साथ इसे जोड दिया हो।

इस कहानी का सबध दक्षिण के तीनो राज्यो से है। कोवलन और कण्णकी का जन्म चोळ राज्य मे हुआ था। कोवलन की मृत्यु पाडिय राज्य मे हुई और कण्णकी ने अपने जीवन के अतिम दिन चेर राज्य मे बिताये, जहा राजा सेगुट्टुवन ने सती कण्णकी का मदिर बनवाया।

इस कहानी का उद्देश्य काविरि-पू-पट्टिणम की आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक अवस्थाओ का वर्णन, सती कण्णकी के सतीत्व का प्रभाव और अन्यायी राजा के दोप से राज्य का सर्वनाश आदि चित्रित करना है।

इस कथा मे तीन गाथाए है, जिनमे से प्रत्येक का सबध कोवलन और कण्णकी के जीवन की घटनाओ से है ।

मणिमेखलै—इसकी कहानी 'शिलप्पधिकारम' की कहानी का उत्तरार्ध कही जा सकती है। इसमे माधवी नामक वेश्या से उत्पन्न कोवलन की कन्या मणि-मेखलै की कहानी है। यह कहानी कण्णकी की मृत्यु के बाद से आरभ होती है।

इस महाकाव्य के रचयिता शित्तलै सात्तनार तीसरे सघम के एक मुख्य सदस्य और प्रतिभाशाली कवि थे। इन्होने ३० सर्गो मे मणिमेखलै की कहानी लिखी है। कहानी सक्षेप मे निम्न प्रकार है

मदुरा मे अपने प्रेमी कोवलन की मृत्यु का समाचार सुनकर माधवी को वैराग्य हो जाता है। वह यद्यपि एक वेश्या थी, पर कोवलन के साथ उसका सच्चा प्रेम था। अपने प्रेमी की मृत्यु का समाचार सुनकर वह बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है। उस समय अरवण अडिगल नामक एक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु वहा रहते थे। उन्हीकी शिष्या बनकर वह एक बौद्ध-विहार मे रहने लगती है। कोवलन से उसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम मणिमेखलै था। वह भी अपनी मा के साथ उसी विहार मे रहती थी। वह अत्यत रूपवती थी। जब वह सयानी होती है, तब एक दिन फुलवारी मे फूल चुनने जाती है। वहा अक्षयकुमार नामक एक राजकुमार उसे देखकर उस पर मोहित हो जाता है। मणिमेखलै उससे बचने के लिए एक मरकत महल में छिप जाती है। राजकुमार निराश होकर अपने घर वापस लौट जाता है। मणिमेखलै एक देवी की सहायता से मणिपल्लव नामक एक द्वीप मे पहुचती है। उस द्वीप की अधिष्ठात्री देवी का नाम भी मणिमेखलै ही है। वहा भगवान बुद्ध की एक मरकत मूर्ति रखी है, जिसके सामने जाते ही मणिमेखलै को अपने पूर्व जन्म की सारी बाते याद आ जाती है। उसे मालूम होता है कि उसे प्यार करनेवाला राजकुमार पूर्व-जन्म मे उसका पति था। वहा से लौटकर मणिमेखलै कावेरि-पू-पट्टिणम आती है और अरवण अडिगल की शरण मे पहुचती है। उसी समय देश मे एक बडा अकाल पडता है। मणिमेखलै अरवण अडिगल की आज्ञा के अनुसार अकाल-पीडितो की सहायता के लिए चल पडती है। उसके पास मणिमेखलै देवी का दिया हुआ एक अक्षय-पात्र है जिसकी सहायता से वह अनेक अकाल-पीडितो को अन्नदान करके उनकी प्राण-रक्षा करती है। इसी समय उसका प्रेमी अक्षयकुमार एक दूसरे प्रतिद्वदी युवक द्वारा मारा

जाता है। यह सुनकर मणिमेखलै को बहुत दुख होता है और वह काची, काची आदि स्थानो की यात्रा करने के लिए निकल पडती है। कवि ने इस प्रसग को लेकर उन नगरो मे रहनेवाले भिन्न-भिन्न साप्रदायिको के आपसी धार्मिक झगडो के चित्र भी खीचे हैं। तीर्थों से लौटने के बाद उसको मालूम होता है कि उसका प्यारा नगर कावेरि-पू-पट्टिणम समुद्र मे डूब गया है। इससे उसको बहुत दुख होता है। वह फिर एक बार अरवण अडिगल की शरण मे जाती है और उनसे उपदेश पाकर निर्वाण-प्राप्ति की इच्छा रखती हुई भिक्षुणी बनकर अपना जीवन व्यतीत करने लगती है।

'शिलप्पधिकारम' की तरह मणिमेखलै मे भी उस समय के इतिहास और सामाजिक अवस्था को समझने के लिए काफी मसाला मिलता है।

जीवकचितामणि—इसके रचयिता तिरुत्तक्कत्तेवर थे, जो एक जैन भिक्षु थे। उनका जन्म मैलापूर मे हुआ था जो आज मद्रास शहर का एक महल्ला है। 'जीवक-चितामणि' एक वर्णनात्मक कहानी है। कहानी का आधार यद्यपि सस्कृत से लिया गया है, परतु कवि ने उसे नये साचे मे ढालकर प्रस्तुत किया है। कहानी के साथ-साथ स्थान-स्थान पर जैन धार्मिक सिद्धातो का सुदर सम्मिश्रण है। तमिळ साहित्य मे पहले-पहल इस पुस्तक मे लोक-यात्रा के चारो साधनो—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन मिलता है। इसमे जीवक के जन्म से लेकर मोक्ष प्राप्त करने तक की कहानी दी गई है। पुस्तक मे १३ परिच्छेद और ३१४५ पद्य हैं। यह ग्रथ भाषा की प्राजलता, भावो की गभीरता, मानव चरित्र की समीक्षा और धार्मिक भावनाओ की प्रचुरता मे अद्वितीय है। इस पुस्तक से उस समय की सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था पर भी पूर्ण प्रकाश पडता है। लोगो का विश्वास है कि महाकवि कबन को रामायण लिखने मे इस काव्य से ही स्फूर्ति मिली थी और रामायण के कई सुदर स्थलो का आधार इस ग्रथ की वर्णन-शैली और कल्पना-सौंदर्य है।

इसकी कथा इस प्रकार है—सच्चदन एमागदनाडु का राजकुमार था। वह अपनी पत्नी विजया के प्रेम मे इतना अधिक आसक्त हो गया कि वह अपना राज्य अपने मत्री कट्टियकारन को सौपकर भोग-विलास मे निमग्न रहने लगा। इस मौके से लाभ उठाकर राज्य को हस्तगत करने के उद्देश्य से कट्टियकारन ने महल को घेर लिया। सच्चदन मारा गया और उसकी स्त्री विजया मयूर

विमान मे बैठकर वहा से भाग निकली। राजभवन छोडने के बाद वह एक श्मशान मे छिपकर रहने लगी। वह गर्भवती थी। श्मशान मे ही उसके एक पुत्र पैदा हुआ। इसी समय नगर का एक व्यापारी कदुक्कडन चेट्टियार अपने मृत पुत्र को दफन करने के लिए वहा आया। वहा उसने इस नवजात शिशु को देखा और उसे उठाकर अपने घर ले गया। उसने उसका अपने पुत्र के समान पालन-पोषण किया और जीवक नाम रखा। उसने समझा, मेरा मृत पुत्र ही जीवित होकर मेरे पास आया है, इसलिए उसका नाम जीवक रखा। चेट्टियार ने उसको सब विद्याए पढाई। जब जीवक युवा हुआ, तब एक बार डाकुओ के एक दल ने उस नगर पर हमला किया। पर जीवक के साहस और वीरतापूर्ण कृत्य से डाकू भाग गये। उसकी इस वीरता पर प्रसन्न होकर पशु-कावलन नामक नागरिक ने उससे अपनी कन्या का विवाह कर दिया। इसके बाद जीवक ने अनेक स्थानो का भ्रमण किया। इसका जीवन एक अत्यत विलासी और रसिक युवक का चरित्र है। उसने एक-एक करके सात अन्य कन्याओ के साथ भी विवाह किये। ग्रथ मे इन विवाहो का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस कथा से प्रकट होता है कि उस समय तमिळ लोगो मे बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। देश मे जीवक का प्रभाव और प्रतिष्ठा बहुत बढ गई। अत मे उसने कट्टियकारन को हराकर अपने पिता का राज्य उससे वापस ले लिया और बहुत काल तक सुख से जीवन व्यतीत करने के पश्चात अपने पुत्रो को राज्य सौपकर सन्यास ले लिया।

इस ग्रथ से तत्कालीन अनेक विषयो का ज्ञान होता है। इस ग्रथ के रचना-काल मे देश मे बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी, समाज मे ब्राह्मणो का अधिक आदर होता था, इन बातो का सकेत इस ग्रथ से मिलता है। यह ग्रथ शृगार-रस की एक अद्भुत रचना है। इस सबध मे एक कथा प्रचलित है।

इस काव्य के लेखक तिरुत्तक्कत्तेवर एक जैन सन्यासी और तृतीय सघम के एक प्रसिद्ध विद्वान थे। सघम के कुछ कवियो ने इस बात का उपहास किया कि जैन साहित्य मे शृगार-रस सबधी साहित्य का नितात अभाव है। इसपर चिढ-कर इस कवि ने अपने गुरु से शृगार-रस-प्रधान काव्य रचने के लिए आज्ञा मागी और उनकी आज्ञा पाकर 'चितामणि' नामक शृगार-प्रधान काव्य का निर्माण किया। इसपर कुछ विद्वानो के मन मे कवि के चरित्र के सबध मे सदेह पैदा

हुआ कि यह बाल-ब्रह्मचारी इस प्रकार का साहित्य कैसे लिख सकता है। इस पर कवि ने अग्नि-परीक्षा देकर अपनी सच्चरित्रता प्रमाणित की। कहा जाता है कि कवि ने केवल आठ दिनो के अदर इस ग्रथ को समाप्त किया था। यह कवि की अद्वितीय विद्वता का प्रमाण है।

कुडलकेशी और वलयापति—इन दोनो महाकाव्यो के सबध मे लिखा गया है कि ये अप्राप्य है। परतु इन दोनो की कथाए दूसरे ग्रथो मे मिलती है। इन दोनो के रचयिता जैन थे, परतु उनके नाम भी उनके ग्रथो के साथ-साथ विलुप्त हो गये है। इन दोनो महाकाव्यो का सबध तत्कालीन जैन धर्म और जैनो के सामाजिक जीवन से है। नीचे इन दोनो की कथाओ का सार अलग-अलग देते है।

कुडलकेशी—कुडलकेशी एक धनी चेट्टियार (वैश्य) की लडकी थी। एक दिन वह अपने मकान की छत पर खडी थी। उसने देखा कि नगर-रक्षक सिपाही एक सुदर युवक को चोरी के अपराध मे गिरफ्तार करके लिये जा रहे है। कुडलकेशी उसके सौदर्य पर मोहित हो गई। बाद को मालूम हुआ कि वह किसी राज्य के मत्री का पुत्र है। वह अपने सबधियो के प्रयत्न से कैद से छूटकर बाहर आता है और कुडलकेशी से विवाह कर लेता है। दोनो कुछ काल तक सुख से रहते है। एक दिन कुडलकेशी विनोद मे उसे चोर कहकर पुकारती है, जिसे सुनकर युवक के हृदय को चोट लगती है और वह अपनी पत्नी से इसका बदला लेना चाहता है। वह अपनी पत्नी के आभूषणो को चुराकर उसका अत करने की इच्छा से उसे एक पहाड की चोटी पर ले जाता है। कुडलकेशी सुदर वस्त्रो और आभूषणो से सुसज्जित होकर उसके साथ जाती है। युवक उसके आभूषणो को लेकर उसे पहाड की चोटी से नीचे ढकेल देना चाहता है, लेकिन उसके इस दुष्ट विचार का आभास कुडलकेशी को हो जाता है। वह उल्टा युवक को ही ढकेलकर पहाड से नीचे गिरा देती है। युवक का प्राणात हो जाता है और कुडलकेशी जीवन से विरक्त होकर जैन सन्यासिनी बनने का निश्चय करती है। लेकिन अपने सुदर केशो के प्रति बहुत प्रेम होने के कारण वह सन्यासिनी बनने मे असमर्थ होती है और भिक्षुणी बनकर अपना जीवन व्यतीत करती है।

इस कथा से मालूम होता है कि उसके केश अत्यत सुदर और कोमल थे। शायद इसी कारण मे कथा की नायिका का नाम 'कुडलकेशी' दिया गया है।

वलयापति—वैर वणिकन (हीरे का व्यापारी) नामक एक धनाढ्य व्यापारी था जो अपनी अपार सपत्ति के कारण नवकोटि नारायण के नाम से प्रसिद्ध था। उसने दो विवाह किये थे। उसकी दूसरी पत्नी एक विजातीय कन्या थी, इसलिए उसके जातिवालो ने उसे जाति-वहिष्कृत करने की धमकी दी। इससे भयभीत होकर उसने अपनी दूसरी पत्नी को अपने घर से बाहर भेज दिया। उस समय वह गर्भवती थी और कुछ मास के बाद उसके एक पुत्र पैदा हुआ। जब वह पुत्र सयाना हुआ, तब उसके साथियो ने यह कहकर उसका उपहास किया कि वह अज्ञात कुल का बालक है। इससे दुखी होकर बालक ने अपनी माता से पिता के सबध मे जानकारी प्राप्त की और उनके पास आया। पिता ने उसे स्वीकार करने से इन्कार किया और प्रमाण मागे। इस पर बालक की माता ने अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिए अपनी इष्ट देवता (काली) से प्रार्थना की। काली ने प्रत्यक्ष होकर उसकी सच्चाई का प्रमाण दिया। इसके बाद चेट्टियार ने अपने पुत्र को अपनाकर उसे पर्याप्त सपत्ति दी और व्यापार करने का आदेश दिया।

उपर्युक्त पाचो काव्यो की एक यह भी विशेषता है कि इनमे से सबका सबध वैश्य परिवार से है। 'शिलप्पधिकारम' के नायक और नायिका, कोवलन और कण्णकी, दोनो वैश्य थे। 'मणिमेखलै' की नायिका माधवी नाम की वेश्या से उत्पन्न कोवलन की पुत्री थी। 'जीवक-चिंतामणि' के नायक जीवक ने भी वैश्य-कन्या से विवाह किया था। कुडलकेशी एक धनाढ्य वैश्य की कन्या थी तथा 'वलयापति' काव्य का इतिवृत्त वैर-वणिकन नामक व्यापारी से सबध रखता है। इससे ज्ञात होता है कि जैन-धर्म का सबध वैश्यो के साथ अधिक निकट का था, जो आज भी पश्चिम भारत मे देखने मे आता है। इसीके साथ यह भी ज्ञात होता है कि जैन-काल मे दक्षिण मे वैश्यो का प्रभाव अधिक था और समाज मे उनका ऊचा स्थान था। इसीलिए यद्यपि इन पच-काव्यो के रचयिता भिन्न-भिन्न जाति के थे, तो भी उन्होने वैश्यकुल के युवक-युवतियो को अपनी कथाओ के नायक-नायिका बनाया।

पेरुकदै—इसी युग मे 'पेरुकदै' नामक एक और महाकाव्य भी लिखा गया। जैसाकि उसके नाम से बोध होता है (पेरुम—बडा), यह एक बडी कहानी है। इसमे उदयन की कहानी कही गई है, जो सस्कृत की 'बृहत्कथा' से ली गई है। परतु कवि

के लिखने का ढग अपना है। इसमे कवि ने उस समय के जैन धर्म के अनेक सिद्धातो का समावेश किया है। तमिळ के प्रसिद्ध भाष्यकार अडियार्क्कु नल्लार का मत है कि तमिळ साहित्य मे 'जीवक-चिंतामणि' से भी इसका स्थान ऊचा है। इस वृहत् ग्रथ का वहुत सा अश खो जाने पर भी लगभग १६,००० पक्तिया वची है, जिनसे इस ग्रथ की महानता प्रकट होती है।

इस ग्रथ के लेखक कोगुवेलिर नामक एक राजकुमार थे। यह कोगुनाडु (कोयवतूर) मे विजयमगलम के निवासी थे। यह कवियो के वहुत वडे सरक्षक और जैन धर्म के अनुयायी थे।

विद्वान पूर्णलिंगम पिल्लै ने इस ग्रथ मे दिये गये कुछ मुख्य सिद्धातो का सग्रह किया है जिनका साराश नीचे दिया जाता है

भगवान की पूजा अत्यत आवश्यक है, महापुरुप भी भगवान की तरह ही पूज्य है, कर्म का फल अमिट है, शत्रु भी विद्वान का आदर करता है, विद्या ही मनुष्य की सच्ची सपत्ति है, किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्तम साधन, अनुकूल समय, युक्त स्थान और सच्चे सहायक चाहिए, शत्रु के भी गुणो का आदर करना चाहिए, पर-निंदा से वचना चाहिए, स्त्रियो का अपमान नही करना चाहिए आदि अच्छे सिद्धात इस ग्रथ मे है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रथ मे भिन्न-भिन्न प्रकार की सभाओ, अनेक प्रकार के राजमहलो, दुर्गो, सेनाओ, आयुधो, ध्वजाओ और वाहनो का, नाट्य, सगीत स्थापत्य आदि कलाओ का, आभूपण, वस्त्र, ,पलग आदि विविध प्रकार की उपयोगी वस्तुओ का, शिक्षा, उद्योग, मनोरजन आदि विविध व्यापारो का, शादी-व्याह आदि प्रथाओ का, एव इसी प्रकार की जीवन से सवध रखनेवाली अनेक वातो का विस्तारपूर्ण वर्णन मिलता है।

पच लघु-काव्य—इस युग की रचनाओ मे पाच लघु काव्यो का भी उल्लेख आता है जो भिन्न-भिन्न विषयो पर लिखे गये है। इनके नाम नीलकेशी, चूडामणि, यशोधर काव्यम, नागकुमार काव्यम और उदयणन-कदै है।

नीलकेशी का विषय धार्मिक प्रश्नो पर वाद-विवाद है। नीलकेशी नामक कोई स्त्री साख्य, वैशेषिक, वैदिक, वौद्ध, आर्हत आदि मतो का खडन करके जैन धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करती है।

चूडामणि—यह एक जैन कवि तोलामोलित्तेरव की रचना है। यह गथ भी रचना-शैली और काव्य की रीतियो की दृष्टि से 'जीवक-चिंतामणि' के ही ढग का है। तमिळनाडु मे अति प्राचीन काल से भावी बातो की सूचना देनेवाले ज्योतिषियो की एक जाति रही है जिसको 'नादन' कहते है। इसमे उन भविष्यवक्ता का प्रभाव, वधू द्वारा वर का चुनाव, युद्ध मे वीरो के आचरण, बहुविवाह की प्रथा आदि का वर्णन है। इसकी कथा भू-लोक और स्वर्ग-लोक दोनो से सबध रखती है। प्रजापति नामक किसी राजा के दो पत्निया थी। दोनो से उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक का नाम विजयन था, जो गोरा था, दूसरे का तिविट्टन था, जो काला था। दोनो बालक अत्यत सुदर थे। एक दिन भविष्य-वक्ता न आकर कहा कि तिविट्टन का विवाह स्वर्ग-लोक की एक अप्सरा से होगा। उसी समय अप्सराओ की रानी को भी अपनी कन्या के विवाह के सबध मे ऐसा ही स्वप्न हुआ। अत मे दोनो का विवाह सपन्न हुआ। इसमे तिविट्टन की कथा, अप्सरा कन्या के साथ उसका विवाह आदि का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कथा के अत मे राजा के राज्य-परित्याग कर सन्यासी बनने की बात आई है और जैन धर्म के सिद्धातो का विवेचन किया गया है।

यशोधर काव्यम—यह सस्कृत के 'यशोधरा चरित्र' का छायानुवाद है। यह किसी अज्ञातनामा जैन कवि की रचना है। इस कथा का नायक अवती का राजा अशोक है, जिसकी राजधानी उज्जैन थी।

नागकुमार काव्यम—अप्राप्त है। इसके सबध मे नाम के अतिरिक्त और कुछ विदित नही हुआ है।

उदयणन कदै—इसमे वत्स देश के राजा उदयणन की कहानी है।

इस युग की फुटकर रचनाओ मे तीन ग्रथो के नाम उल्लेखनीय है

१ **मेरुमदिर पुराणम** नाम का जैन पुराण। इसका लेखक वामनाचार्य नामक कोई जैन था। इस ग्रथ मे १४०६ पद्य है, जिनमे जैन धर्म के सिद्धातो का विवरण है।

२ **दिवाकरम**—यह तमिळ का सर्वप्रथम शब्द कोप है जिसका सकलन दिवाकर मुनि ने किया था। इसमे २२५६ सूत्र है। आज भी तमिळनाडु मे यह ग्रथ बहुत प्रचलित है।

३ **पिगलदै**—यह भी तमिळ भापा का एक शब्द-कोप है, जिसका सग्रह

दिवाकर के पुत्र पिंगलर ने किया था। इस ग्रथ मे तमिळ भापा के प्राचीन और कठिन शब्द सगृहीत हैं। तमिळ भाषा के अध्ययन के लिए इन दोनो ग्रथो का अध्ययन अनिवार्य समझा जाता है।

३. भक्ति काल

ईसवी सन के तीन सौ वर्ष पूर्व से ईसा की छठी शताब्दी तक, अर्थात लगभग एक हजार वर्प तक, तमिळ देश मे बौद्ध और जैन लोगो का प्रभाव रहा। छठी शताब्दी के बाद इस देश मे दोनो धर्मो का प्रभाव घटने लगा। दोनो धर्मो मे कुछ ऐसे दोष प्रवेश कर गये थे, जिनके कारण दोनो की जडे कमजोर पड गई थी। इस कमजोरी का लाभ हिंदू मतावलबियो ने उठाया और शैव और वैष्णव सतो ने इनको अतिम धक्का देकर सदा के लिए दक्षिण भारत से निकाल दिया। अब तक ब्राह्मणो का वैदिक धर्म और द्रविडो का शैव धर्म मिलकर एक हो गये थे और इस एकता ने वर्तमान हिंदू धर्म को जन्म दिया था। ब्राह्मणो ने अपने वैदिक यज्ञ-कर्म छोडकर पुष्प और चदन द्वारा अपने देवताओ की पूजा करना आरभ किया। उन्होने अपनी पुरानी कट्टरता छोडकर द्रविड लोगो के साथ मिल-जुलकर हिंदू धर्म का प्रचार किया। जाति-पाति के बधन कुछ ढीले पड गये (यद्यपि थोडे ही काल के लिए) और आर्य तथा द्रविड, दोनो जातियो ने मिलकर जैन धर्म का मुकाबला किया। दोनो जातियो ने अनेक ऐसे विद्वान सत कवि पैदा किये, जिन्होने जगह-जगह पर बौद्ध और जैन विद्वानो को शास्त्रार्थ मे परास्त किया। इनके प्रभाव और अद्भुत कार्यो को देखकर दक्षिण के राजा लोग, जो अब तक जैन धर्म के समर्थक थे, शैव और वैष्णव धर्म अपनाने लगे। धीरे-धीरे ये वैष्णव और शैव सत जैन और बौद्ध धर्मो पर हावी हो गये और इन धर्मो का प्रभाव तमिळ देश मे सदा के लिए मिट गया।

इन वैष्णव और शैव भक्तो ने जगह-जगह पर अपने उपास्य देव के मदिर बनवाये और उनकी प्रशसा मे सरस और भक्तिपूर्ण पद्य रचे, जिनकी सख्या कई हजार तक पहुचती है। सारा वैष्णव और शैव वाङमय इन्ही सतो की रचना है और इस युग की अमूल्य साहित्यिक निधि है।

शैव सतो को नायन्मार कहते थे और उनकी रचनाओ का सग्रह 'तिरुमुरै' (पवित्र वचन) नाम से प्रसिद्ध है। वैष्णव सत 'आळवार' कहलाते थे

और उनकी रचनाओ का सग्रह 'तिरुवाय्मोळि' (पवित्र मुख की वाणी) कहा जाता है। वैष्णव भक्तो मे इसका बडा आदर है।

शिव भक्त नायन्मारो की सख्या ६३ है, जिनमे चार सबसे प्रमुख है और इन्हे शैवाचार्य कहते है। इनके नाम है—(१) तिरुज्ञानसबधर (२) अप्पर स्वामिगल (३) सुदरमूर्ति स्वामिगल और (४) माणिक्यवाचगर। इन्हीकी रचनाए 'तिरुमुरै' मे सगृहीत है। 'तिरुमुरै' के एक भाग को 'तेवारम' कहते है, जिसका अर्थ होता है 'देवता की माला'। ये पद्य अत्यत सुदर, सरस और गेय है। शिवभक्त बडे प्रेम से मदिरो मे इन्हे अब भी गाते है। तिरुमूलर नामक महाकवि भी इसी युग मे पैदा हुए थे। इनका प्रसिद्ध ग्रथ 'तिरुमदिरम' है, जिसमे ३००० मत्रो का सग्रह है। तिरुमूलर शैव सिद्धात के आदि प्रवर्तको मे थे और उन्होने अपने ग्रथ मे पशु, पति, पाश्म की विस्तृत व्याख्या की है।

वैष्णव भक्तो की, जिन्हे 'आळवार' कहते है, सख्या बारह है। इन बारहो आळवारो ने समय-समय पर (तमिळ देश मे उत्पन्न होकर) वैष्णव धर्म का प्रचार किया और भगवान विष्णु की प्रशसा मे भक्तिरसपूर्ण गेय पद्यो का निर्माण किया, जिनका सग्रह 'दिव्यप्रबधम' नाम से हुआ है। इन पदो की सख्या चार हजार है। वैष्णवो का विश्वास है कि ये चार हजार पद चारो वेदो के आधार पर ही रचे गये है। इसलिए वैष्णव लोग उन्हे वेदो के समकक्ष मानते है।

इस युग की एक विशेषता यह थी कि वैष्णव और शैव सतो ने मिलकर जैन धर्म का मुकाबला किया और आपस मे इन दोनो के बीच किसी प्रकार की सघर्ष-भावना उत्पन्न नही हुई। धर्म-परिवर्तन सुलभ था। शैव कभी वैष्णव बन जाता और वैष्णव शैव बन जाता, कभी-कभी एक ही परिवार मे दोनो मतावलबी मिल-जुलकर रहते थे। दूसरी विशेषता इस युग की यह थी कि वैष्णव और शैव धर्म किसी जाति-विशेष या वर्ग-विशेष का धर्म नही रह गया था। दोनो धर्मो मे सभी जातियो के लोग थे। शैव सतो मे निम्न जाति के भी कुछ व्यक्ति थे। इसी प्रकार वैष्णव सतो मे भी ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनो थे।

६३ शिव भक्तो मे से कुछ भक्तो ने भगवान शिव की प्रशसा मे सुदर सगीतमय पद भी रचे है। इनका एक अलग सग्रह है जिसे 'तिरुइशैप्पा' (पवित्र भजन) कहते है।

४. महाकाव्य काल

आळवारो और नायन्मारो की रचनाओ ने तमिळ देश के धार्मिक जीवन मे क्राति उपस्थित कर दी थी। जैन और बौद्ध धर्म का ह्रास हो जाने से हिंदू धर्म की ध्वजा सारे तमिळ देश मे फहराने लगी। अब यह हिंदू धर्म न तो आर्यो का वैदिक धर्म रह गया था, न द्रविडो का प्राचीन शैव धर्म, बल्कि दोनो धाराए गगा और जमुना की तरह मिलकर एक हो गई थी। अब तक जो भेद आर्य और द्रविड विचारधाराओ मे चला आता था, वह दूर हो गया और उसका स्थान एक सम्मिलित धर्म और विचारधारा ने लिया। जैनो के काल मे सस्कृत ग्रथो की एक प्रकार से उपेक्षा होती आई थी। अब वैष्णव और शैव सतो के प्रयत्न से लोगो मे पुन आर्य कथा-कहानियो, उपाख्यानो, पुराणो आदि के प्रति आस्था बढने लगी। इस युग मे अनेक सस्कृत ग्रथो के आधार पर नये ग्रथ रचे गये। वाल्मीकि रामायण के आधार पर महाकवि कबन ने रामायण की रचना की, स्कदपुराण के आधार पर कच्चियप्प शिवाचारियार ने 'कदपुराण' लिखा, पुकलेदि ने नल-दमयती की कहानी को लेकर 'नल-वेण्बा' नामक प्रबध काव्य रचा। इसी तरह अनेक छोटे-मोटे काव्य रचे गये।

भारतीय कवियो की यह विशेषता रही है कि उन्होने कथा मात्र प्राचीन काव्यो से लिया, परतु अभिव्यक्ति की शैली, काव्य की रीति और वर्णन का प्रकार इनकी अपनी चीज थी। कथा मे भी देश-काल के अनुसार परिवर्तन उपस्थित किया एव अपनी प्रतिभा के अनुकूल कही घटा-बढाकर, कही बिल्कुल बदल करके कथा को नये रूप मे प्रस्तुत किया। ईसा की पहली शताब्दी मे पेरुदेवनार ने महा-भारत का अनुवाद तमिळ मे किया था। उसमे भी यही विशेषता दृष्टिगत होती है। किसी भी कवि ने मूल का यथारूप अनुवाद नही किया, किंतु तमिळ भाषा और साहित्य की प्रकृति के अनुरूप उसको अपने साचे मे ढाला।

कबन की रामायण मे भी यही विशेषता है कि कवि ने वाल्मीकि रामायण के इतिवृत्त को लेकर अपनी प्रतिभा के बल पर एक नये रूप मे प्रस्तुत किया है। कबन के अतिरिक्त कुछ अन्य कवियो ने भी इस काल मे रचना की है। उनमे ओट्टक्कूत्तन, पुकलेदि, कच्चियप्प शिवाचारियार, शेक्किळार आदि प्रमुख है।

इनमे से कंबन, ओट्टक्कूत्तन और पुकलेंदि ने महाकाव्यो का निर्माण किया तथा कच्चियप्प, शिवाचारियार, शेक्किळार आदि ने पुराणो की रचना की। इसी युग मे अनेक लक्षण-ग्रंथ भी रचे गये, जिनमे 'नन्नूल' और 'वीरचोळियम' प्रमुख है।

प्राचीन तमिळ साहित्य की विशेषता यह है कि उसमे कल्पना और भाषा की आलंकारिकता की अपेक्षा जीवन का यथार्थ चित्रण और प्रसादपूर्ण भाषा मे वास्तविक वर्णन प्रमुख है। परंतु मध्य युग मे संस्कृत साहित्य के प्रभाव मे तमिळ साहित्य मे भी कवियो का ध्यान अभिव्यंजना की विविधता की ओर गया, अत्युक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारभंगि्त अभिव्यक्ति मे भाषा की चित्रमयता होने पर भी कृत्रिमता आ गई। भावो की गंभीरता की अपेक्षा शब्दाडंबर और कल्पना की प्रचुरता को प्रधानता मिली।

महाकवि कंबन—तमिळ साहित्य मे महाकवि कंबन का एक विशिष्ट स्थान है। इन्होने पहले-पहल तमिळ मे रामायण की रचना की, जो अपने कई काव्य-गुणो के कारण अद्वितीय है।

कंबन का समय सन ९०० ईसवी माना जाता है। उनका जन्म चोळ देश मे तिरुवळुंदूर नामक गांव मे हुआ। कंबन के जन्म, जाति, उनके माता-पिता आदि के संबंध मे अनेक किंवदंतियां प्रचलित है। शडयप्प मुद-लियार नामक एक धनी और उदारहृदय जमींदार ने इनका पालन-पोषण किया था। कंबन ने अपनी रामायण मे अनेक स्थलो पर अपने अभिभावक शडयप्प मुदलियार का उल्लेख किया है। कंबन के जीवन के संबंध मे बहुत कम सामग्री मिलती है। यह भी कहना कठिन है कि वह वैष्णव मतावलंबी थे या शैव। कुछ लोगो का कहना है कि वह नम्माळवार नामक प्रसिद्ध वैष्णव संत के शिष्य थे। कंबन ने ई० सन ८८० के आस-पास अपनी रामायण लिखी। उस समय की प्रथा के अनुसार उस ग्रंथ की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए विद्वानो की मंडली मे उसे पढकर सुनाना आवश्यक था। उन्होने अपना ग्रंथ श्रीरंगम के मंदिर मे सन ८८५ मे फाल्गुन पूर्णिमा के दिन विद्वानो की मंडली मे पढ सुनाया और उनकी स्वीकृति प्राप्त की। पंडितो ने कंबन की रचना सुनकर उन्हे कवि-चक्रवर्ती की उपाधि दी।

अपने इस ग्रथ की स्वीकृति प्राप्त करने के पहले कवन को कैसे-कैसे कष्ट उठाने पडे, किस प्रकार उनके समकालिक अन्य कवियो ने ईर्ष्यावश उनको स्वीकृति नही दिलाने का षड्यत्र रचा और कवन का कैसा स्वतत्र और अभिमानी स्वभाव था—इन सबके बारे मे कई दतकथाए प्रचलित है। उन्होने कई स्थानो मे भ्रमण कर अपनी रामायण सुनाई और विद्वानो की प्रशसा प्राप्त की। उनकी मृत्यु मदुरा मे हुई।

कहा जाता है कि कवन ने और भी दो तीन ग्रथ लिखे थे, परतु रामायण उनकी सर्वोत्कृष्ट और सर्वप्रसिद्ध कृति है। इसकी लोकप्रियता दिन-दिन बढती जा रही है। कवन की रामायण केवल काव्य के क्षेत्र मे ही नही, परतु धार्मिक क्षेत्र मे भी समाहृत है। तमिळ साहित्य मे कवन-रामायण का वही स्थान है जो सस्कृत मे वाल्मीकि रामायण और हिंदी साहित्य मे तुलसी रामायण का है। हम ऊपर लिख चुके है कि कवन ने वाल्मीकि का इतिवृत्त लेकर अपनी कविता-शक्ति के बल पर उसको नया रूप दिया। इसके निर्माण मे कवि ने तमिळ साहित्य की परपरा का अनुसरण किया और चितामणि, कदपुराणम पेरियपुराणम आदि तमिळ ग्रथो मे व्यवहृत शैलियो को अपनाया। अभी तक वाल्मीकि, तुलसी और कवन का तुलनात्मक अध्ययन किसी विद्वान ने किया नही है। कुछ विद्वानो का कथन है कि अनेक स्थलो पर कवन की प्रतिभा और कल्पना-शक्ति वाल्मीकि और तुलसी से आगे बढ गई है।

ओट्टक्कूत्तन—यह कवन के समकालीन थे। कवन और ओट्टक्कूत्तन के सबध मे एक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि दोनो बडे विद्वान थे, प्राय इन दोनो मे स्पर्धा चला करती थी। ओट्टक्कूत्तन ने भी कवन की ही तरह रामायण की रचना की थी, परतु कवन की ही रामायण की अधिक प्रशस्ति तथा व्याप्ति हुई। इससे दुखी होकर ओट्टक्कूत्तन अपनी रामायण को अग्निसात करके भस्म करने लगे। जब वह रामायण के पहले छ काडो को जला चुके, तो इतने में कवन ने आकर उनको इस काम से रोका और उनके रचित उत्तर-काड को बचा लिया। कवन ने स्वय छ ही काडो की रचना की थी, परतु ओट्टक्कूत्तन का आदर करने के लिए उन्होने ओट्टक्कूत्तन के रचित उत्तर काड को अपनी कृति का अग बना लिया।

इस जनश्रुति के अनुसार कवन रामायण का उत्तरकाड ओट्टक्कूत्तन की रचना माना जाता है।

पुकलेंदि—इस युग के कवियो मे पुकलेंदि का नाम भी बहुत प्रख्यात है। यह भी कवन और ओट्टक्कूत्तन के समकालीन थे। ओट्टुक्कूत्तन चोळ राजा के दरबार मे और पुकलेदि पाडिय राजा के दरबार मे कवि थे। इन दोनो के बीच भी ईर्ष्या और स्पर्धा चला करती थी, जिसकी अनेक कथाए प्रचलित है। ओट्टुक्कूत्तन की ईर्ष्या के कारण एक बार पुकलेंदि को चोळ राजा के कारागार मे रहना पडा था। पुकलेंदि और ओट्टक्कूत्तन की इस कवि-स्पर्धा के कई रसमय विवरण तमिळ साहित्य मे मिलते है।

पुकलेंदि का सबसे प्रसिद्ध ग्रथ 'नल वेण्बा' है। इसमे नल और दमयती की कथा तमिळ के वेण्बा छद म (चार पक्तियो का एक छद) लिखी गई है। यह काव्य भी तमिळनाडु मे बहुत प्रचलित है।

पुकलेंदी की अनेक फुटकर रचनाए भी है, जिनमे 'अल्लियर पूराणिमालै' और 'नल्लतगाल कदै' सबसे प्रसिद्ध है।

यह चेगलपेट के पास कळत्तूर नामक गाव के निवासी थे और सभवत वैष्णव थे।

पट्टिणत्तार—यद्यपि भक्ति काल का अत और महाकाव्य काल का आरभ हो चुका था, तथापि इस युग मे भी अनेक वैष्णव और शैव भक्त उत्पन्न हुए और उन्होने अपने-अपने इष्ट देव की प्रशसा मे पद रचे। पट्टिणत्तार इसी युग के एक दैदीप्यमान नक्षत्र थे। शिव भक्तो की श्रेणी मे उनका नाम बहुत प्रसिद्ध है।

यह कावेरि-पू-पट्टिणम (पुहार) के रहनेवाले थे और शिव के अनन्य उपासक थे। यह जाति के वैश्य (चेट्टियार) और बडे व्यापारी थे। एक दिन इनके घर पर एक सन्यासी आया और उसने इनकी पत्नी से भिक्षा मागी। पत्नी ने उत्तर दिया कि मेरे पति अपने जहाजो को देखने गये है, उनके वापस आने तक ठहरो। इस पर सन्यासी ने पट्टिणत्तार की पत्नी को एक बेकान की सूई और एक पद्य लिखकर दिया और कहा कि इन्हे अपने पति को देना। पत्नी ने ऐसा ही किया। जब उसके पति ने वह बेकान की सूई देखी और पद्य पढा, तो उसको एकाएक वैराग्य हो आया। उसने अपनी सारी सपत्ति गरीबो को बाट दी और स्वय सन्यासी का जीवन व्यतीत करने लगा। पद्य का भाव अगले पृष्ठ पर दिया गया है।

"अन्याय से प्राप्त धन, जमीन मे गाडी हुई सपत्ति और बेकान की सूई, तीनो व्यर्थ है, मृत्यु के समय इनमे से कोई भी लाभकर नही होता।"

पट्टिणत्तार की रचनाए बडी भावपूर्ण, परतु कुछ निराशावादी है। इनकी रचनाओ का एक सुदर सग्रह प्रकाशित हुआ है। इनके बहुत से पद्य बडे लोकप्रिय और प्रचलित है। इन्होने अपनी माता की मृत्यु पर, दाह-सस्कार के समय एक सुदर पद रचा था जिसका भाव निम्न प्रकार है

"सामने से जो आग निकली थी उससे सारा नगर जल गया। पीछे से जो आग निकली उससे सारी लका जल गई। माता ने जो आग लगाई उससे मेरा पेट जल रहा है। और मैने जो आग लगाई है उससे मेरा (मातृरूप) सर्वस्व जलकर भस्म हो गया।"

इस पद्य की पहली पक्ति मे सती कण्णकी के शाप से भस्म हुए मदुरा नगर की ओर और दूसरी पक्ति मे हनुमान की पूछ की आग से लका दहन की ओर सकेत है।

तमिळ पुराण

इसी युग की रचनाओ मे दो पुराण तमिळ साहित्य के अमूल्य ग्रथ है जिनकी तमिळ देश मे बडी प्रसिद्धि है। पहला है 'पेरियपुराणम' या 'तिरुत्तोडर पुराणम', दूसरा है 'कदपुराणम'।'

'पेरियपुराणम' के लेखक शेक्किलार थे। यह वेळ्ळाळ (किसान) जाति के थे। यह बडे विद्वान, चतुर राजनीतिज्ञ और शिव भक्त थे। कुछ काल तक इन्होने कुलोत्तुग चोळ राजा के मत्री का कार्य भी किया था। कुलोत्तुग चोळ का समय सन १०६४ से सन १११३ तक माना जाता है। अपने मत्रित्व-काल मे एक दिन शेक्किलार ने देखा कि राजा कुलोत्तुग 'जीवक-चितामणि' नामक ग्रथ का बडी श्रद्धा के साथ अध्ययन कर रहे है। उनको इस बात का सदेह हुआ कि राजा जैन धर्म की ओर आकर्षित हो रहा है। कट्टर शैव होने के कारण यह बात उनको बहुत अखरी। उन्होने राजा से जैन धर्म मे इतनी अभिरुचि लेने का कारण पूछा। राजा ने मत्री से पूछा—"क्या 'चितामणि' से बढकर कोई दूसरा ग्रथ भी तमिळ मे है ?" शेक्किलार ने तुरत नबियाडार नबि रचित 'तिरुत्तोडर-

अतादि' नामक ग्रथ लाकर राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया और उसके भाव और काव्य की विशेपताओ को समझाया।

इस ग्रथ मे शिवभक्तो की जीवनिया सक्षेप मे लिखी गई थी। चोळ राजा उस ग्रथ से वहुत प्रभावित हुआ और शेक्किलार को आदेश दिया कि वह शिवभक्तो की जीवनिया भी इसी तरह विस्तार से लिखे। राजा का आदेश पाकर शेक्किलार ने 'पेरियपुराणम' नाम के ग्रथ की रचना की, जिसमे शैव मत के ६३ सतो की जीवनिया विस्तार के साथ दी गई है। इस महान ग्रथ मे ४२८६ पद्य है। इस ग्रथ को देखकर चोळ राजा ने शेक्किलार का वडा सम्मान किया।

'पेरियपुराणम' शैव भक्तो की अमूल्य निधि है और समस्त तमिळनाडु मे इस ग्रथ का बहुत प्रचार है। इस ग्रथ मे केवल भक्तो की जीवनिया ही नही, वरन उस समय के आचार-विचार, धार्मिक विश्वास, जातिया, उनके रस्म-रिवाज, व्यवसाय, विनोद, आभूपण आदि का भी वर्णन मिलता है। शैव धर्म तथा तेवारम के गीतो के सूक्ष्म तत्वो का भी विस्तृत विवेचन इसमे मिलता है। उस अतीत काल मे शैव धर्म के प्रचार मे इस ग्रथ ने वडी सहायता पहुचाई थी।

कदपुराणम—इसकी रचना सस्कृत के 'स्कद पुराण' के आधार पर ईसा की ग्यारहवी शताब्दी मे हुई थी। इसके लेखक कच्चियप्प शिवाचारियार तमिळ और सस्कृत के महान विद्वान और काचीपुरम के निवासी थे। इन्होने बचपन मे व्याकरण, साहित्य तथा वैदिक ग्रथो का अध्ययन किया था। यह काची-पुरम के कुमारकोप्ठम (सुब्रह्मण्य के) मदिर मे पुजारी का काम करते थे।

इस ग्रथ मे कुमार स्कदस्वामी के चरित्र और अद्भुत कृत्यो का विस्तृत वर्णन किया गया है। स्कद तमिळ लोगो के सबसे बडे और पूज्य देवता है। इस ग्रथ मे अनेक आख्यान और उपाख्यान दिये गये है। भावो की सुदरता, कल्पना का विलास, अलकारो की छटा, वर्णन की सरसता और भक्ति की पराकाप्ठा के लिए समस्त तमिळनाडु मे इसकी ख्याति है और अनेक लोग वडे प्रेम से इस पुस्तक का पाठ करते है। इस ग्रथ के सबध मे एक जनश्रुति है कि इसके आरभ के एक सौ छदो का भगवान सुब्रह्मण्य ने स्वय सशोधन किया था। यह समस्त ग्रथ धार्मिक भावनाओ से ओत-प्रोत है।

व्याकरण ग्रथ—भक्ति-युग मे एक प्रकार से साहित्य की सर्वतोमुखी उन्नति

हुई। पुराणो का उल्लेख हम ऊपर कर चुके है। 'नन्नूल,' 'वीरचोळियम' आदि व्याकरण और लक्षण-ग्रथ भी इसी काल मे रचे गये।

१ **अहप्पोरुळ इलक्कणम**—'तोळकाप्पियम' के बाद तमिळ का दूसरा व्याकरण 'अहप्पोरुळ इलक्कणम' नाम से नविनायनार नबि ने रचा था। तमिळ मे व्याकरण को इलक्कणम कहते है और इसके पाच भाग है, जिनके सबध मे पहले लिखा जा चुका है। उपर्युक्त ग्रथ मे नबि ने पोरुळ (अर्थ) के भिन्न-भिन्न अगो की व्याख्या की है। इस ग्रथ का आधार तोळकाप्पियर क व्याकरण है।

२ **याप्पु-अरुगलम और याप्पु-अरुगलक्कारिकै**—ये दोनो छद-शास्त्र के ग्रथ है। इनमे तमिळ के छद वेण्बा, आशिरियप्प कलिप्पा आदि की विस्तृत व्याख्या की गई है। ये दोनो ग्रथ आज भी तमिळ साहित्य के अध्ययन के लिए आवश्यक समझे जाते है। 'याप्पु-अरुगलम' के रचयिता गुणशेखरर थे और 'याप्पु-अरुगलक्कारिकै' के रचयिता अमृतशेखरर। दोनो लेखक जैन धर्मावलबी थे।

३ **नन्नूल**—'तोळकाप्पियम' के बाद तमिळ भाषा का सबसे प्रसिद्ध और अधिक प्रचलित व्याकरण 'नन्नूल' है। यद्यपि इसकी रचना 'पाणिनीय' के अनुसार हुई, तो भी इसका आधार 'तोळकाप्पियम' माना जाता है। यह पुस्तक सरल होने के कारण तमिळ के विद्यार्थियो मे अधिक लोकप्रिय है। इस ग्रथ के रचयिता भी एक जैन साधु थे, जिनका नाम पवणदि मुनि था। यह काची-पुरम के निवासी थे। इनका काल तेरहवी शताब्दी का आरभ माना जाता है। इन्होने अपने ग्रथ मे अक्षर और शब्द दो ही प्रकरणो पर विचार किया है।

४ **वीरचोळियम**—यह भी तमिळ भाषा का एक प्रसिद्ध लक्षण-ग्रथ है। इस ग्रथ का रचयिता भी बुद्ध मित्तिरर नामक एक जैन कवि था। पुस्तक का नाम वीरचोळ नामक चोळ राजा के नाम पर दिया गया है। कदाचित बुद्ध-मित्तिरर वीरचोळ का समकालिक था। कवि ने इस ग्रथ मे व्याकरण के पाचो अगो, अर्थात अक्षर, शब्द, विषय, छद और अलकार की विवेचना की है। पुस्तक मे केवल १८१ पद्य है।

५ **नेमिनादम**—यह भी एक व्याकरण ग्रथ है। इसके रचयिता भी गुण-
ीरपतिर नाम के एक जैन थे। इसमे ९६ सूत्रो मे अक्षर और शब्द पर विचार
केया गया है।

शैव सिद्धात-शास्त्र—हम पहले लिख चुके है कि शैव मत दक्षिण का सबसे
ाचीन मत और शिव सबसे पुरातन देवता है। इस युग मे इस मत मे कुछ ऐसे
वद्वान उत्पन्न हुए जिन्होने शैव मत के सिद्धातो की नई व्याख्या की और कुछ
ावीन सिद्धात भी उपस्थित किये। ये सिद्धात शैव सिद्धात के नाम से प्रसिद्ध
'। इस सप्रदाय के चौदह विद्वान विख्यात है जिन्होने इस मत के सिद्धातो की
ृष्टि और नई व्याख्या की है।

शैव सिद्धात का मूल तत्त्व यह है कि शिव ही सृष्टि स्थिति, सहार, दया
ाथा मोक्ष इन पाचो के स्वामी है। आर्यों की कल्पना मे शिव का स्थान त्रिदेवो
ा है और वह सहार के देवता माने गये है। परतु शैव सिद्धात के अनुसार वह इन
ीनो मे परे प्रेम और दया के स्वरूप एव मोक्ष के प्रदाता है। शिव की
ाक्ति ही सती है। 'जिस प्रकार सूर्य से प्रकाश निकलकर सारे ससार को सजीव
ौर सक्रिय बनाता है, उसी प्रकार शिव की शक्ति सती इस जगत का सरक्षण
करती है।' शिव को प्रेम और दया का रूप मानना और भक्ति को मोक्ष-प्राप्ति
का साधन मानना शैव सिद्धात की सबसे बडी विशेषता है। इस सिद्धात के
अनुसार सृष्टि के तीन तत्व है—पति, पशु और पाश। पति समस्त जीवो (पशु) के
स्वामी भगवान शिव है, पशु जन्म-मरण के बधन मे पडा हुआ जीव-समूह है और
पाश वह भौतिक बधन है, जिसमे पडकर पशु (जीव) अपने पति (शिव) से पृथक
हो गया है। जीव सासारिक विषय-वासना के मोह मे पडकर भगवान से दूर होता
जाता है और इस पाश के बधन मे फसता जाता है। इस पाश से निकलने का एक-
मात्र साधन भगवान शिव की भक्ति और ज्ञान है।

इस शैव सिद्धात के प्रथम उन्नायक मेयकडदेव थे। इनका जन्म तजाऊर
जिले मे १२ वी सदी मे हुआ था। इन्होने शैव सिद्धात के ऊपर सबसे पहला ग्रथ
रचा जिसका नाम 'शिवज्ञानबोधम' है। इसमे शिव को सर्वोपरि देव और
परा भक्ति को शिव-प्राप्ति का सबसे बडा साधन कहा गया है। शैव सिद्धात
के प्रथम आचार्य होने के कारण इन्हे 'तमिळ का व्यास' कहा गया है।

इस सिद्धात के चौदह मुख्य ग्रथ है, जिन्हे शैव सिद्धात-शास्त्र कहते है।

इन सभी ग्रथो की रचना भिन्न-भिन्न शैव आचार्यो द्वारा हुई है। इन आचार्यो मे अरुलनदि शिवाचारियार, मरैज्ञानसबधर और उमापति शिवाचारियार सबमे प्रसिद्ध है।

अरुलनदि शिवाचारियार—यह ब्राह्मण थे और मेयकडदेवर के सबमे प्रधान शिष्य थे। यह तमिळ और मस्कृत के बहुत बडे पडित और शैव सिद्धात के प्रकाड विद्वान थे। यह सन्यासी होकर शैव सिद्धात का प्रचार करते थे। इन्होने अपने गुरु के ग्रथ 'शिवज्ञानबोधम' की पद्धति पर 'शिवज्ञान सिद्धर' नामक एक महान ग्रथ लिखा है, जिसे शैव सिद्धात पर सबसे विद्वत्तापूर्ण रचना माना जाता है। इस ग्रथ मे उन्होने शैव सिद्धात के सभी तत्वो का विवेचन किया है और अपने गुरु के मिद्धातो की विस्तृत व्याख्या की है। ये दोनो ग्रथ शैव सिद्धात की अमर निधि है।

मरैज्ञानसबंधर—यह वेळ्ळाळर (किसान) जाति के थे और अरुलनदि स्वामी के शिष्य थे। इन्होने शैव धर्म पर 'शिवधर्मोत्तिर' नाम का बडा ग्रथ लिखा है।

उमापति शिवाचारियार—यह जन्म से वैष्णव थे, पर पीछे चलकर इन्होने .शैव मत स्वीकार कर लिया। इन्होने शैव-धर्म पर अनेक ग्रथ लिखे है, जिनमे 'शिवप्रकाशम' बहुत प्रसिद्ध है। इन्होने 'शेक्किळार पुराणम' 'कोइल पुराणम' और अनेक छोटे-बडे ग्रथ रचे, जिनसे इनका नाम अमर है।

भाष्यकार—एक और दृष्टि से यह युग महत्वपूर्ण माना जा सकता है। तमिळ के अनेक प्राचीन ग्रथ, जो सैकडो वर्षो के बाद जन-साधारण के लिए अग्राह्य हो गये थे, उनकी सरल व्याख्या करके उन्हे सर्व-सुलभ बनाने का प्रयास इस युग मे हुआ। अनेक ऐसे विद्वान पैदा हुए, जिन्होने तमिळ के प्राचीन ग्रथो पर भाष्य लिखे, जिससे उन ग्रथो का गूढार्थ समझने मे सहायता मिली। तमिळ मे भी अर्थ लिखने की दो प्रणालिया थी, जिन्हे 'विरुत्ति' (वृत्ति) और 'काडिकै' (भाष्य) कहते है। भाष्यकारो ने इन दोनो पद्धतियो का अनुसरण किया।

तमिळ के भाष्यकारो मे पेराशिरियर, शेनवारियर, नच्चिनार्क्किनियर, अडियार्क्कुनल्लार परिमेल-अळकर आदि प्रसिद्ध है।

पेराशिरियर—पेराशिरियर नाम का अर्थ होता है बडा प्रोफेसर। इन्होने 'तोळकाप्पियम' और 'कुरुदोहै' नामक ग्रथो पर भाष्य लिखे है।

चौथे सर्ग मे काली मदिर का और काली के सामने युद्ध मे विजय पाने के लिए वीरो द्वारा अपने अगो की वलि चढाने तथा चोळ राजा की विजयो का वर्णन मिलता है। हिमालय से लौटा हुआ प्रेत कलिंग के साथ चोळ राजा के युद्ध की भविष्यवाणी करता है जिसे सुनकर सारे भूतगण आनद से नाच उठते है।

दसवे सर्ग मे देवी चोळ राजा के भगवान तिरुमाल (विष्णु) के वशज होने की कहानी कहती है। ग्यारहवे सर्ग मे कलिंग के साथ चोळ राज्य के युद्ध के कारणो का विवरण मिलता है। इसी सर्ग मे विभिन्न देशो के राजाओ का वर्णन भी है। युद्ध का कारण कलिग देश के राजा का समय पर कर अदा नही करना बताया गया है। चोळ राजा अपने सेनापति करुणाकर तोडैमान को आज्ञा देता है कि कलिग राजा के राज्य पर अधिकार कर लो। इसी सर्ग मे कलिग के विरुद्ध सेना के अभिगमन का सुदर वर्णन है।

बारहवे सर्ग मे एक भूत द्वारा कलिग युद्ध का विशद और सजीव वर्णन है। इस युद्ध मे तोडैमान ने कलिग राजा के हजारो हाथियो का वध किया और सात कलिग राजाओ की सम्मिलित सेना को परास्त किया था।

अतिम सर्ग मे युद्ध-भूमि का वर्णन है। भूतो की प्रार्थना मानकर काली अपने अनुचरो के साथ युद्ध-भूमि मे आती है और उन्हे यथेष्ट मात्रा मे रक्त और मास खाने का तथा तोडैमान के विजयोत्सव मे नाचने एव गाने का आदेश देती है। इस सर्ग मे कवि ने अपनी पूरी काव्य-कला और कल्पना-शक्ति दिखलाई है। इसमे वीभत्स रस का सुदर परिपाक हुआ है। यह ग्रथ ऐतिहासिक महत्व भी रखता है।

दूसरा प्रसिद्ध भरणि-काव्य कवि चक्रवर्ती ओट्टुक्कूत्तन का रचा हुआ 'तक्कयागप्परणि' नामक काव्य है। इसमे दक्ष प्रजापति के यज्ञ और शिव के घोर ताडव आदि का विशद वर्णन है। दक्ष को शुद्ध तमिळ रूप मे 'तक्क' लिखा गया है। इसमे शैव धर्म और शैवाचार्यो के कृत्यो का भी मनोहर वर्णन है।

सिद्ध सप्रदाय—उत्तर भारत की तरह तमिळ देश मे भी सिद्धो की एक परपरा रही है। यह कहना कठिन है कि तमिळ देश मे यह परपरा किस काल मे, किस प्रकार आरभ हुई। दक्षिण मे सिद्धो के जो नाम मिलते है, उनमे कुछ ऐसे है, जो उत्तर भारत के नाथ-सप्रदाय के नौ नामो के साथ मिलते-जुलते

हैं। दक्षिण और उत्तर के सिद्धो के धार्मिक विश्वासो मे भी बहुत सी बाते एकरूप हैं। इससे प्रगट होता है कि इन दोनो का घनिष्ठ सबध रहा होगा।

उत्तर के सिद्धो की तरह ही दक्षिण के सिद्ध वेद-पुराण आदि ग्रथो तथा तीर्थाटन, पूजा आदि ब्राह्माचारो की निदा करते थे और आतरिक साधना पर जोर देते थे। दक्षिण के सिद्ध शिव को अपना आराध्य देव मानते थे और कट्टर अद्वैतवादी थे। इनमे अनेक सिद्ध रसायन, वैद्यक, मत्र-तत्र आदि क्रियाओ मे दक्ष थे। आज भी तमिळनाडु मे 'सिद्ध-वैद्य' नाम से एक अलग चिकित्सा-पद्धति प्रचलित है। तमिळ के कुछ विद्वानो का मत है कि आयुर्वेद का उद्गम भी इसी सिद्ध-पद्धति से हुआ होगा। ये सिद्ध अपनी करामातो के लिए प्रसिद्ध थे, और भिन्न-भिन्न यौगिक क्रियाओ से लोगो को प्रभावित करते थे। इन सिद्धो म अधिकतर निम्न जाति के लोग ही पाये जाते हैं।

तायुमानवर स्वामी ने 'सिद्धर गणम' नामक अपनी पुस्तक म सिद्धो की परपरा मे दक्षिण के सिद्धो के नामो के साथ-साथ उत्तर भारत के नाथ-पथी नौ सिद्धो के नाम भी गिनाये हैं। तायुमानवर स्वामी के उल्लिखित नौ नाम ये हैं

सत्यनाथर, शकोटनाथर, आदिनाथर, अनादिनाथर, वकुलिनाथर, मातग-नाथर, मत्स्येद्रनाथर, कडेद्रनाथर और गोरखनाथर।

तमिळ देश के अठारह सिद्ध कसूर सिद्धर, पुलिप्पाणि सिद्धर, पावाट्टि सिद्धर, कुदवै सिद्धर, अहप्पै सिद्धर, अगत्तियर, पुलत्तियर, तेरैयार, यूकिमुनि, मत्स्यमुनि, रोमऋषि, शहै मुनि, नदिमूलर, चडिकेशर, इडैक्काडर, कपिलर, पुशुंडै मुनि और कजमलै सिद्धर हैं।

कुछ लोग अगस्त्य और तिरुमूलर को भी सिद्धो की परपरा मे गिनते हैं। दक्षिण मे अति प्राचीन काल से यह विश्वास चला आता है कि अगस्त्य ने ही तमिळ लोगो को वैद्यक, नक्षत्र-शास्त्र आदि का ज्ञान कराया। तिरुमूलर का स्थान ६३ शिव-भक्तो मे भी आता है। इन सिद्धो के अधिकाश ग्रथ वैद्यक, रसायन-शास्त्र, नक्षत्र-शास्त्र, सामुद्रिक-शास्त्र, शकुन-शास्त्र और हठयोग पर रचे गये हैं।

सिद्धो की भाषा एकदम बोल-चाल की और सधुक्कडी थी। इसी कारण से साहित्य मे इनको स्थान नही दिया गया और उनकी बहुत सी रचनाए नष्ट हो गई। इन सिद्धो की वाणी का अशिक्षित जनता मे ही नही, शिक्षित जनता मे भी प्रचार है। उत्तर भारत मे लोग जिस तरह कबीर, रहीम आदि के

दोहे जबानी याद रखते है, इसी तरह दक्षिण मे सिद्धो के बहुत से पद्य लोगो की जबान पर रहते है। अभी तक सिद्धो की रचनाओ का विवेचनात्मक अध्ययन नही हुआ है। कोई साहित्य-रसिक या अन्वेषक इस कार्य को अपने हाथ मे लेकर उत्तर भारत के सिद्धो की रचना के साथ इन लोगो का तुलनात्मक अध्ययन करे, तो बहुत सी सामग्री मिल सकती है।

५. मठों और धार्मिक संस्थाओं का काल

अत मे हम मठो और धार्मिक सस्थाओ के काल मे पहुचते है। इस काल मे विशेष तौर पर प्राचीन ग्रथो का, जो ताल-पत्रो पर लिखे जाने के कारण नष्ट होते जा रहे थे, सरक्षण-कार्य हुआ। तो भी यह युग कवियो से सर्वथा शून्य नही कहा जा सकता। यद्यपि इस युग मे कोई महान कवि नही उत्पन्न हुआ, तो भी अनेक छोटे-मोटे कवियो ने इस युग को अपने प्रकाश से आलोकित किया। इनमे से नीचे कुछ मुख्य कवियो का परिचय दिया जाता है।

कालमेघम—यह कुभकोणम के रहनेवाले एक वैष्णव ब्राह्मण थे और श्रीरगम के मदिर मे रसोइया का काम करते थे। श्रीरगम के पास ही तिरुवानैक्कोविल मे जबुकेश्वर का मदिर है। उस मदिर मे मोहनागी नाम की एक देवदासी रहती थी। उसके प्रेम मे फसकर कालमेघम वैष्णव से शैव बन गये और तिरुवानैक्कोविल आकर जबुकेश्वर मदिर मे रहने लगे। यह आशु कवि थे। अपने जमाने मे इनकी बडी धाक थी। इनकी रचनाए शिव के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो के ऊपर रची गई थी। इनकी कविता मे श्लेषोक्ति, चाटूक्ति और हास्यरस-भरी कृतिया भी है। इनकी एक प्रसिद्ध रचना 'परब्रह्म विळक्कम' है, जिसमे उन्होने भगवान शिव को परब्रह्म स्थापित किया है।

अतिमधुर कवि—यह कालमेघम के समकालिक और उनके प्रतिद्वद्वी थे। अतिमधुर कवि बडे गर्वीले थे। कालमेघम ने इन्हे परास्त किया था।

इरट्टैयर—इरट्टैयर शब्द का अर्थ होता है 'जोडा'। ये दो कवि सदा साथ रहते थे। इनमे एक लगडा था, दूसरा अधा। ये दोनो भिक्षा मागने साथ जाया करते थे। लगडा अधे के कधे पर सवार होकर जाता था। दोनो कवि थे। दोनो मिलकर कविताए किया करते थे। प्राय लगडा छद का पूर्वार्ध बनाता था और

अवा उसको पूरा करता था। तमिळ देश मे यह कवि-युगल बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी चार-पाच कृतिया मिलती हे।

अळकिय देशिकर—यह शैव मत के थे और मदुरा के निवासी थे। इन्होने स्कदपुराण के आधार पर 'सेतु पुराण' नामक ३४३८ वृत्तो का एक वृहत ग्रथ रचा है।

अतिवीररामपाडियन—यह पाडिय वश मे पैदा हुए थे और मदुरा के राजा थे। यह अळकियदेशिकर के शिष्य थे। इनका समय ईसा की पद्रहवी सदी माना जाता है। 'इन्होने 'नैषध', 'काशी काड', 'लिगपुराणम' और 'कूर्मपुराणम'—ये चार ग्रथ लिखे हे। 'नैपध' इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रथ है और सस्कृत के श्री हर्ष के 'नैपध' के आधार पर लिखा गया है। यह हिंदी के रीतिकाल की रचनाओ की तरह शृगारिक है और कही-कही अश्लीलता की हद तक पहुच जाता ह। लगभग इसी समय तेलुगु साहित्य मे भी शृगारिक काव्यो की प्रचुर मात्रा मे रचना होने लगी थी। महाकवि श्रीनाथ ने सस्कृत से 'नैपध', 'काशीकाड' आदि का अनुवाद तेलुगु मे किया।

वरतुगपाडिय—यह अतिवीररामपाडिय के बडे भाई कहे जाते हैं। इन्होने भी शृगारिक रचनाए करके अपने भाई का साथ दिया है। इन्होने 'कॉक्कोकम' नाम से कोक-शास्त्र पर एक ग्रथ लिखा है, जो सस्कृत के कोक-शास्त्र के आधार पर लिखा माना जाता है। यह ग्रथ भी काफी अश्लीलतापूर्ण है।

अरुणगिरिनाथर—भक्ति युग के बाद के भक्त कवियो मे अरुणगिरिनाथर का नाम सबसे प्रसिद्ध है। इनके सबध मे प्रसिद्ध है कि इनका जन्म किसी चेट्टियार की रखेली के गर्भ से हुआ था। यह बडे प्रतिभाशाली कवि और भगवान शिव के परम भक्त थे।

इनके प्रसिद्ध ग्रथ है—'कदरदादि,' 'कदरलकारम', 'कदरनुभूति,' 'तिरु-वकुप्पु,' 'वेल्विरुत्तम' आदि। इनमे भगवान सुब्रह्मण्य की, जिन्हे तमिळ मे कदन कहते हैं, प्रशसा और प्रार्थना की गई है। इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना, जिसके कारण शिव भक्तो मे इनकी बडी ख्याति है, 'तिरुप्पुहळ्' है। तिरुप्पुहळ् का अर्थ होता है पवित्र स्तुति। तिरुप्परकुड्रम, पलनि, तिरुच्चेदूर, स्वामिमलै आदि स्थल भगवान सुब्रह्मण्य के प्रसिद्ध क्षेत्र हें, कवि ने इन क्षेत्रो मे जाकर सुब्रह्मण्य

की प्रशसा मे वहुत ही मधुर और गेय पद रचे थे। कहा जाता है कि 'तिरुप्पुहळ्' मे १०००० छद थे। परतु आजकल उसका एक दशाश ही प्राप्त है।

'तिरुप्पुहळ्' का शिवभक्तो में एक विशेष स्थान है। प्राय शिव और सुब्रह्मण्य के मदिरो मे 'तिरुप्पुहळ्' का पाठ होता है और वच्चो को राग के साथ इन पदो का गाना सिखाया जाता है। आजकल भी कार्तिक मास मे, जो सुब्रह्मण्य का जन्म-मास माना जाता है, लोग ब्राह्म-मुहूर्त मे ही उठकर मडलिया वनाकर मजीरा और हारमोनियम के साथ 'तिरुप्पुहळ्' गाते हुए नगरो और गावो मे घूम आते और सुब्रह्मण्य के मदिर की परिक्रमा करते हैं। शिव-भक्तो का विश्वास है कि 'तिरुप्पुहळ्' के पद गाने से सभी प्रकार के भौतिक तापो से मुक्ति मिल जाती है। इनकी रचनाओ मे यद्यपि सस्कृत के शब्द बहुत आये हैं, तथापि कविता मे स्वाभाविक प्रवाह है।

विल्लिपुत्तुरार—यह वीरराघवाचार्य नाम के वैष्णव विद्वान के पुत्र थे। यह सस्कृत और तमिळ के प्रकाड विद्वान और आशु कवि थे। इनकी भाषा म सस्कृत शब्दो की वहुलता पाई जाती है। इनकी रचनाओ की यह विशेषता है कि इन्होने शिव और विष्णु दोनो पर पद्य रचे हैं। इन्होने महाभारत की कहानी तमिळ छद मे लिखी है। इनका महाभारत तमिळ भाषा का एक लोकप्रिय ग्रथ है।

इनके सबध मे एक रोचक कहानी प्रचलित है। इन्होने अपने भाई की सारी सपत्ति छीन ली थी। भाई ने जाकर राजा से शिकायत की। शिकायत सुनकर राजा ने पीछे निर्णय देने का वादा किया। इसके वाद राजा ने कवि को वुलाकर महाभारत की रचना करने का आदेश दिया। विल्लिपुत्तुरार ने महा-भारत लिखकर राजा के सामने उपस्थित किया। राजा ने उसे पढकर सुनाने की आज्ञा दी। जव दुर्योधन द्वारा अपने चचेरे भाई पाडवो का राज्य छीने जाने का प्रसग आया, तव राजा ने कवि से पूछा—"क्यो कविजी, आपकी निजी कहानी और इस कहानी मे कुछ अतर है?" यह सुनकर विल्लिपुत्तुरार ने अपनी सारी सपत्ति अपने भाई को दे दी।

परंजोति मुनिवर—तमिळनाडु के प्रसिद्ध कवियो मे इनका विशिष्ट स्थान है। इन्होने दो ग्रथ रचे। एक 'वेदारण्यपुराणम', जिसमे तजाऊर ज़िले के वेदारण्यम नाम के क्षेत्र का वर्णन है। दूसरा है 'तिरुविळैयाडर्पुराणम'। यह कवि मदुरा मठ के तविरान (शैव-मठ के प्रधान) थे।

तमिळनाडु मे 'तिरुविळैयाडर्पुराणम' का अधिक प्रचार है और तमिळ साहित्य के अध्येताओ को इसका पढना अनिवार्य माना जाता है। इस ग्रथ मे भगवान शिव की लीलाओ और करामातो का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसकी आरभ की कहानी स्कदपुराण के आधार पर है, परतु आगे चलकर कहानी का क्षेत्र मदुरा और उसके आस-पास की भूमि हो जाता है। वास्तव मे शिव का लीला-क्षेत्र मदुरा ही था। इसमे पाडिय और चोळ राजाओ, नक्कीरर आदि कवियो, माणिक्यवाचकर आदि भक्तो, मकरध्वज पाडिय नामक राजा की पत्नी काचनमालै का भक्ति पूर्ण जीवन-चरित्र, सिद्धो की करामात, पाडिय राजा को मारने के लिए जैनो का षड्यत्र आदि के सबध मे कई कहानिया सम्मिलित है। यह ग्रथ अपनी साहित्यिक शैली और अलकारपूर्ण भाषा के लिए विख्यात है। इसी नाम का एक दूसरा ग्रथ पेरुभद्रपुलियूरार नामक कवि का लिखा हुआ भी मिलता है। यह ग्रथ भी शिव की लीलाओ से सबध रखता है। परतु इसका आधार सस्कृत का 'उत्तर महापुराण' है।

पोय्यामोळिप्पुलवर—'पोय्यामोळि' का अर्थ होता है सत्यवक्ता और 'पुलवर' का अर्थ होता है पडित या विद्वान। इनका जन्म चोळमडलम (तिरुच्चिरापल्ली जिला) मे हुआ और यह जाति के वेळ्ळाळ (किसान) थे। यह बडे विद्वान और महाकवि थे। इनका ग्रथ 'तजैवाणनकोवै' तमिळ का एक बहुत प्रसिद्ध ग्रथ है। 'कोवै' तमिळ की एक विशेष प्रकार की कविता-प्रणाली है जिसमे विविध प्रकार के छद होते है। इस रचना का नायक पाडिय राजा का मत्री व सेनानायक वाणन नामक व्यक्ति था। यह ग्रथ भी तमिळ के विद्यार्थियो के लिए उपयोगी माना जाता है।

इस युग मे और भी अनेक ग्रथ रचे गये है जिनमे निम्नलिखित मुख्य है—वीरकविरायर द्वारा रचित 'हरिश्चद्र पुराणम', मडलपुरुडर का 'चूडामणि' नामक शब्द-कोष, अरशकेसरि का 'रघुवश' का पद्यानुवाद जिसमे २४०४ छद है। वीरराघव मुदलियार नामक अधे कवि के 'मुरुगन पिळ्ळैत्तमिल' आदि ग्रथ प्रसिद्ध है। 'पिळ्ळैत्तमिल', वात्सल्य-रसपूर्ण रचना है जिसमे बाल-क्रीडा का सुदर वर्णन है।

यहा पर कुछ मठो का कुछ परिचय देना अप्रासगिक न होगा।

तिरुवाडुतुरै मठ—दक्षिण के मठो मे यह मठ सबसे पुराना और तमिळ साहित्य

तथा शैव सिद्धात की अभिवृद्धि के लिए सबसे प्रसिद्ध है। चौदहवी शताब्दी मे इस मठ की स्थापना प्रसिद्ध शैव आचार्य उमापति शिवाचारियार के शिष्य नमच्चिवायमूर्ति नामक शैव सत ने की थी। यह तमिळ के बडे विद्वान थे। इनकी शिष्य-परपरा मे अनेक विद्वान और कवि पैदा हुए, जिन्होने तमिळ साहित्य की अभिवृद्धि की और विशेप रूप से शैव धर्म पर अनेक ग्रथ रचे। उनमे कुछ उल्लेखनीय ये है :

दक्षिणामूर्ति के रचे ग्रथ—'दशकारियम' और 'उपदेशप ट्रोडै'।

अबलवाण देशिकर के रचे—'सन्मार्ग सिद्धियार,' 'सिद्धातशिखामणि', 'नमच्चिवाय मालै'-आदि दस ग्रथ।

स्वामिनाथ देशिकर के रचे 'दशकार्य' तथा प्राचीन ग्रथो पर अनेक भाप्य।

शकर नमच्चिवाय की लिखी नन्नूल पर व्याख्या।

वेलप्प देशिकर का रचा 'पचाक्षर प ट्रोडै'। यह ग्रथ 'पडार-शासनम' के नाम से प्रसिद्ध है। पडारम तमिळ मे मठाधिपति को कहते है और मठ के शिष्यो के लिए इन शास्त्रो का ज्ञान आवश्यक होता है।

इस मठ के पडारसन्निधि (मठाधिपति) मे शिवज्ञानमुनिवर का नाम विशेप रूप से उल्लेखनीय है। यह सस्कृत और तमिळ दोनो भापाओ के प्रकाड विद्वान, कवि तथा व्याकरण, तर्क और दर्शन-शास्त्र के पारगत थे। इन्होने 'शिव-ज्ञान-सिद्धियर' नामक ग्रथ की गभीर विवेचनापूर्ण व्याख्या की है।

धर्मपुर मठ—तजाऊर जिले के मठो मे धर्मपुर आधीनम (मठ) सबसे सपन्न है। इसकी सालाना आमदनी लाखो रुपयो की है। इस मठ मे अनेक साधु रहते है, जो तमिळ भापा और साहित्य के अध्ययन और प्रचार, शिव की भक्ति और शैव मत के प्रचार मे अपना समय व्यतीत करते है।

इस मठ की स्थापना उमापति शिवाचारियर के शिष्य मच्चु चेट्टियार के प्रशिष्य ज्ञानप्रकाश देशिकर ने की थी। मच्चु चेट्टियार बडे विद्वान और भक्त पुरुष थे। इनके सबध मे एक रोचक कहानी है। 'मच्चु' का अर्थ होता है मकान की ऊपरी मजिल। वह सदा भगवान शिव के ध्यान मे अपने घर की ऊपरी मजिल मे ही अपना समय व्यतीत करते थे और कभी नीचे नही उतरते थे। इसी कारण से लोगो ने इनका नाम मच्चु चेट्टियार रख दिया था। इन्होने कई ग्रथ रचे है। इन्हीके प्रशिष्य ज्ञानप्रकाश देशिकर ने धर्मपुर मठ की स्थापना

की थी। इन्होने 'शिवभोग सारम', 'परमानद विळक्कम' आदि अनेक ग्रथ शैव धर्म पर रचे है।

कुमरगुरुपर स्वामी—कुमरगुरुपर स्वामी का जन्म तिरुनेलवेली जिले मे श्रीवैकुठम नामक प्रसिद्ध वैष्णव क्षेत्र मे हुआ था। कहा जाता है कि यह गूगे पैदा हुए थे और भगवान सुब्रह्मण्य की कृपा से इन्हे वाक-शक्ति मिली। यह तमिळ साहित्य के वडे विद्वान और कवि थे। इन्होने कई ग्रथ रचे है।

शैव सतो मे यह ही प्रथम सत है, जिन्होने उत्तर भारत जाकर वहुत काल तक निवास किया और शैव धर्म का प्रचार किया। कहा जाता है कि यह दिल्ली मे बादशाह अकवर से भी मिले थे। इन्होने वहुत समय तक काशी मे निवास किया था और काशी मे उनका वनवाया हुआ मठ अव भी वर्तमान है। इसीलिए इनकी परपरा के शिष्य लोग अपने नाम के पहले 'काशीवासी' उपाधि लगाते है। दक्षिण मे एक किवदती प्रचलित है कि जिस समय तुलसीदासजी काशी मे रामायण की रचना कर रहे थे, उसी समय कुमरगुरुपर स्वामी काशी मे गगा-तट पर कव-रामायण का प्रवचन कर रहे थे। तुलसीदास नित्य इस प्रवचन मे सम्मिलित होते थे और उससे रामायण लिखने मे उन्हे स्फूर्ति मिलती थी। यह सस्कृत और तमिळ के वडे विद्वान थे और हिंदी भी जानते थे। इनका सवध एक दूसरे मठ —तिरुप्पनदाल— से भी कहा जाता है।

उपर्युक्त दो मठो के अतिरिक्त दक्षिण मे तिरुवण्णामलै, तिरुमगलम, तिरुप्पनदाल, चिदवरम आदि मे भी कई छोटे-छोटे मठ है, जो तमिळ साहित्य तथा शैव धर्म के केद्र माने जाते है। इनके मठाधिपतियो और शिष्यो ने भी तमिळ साहित्य की अभिवृद्धि मे योग-दान किया था।

अठारहवीं शताब्दी के बाद की रचनाएं

तमिळ साहित्य का प्राचीन युग ईसा की सत्रहवी शताव्दी से समाप्त हो जाता है और हम अर्वाचीन या आधुनिक युग मे प्रवेश करते है। परतु इससे प्राचीन युग के साहित्य का सिलसिला समाप्त नही होता। सघम काल मे साहित्य-रचना की जो धारा प्रवाहित हुई थी, वह किंचित शिथिल गति से ईसा की सत्रहवी-अठारहवी सदी तक चलती रही। इन दोनो शताव्दियो मे भी अनेक ऐसे विद्वान

और कवि उत्पन्न हुए, जिन्होंने पुरानी परिपाटी के अनुसार साहित्य-निर्माण किया और अमर ख्याति प्राप्त की। इस युग के साहित्य की दो धाराएं स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है—पहली, प्राचीन, दूसरी, नवीन। नवीन धारा की रचना पर पाश्चात्य साहित्य और विचारधारा का प्रभाव लक्षित होता है। इस युग के कवियो मे सभी जातियो और धर्मो के लोग मिलते है, जिनमे मुसलमान, ईसाई और कुछ अग्रेज भी शामिल है। इस काल के कवियो मे दो-चार सबसे प्रसिद्ध व्यक्तियो के नाम देकर ही हम सतोष करेंगे।

तायुमानवरस्वामी—यह तिरुच्चिरापल्ली के निवासी थे और भगवान शिव के बडे भक्त थे। यह सस्कृत और तमिळ के बडे विद्वान थे। इन्होने तमिळ मे अनेक स्तोत्र रचे, जिनके जरिये शैव धर्म के सिद्धातो का प्रचार हुआ। इनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाओ के नाम ये है—'परापरक्कण्णि', 'पैगिळिक्कण्णि', 'एण्णलकण्णि' और 'आनदक्कळिप्पु'। इन्होने शैव सिद्धात की बडी प्रशसा की है। इनका उद्देश्य शैव-सिद्धाती कहलानेवाले कुछ सकुचित विचारवाले कट्टर-पथियो से शैव धर्म को छुडाना था। लोगो मे यह आग्रह करते है कि ससार के तुच्छ और निस्सार विषयो मे जीवन को नष्ट न करके वे शिवसायुज्य के नित्यानद के भागी बने। इन्होने धार्मिक जीवन मे उदारता, विश्व-भ्रातृत्व और सर्वधर्म-सहिष्णुता का उपदेश दिया। इसलिए इनका दिखाया हुआ मार्ग वेदात-सिद्धात-समरस-नन्नेरि (नन्नेरि-सन्मार्ग) कहलाता है। यह महान सत, कवि और तत्वज्ञानी थे। इनका समय अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है।

रामलिगस्वामी—आधुनिक युग मे शैव धर्म के अनुयायियो मे सबसे अधिक प्रसिद्ध व्यक्ति श्रीरामलिंगस्वामी है। मानव-जीवन के दुखो और ऐहिक आनद की क्षणिकता को देखकर इनका चित्त परमात्मा की ओर उन्मुख हुआ और यह सन्यासी बने। इन्होने योग साधना भी की थी।

इनकी प्रसिद्ध कृति 'अरुळ-पा' है। 'अरुळ' शब्द का अर्थ है दया। कवि दया को ही मनुष्य के लिए सर्वोपरि धर्म मानते है। इनके अनुसार अरुळ (दया) के अतर्गत अहिसा, निरामिष भोजन और सत्य-भाषण आदि बाते आती है। उन्होने लगभग एक हजार पद लिखे। तमिळ देश मे रामलिगस्वामी और इनकी कृतिया बहुत प्रसिद्ध है। इनके पद गेय भी है। शैव धर्म के अनुयायी और साहित्य-मर्मज्ञ दोनो ही इनकी कविता की प्रशसा करते है और कविता का रसास्वादन करते

है। इन्होंने प्राचीन काल के शिव भक्तो के समान भिन्न-भिन्न शिव-क्षत्रो की प्रशमा मे पद रचे है।

यह रामकृष्ण परमहस के समकालीन थे। कहा जाता है कि उन्होने १८७१ मे अपने को एक कमरे मे वद कर लिया और समाधिस्थ हो गये। इसके वाद उनका शरीर अदृश्य हो गया। रामलिगस्वामी का एक गद्य-ग्रथ भी प्रसिद्ध है।

अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी मे अनेक मुसलमान कवियो न भी तमिळ मे रचनाए की, जिनमे शक्करै पुलवर, मुहम्मद इब्राहीम, उमरु पुलवर, मस्तान साहव आदि के नाम लिये जाते है। ईसाई लेखको मे वीरमा मुनिवर और पोप्पय्यर और कृष्ण पिल्लै सवसे प्रसिद्ध है।

वीरमामुनिवर—एक फ्रासीसी मिशनरी (पादरी) थे और उनका असली नाम कास्टाटी या वेस्कीं था। उनका समय सन १६८०-१७४६ था। यह तिरुनेलवेली मे पादरी थे और हिंदू सन्यासियो की तरह काषाय धारण करके, खडाऊ पहनकर हाथ मे दड और कमडल लेकर व्याघ्रचर्म पर वैठकर पालकी मे घूमते थे और ईसाई धर्म का प्रचार करते थे। इन्होने 'तेवावणि' नामक ग्रथ रामायण की तरह लिखा, जिसमे ईसा की जीवनी दी गई है। इन्होने तमिळ भाषा का व्याकरण और कोष भी लिखे।

कृष्ण पिल्लै—इनका जन्म १८२७ ई० मे पालयकोट्टै (तिरुनेलवेली ज़िला) मे हुआ था। यह भारतीय ईसाई थे और तमिळ के अच्छे विद्वान थे। इन्होने ४००० छदो मे अग्रेजी के 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेम' नामक ग्रथ का 'इरक्षणिय यात्रिकम' नाम मे अनुवाद किया है। इमकी भाषा शुद्ध, प्राजल और सरस तमिळ है। ईसाई लोग इनको 'ईमाई कवन' मानते है। उपर्युक्त ग्रथ के अतिरिक्त इन्होने ईसा की स्तुति मे तेवारम भी वनाये है।

इसके वाद नवीन युग का आरभ होता है।

: ७ :

संघम काल के कुछ प्रमुख कवि

१. नक्कीरर

सघम काल के कवियो मे सबसे पहले नक्कीरर का नाम आता है। यह तीसरे सघम के अध्यक्ष और तमिळ भाषा और साहित्य के पारगत विद्वान थे और कई ग्रथो के रचयिता माने जाते है। 'इरयनार अहप्पोरुळ' नामक प्राचीन ग्रथ पर इन्होने भाष्य लिखा, जिसमे तमिळ के तीन सघमो का विस्तृत वर्णन किया गया है। इनकी जाति और जन्म-काल के सबध मे अनेक मत है। कुछ लोगो का कहना है कि यह ब्राह्मण थे और कुछ लोग इन्हे वेळ्ळाळर जाति का मानते है। वेळ्ळाळर जाति तमिळनाडु मे बडी उन्नत और अन्य सब ब्राह्मणेत्तर जातियो मे श्रेष्ठ मानी जाती है। प्राय सभी प्राचीन कवियो की तरह इनके जन्म की तिथि और स्थान के सबध मे कोई निश्चित प्रमाण नही मिलता। जब तक यह निश्चित रूप से नही मालूम होता कि तमिळ का तीसरा सघम कब स्थापित हुआ, तब तक इनके समय का निश्चय करना भी कठिन है। यह तीसरे सघम के अध्यक्ष थे, पर इनकी अध्यक्षता का काल क्या था, यह ठीक-ठीक ज्ञात नही। नक्कीरर की विद्वता से प्रभावित होकर वश चूडामणि नामक पाडिय राजा ने नक्कीरर को अपने दरबार मे निमत्रित किया और उनका समुचित आदर-सम्मान करके सघम के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया।

नक्कीरर के सबध मे एक कथा प्रचलित है। एक दिन जब पाडिय राजा अपनी पट्ट महिषी के साथ अपने राज-भवन की छत पर विहार कर रहे थे, तब उन्हे एक प्रकार की अद्भुत सुगध का बोध हुआ। पहले उन्होने सोचा यह सुगध मेरी रानी के बालो से आ रही है, परतु उस समय रानी के बालो मे किसी प्रकार के फूल का अभाव देखकर उनका यह सदेह दूर हो गया। परतु वह मधुर गध हवा मे मिलकर चारो ओर फैल रही थी। जब राजा को किसी प्रकार यह नही

मालूम हो सका कि वह सुगध कहा से आ रही है, तव दूसरे दिन उन्होंने सघम के विद्वानो मे उसका पता लगाने को कहा। उन्होंने एक सहस्र सुवर्ण मुद्राए एक थैली मे रखकर सघम के मडप मे टगवा दी और यह घोषणा करा दी कि जो विद्वान उनके सदेह का निवारण करेगा, उसे वह थैली प्राप्त होगी। यह समाचार पाकर दूर-दूर के विद्वान वहा आने लगे। सबकी इच्छा थी कि राजा के प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर वताकर पुरस्कार प्राप्त करे, पर कोई भी विद्वान राजा की शका का समाधान नही कर सका।

कई दिन बीत गये। उसी समय मदुरा मे धरुमि नाम का एक गरीव ब्राह्मण रहता था। उसके पिता भगवान सुदरेश्वर के मदिर मे पुजारी थे। धरुमि भी पुजारी वनने की इच्छा रखता था, परतु अविवाहित पुरुषो को पूजा का अधिकार नही था और गरीव होने के कारण कोई उसको अपनी कन्या देने को तैयार नही था। इसलिए धरुमि ने जाकर भगवान सुदरेश्वर से प्रार्थना की कि हे भगवान, राजा के सदेह का उत्तर मुझे वता देने की कृपा करे, जिससे पुरस्कार का धन पाकर मै अपनी दरिद्रता दूर कर आपकी पूजा का अधिकारी वन सकू। धरुमि को विश्वास था कि भगवान की कृपा से राजा के सदेह का सही उत्तर उसे मालूम हो जायगा और वह पुरस्कार का धन प्राप्त कर सकेगा।

भगवान सुदरेश्वर ने धरुमि की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उसको राजा के सदेह का उत्तर वतला दिया। भगवान के मुह से जो शब्द निकले, उन्हे धरुमि ने अच्छी तरह याद कर लिया और उन्हे ज्यो-का-त्यो जाकर राजा के सम्मुख सुना दिया। उसमे कहा गया था कि वह सुगध, जिसने राजा को विचलित कर दिया था, वास्तव मे रानी की लटो से ही निकली थी। ससार का कोई भी पुष्प रानी की लटो से अधिक सुगधित नही होगा। राजा इस उत्तर से वहुत प्रसन्न हुआ और सघम के विद्वानो ने भी इस उत्तर की प्रशसा की। पर नक्कीरर ने अपनी स्वीकृति देने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि पद्य का भाव गलत है। नक्कीरर के विरोध के कारण धरुमि को पुरस्कार नही मिल सका। सघम के अध्यक्ष की यह घोषणा सुनकर वेचारा ब्राह्मण वहुत परेशान हुआ। उसको विश्वास नही हुआ कि स्वय भगवान के रचे हुए पद्य मे कोई मनुष्य दोष निकाल सकता है। पर वह अपढ ब्राह्मण कर ही क्या सकता था? लाचार, वह फिर भगवान सुदरेश्वर के दरवार मे पहुचा और विनय की। उसकी प्रार्थना सुनकर भगवान एक गरीव

पडित का रूप धारण कर सघम मे पधारे। वहा आकर उन्होने धरुमि के पद्य के सबध मे विद्वानो की आपत्ति पूछी। नक्कीरर ने उत्तर दिया कि पद्य मे अतिशयोक्ति का भाव है। यह कहना सत्य नही कि ससार मे कोई भी फूल रानी के बालो से अधिक सुगधित नही हो सकता। पडित ने प्रश्न किया कि देवताओ की स्त्रियो के बाल भी पुष्प से अधिक सुगधित नही हो सकते ? नक्कीरर ने कहा—"नही।" तब पडित ने क्रोध करके पूछा—"पार्वती के बाल भी फूलो से अधिक सुगधित नही है ?" नक्कीरर ने गर्व से उत्तर दिया—"हरगिज नही।" अब तो भगवान ने अपना असली रूप धारण कर फिर वही प्रश्न पूछा, पर नक्कीरर ने निर्भीकता से कहा—"चाहे कोई भी हो, जो बात सत्य है उसे कहने मे मुझे ज़रा भी भय नही।"

विद्वान मे विनयशीलता होनी चाहिए, पर नक्कीरर मे इस गुण की कमी थी। भगवान ने क्रोध मे आकर अपना तीसरा नेत्र खोलकर देखा और नक्कीरर के शरीर मे अग्नि धधकने लगी। उस गरमी को शात करने के लिए नक्कीरर ने मदिर के तालाब मे डुबकी लगाई, पर उससे भी उनकी गरमी शात नही हुई। आखिर उन्हे असाध्य रोग हो गया। अब उन्हे अपनी मूर्खता का ज्ञान हुआ। उन्होने जाकर भगवान के सामने अपना अपराध स्वीकार किया। भगवान ने भी कृपा करके उनकी धृष्टता को क्षमा कर दिया और कैलास जाने का आदेश दिया। कवि दक्षिण कैलास (कालहस्ति क्षेत्र) की ओर रवाना हुए। वहा जाकर उन्होने अपने असाध्य रोग से मुक्ति पाई। रोग से मुक्त होने के बाद नक्कीरर मदुरा को वापस आये और राजा और प्रजा दोनो से सम्मानित होकर बहुत दिनो तक तमिळ साहित्य की सेवा करते रहे। यही पर उन्होने 'इरैयनार अहप्पोरुळ' का भाष्य तमिळ गद्य मे लिखा, जो तमिळ का एक प्रसिद्ध ग्रथ है।

२. कपिलर

सघम के दूसरे प्रसिद्ध कवि कपिलर थे। वह भी बडे विद्वान एव उच्च श्रेणी के कवि थे। वह सघम के सभी कवियो की श्रद्धा और आदर के पात्र थे। नक्कीरर-जैसे दर्पपूर्ण कवि ने भी उनकी विद्वता और काव्य-शक्ति की प्रशसा की है—यही उनकी लोकप्रियता का सबसे बडा प्रमाण है। समस्त तमिळ देश मे उनकी प्रतिष्ठा थी और तमिळ भाषा के सभी दूसरे कवि उनको बडे आदर की दृष्टि से देखते थे।

कपिलर का जन्म पाडिय राज्य के तिरुवादवूर नामक स्थान मे ब्राह्मण कुल मे हुआ था। वह बचपन से ही बडे होनहार और तीक्ष्ण बुद्धि थे। विद्वान आचार्यो के अधीन शिक्षा समाप्त करने के बाद वह सघम के सदस्य बने। उनकी विद्वता और तीक्ष्णता से सघम के कवि और पाडिय राजा बहुत प्रभावित हुए और सघम के कवियो मे उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ गई। उनकी रचनाए भाव और भाषा दोनो दृष्टियो से बहुत ऊचे दर्जे की होती थी।

जिस समय कपिलर मदुरा मे रहते थे, उसी समय उत्तर देश से ब्रह्मदत्त नामक कोई राजा मदुरा आया। उसके हृदय मे तमिळ भाषा व साहित्य के प्रति कोई आदर नही था। यह देखकर कपिलर ने ब्रह्मदत्त को तमिळ की सुदरता और महत्ता से परिचित कराने के लिए 'कुरिजिप्पाट्टु' नामक काव्य लिखा, जिसकी गिनती अष्ट काव्यो मे होती है। उस काव्य को सुनकर ब्रह्मदत्त इतना प्रभावित हुआ कि वह तमिळ का भक्त बन गया और बडी श्रद्धा से तमिळ साहित्य का अध्ययन करने लगा।

बहुत काल तक मदुरा मे रहने के बाद कवि कपिलर की इच्छा देशाटन करने की हुई। उस समय तमिळनाडु मे अनेक छोटे-छोटे सरदार और राजा राज्य करते थे। उनमे सबसे प्रसिद्ध और विद्या-प्रेमी पारि था। उसके विद्या-प्रेम की कथा सुनकर कपिलर उसके दरबार मे पहुचे। कवि नक्कीरर भी कुछ दिनो तक उसके दरबार मे रहकर काव्य की उपासना करते रहे थे।

वहा से चलकर कपिलर कलनाडु के पहाडी राजा वेलपेगन के यहा पहुचे। यह राजा अपनी स्त्री को छोडकर एक वेश्या से प्रेम करता था। उसकी स्त्री अत्यत सती और साध्वी थी। नगर के लोगो की सहानुभूति उसकी ओर थी, पर राजा से कुछ कहने की हिम्मत किसीकी न होती थी। कपिलर ने राजा को सुधारने का भार अपने ऊपर लिया। कवि और पडित होने के नाते राजा को उपदेश देने का उन्हे अधिकार था। आखिर कपिलर के उपदेशो से राजा ने अपनी बुरी वृत्ति छोड दी और एक आदर्श गृहस्थ का जीवन व्यतीत करने लगा। इससे राज्य मे कपिलर का बडा मान हुआ और वह राजा के घनिष्ठ मित्र बन गये।

वहा से चलकर वह पेण्णैयार नदी के तट पर तिरुक्कोइलूर के राजा के यहा पहुचे। यहा के राजा का नाम मलयमान तिरुमुडिक्कारि था। कारि वीर योद्धा एव चतुर राजनीतिज्ञ और उदार व्यक्ति था। उसने कपिलर का बहुत स्वागत-

सम्मान किया और उन्हे अनेक उपहार दिये। कुछ दिन यहा रहकर कपिलर पुन अपने मित्र पारि के यहा वापस आ गये। कपिलर के पुन वापस आ जाने से पारि बडा प्रसन्न हुआ। कवि भी राजा की उदारता और गुण-ग्राहकता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने अपने जीवन के वाकी दिन वही विताने का निश्चय किया।

परतु इसी समय एक दुखद घटना हुई। राजा पारि के दो लडकिया थी। पास के किसी राजा ने एक लडकी के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजा, पर पारि ने अस्वीकार कर दिया। इस पर नाराज होकर आस-पास के तीन राजाओ ने सम्मिलित होकर पारि पर चढाई कर दी। कई महीने तक शत्रु पारि के किले को घेरे रहे। कपिलर के प्रभावोत्पादक वचनो से उत्साहित होकर पारि के सैनिको ने बडी बहादुरी से शत्रुओ का सामना किया। परतु अत मे पारि की हार हुई और युद्ध मे वह मारा गया। अपने मित्र और अभिभावक राजा की मृत्यु से कवि वहुत दुखी हुआ। मृत राजा की दोनो लडकियो के लिए योग्य वर ढूढने का भार कवि ने अपने ऊपर लिया। कन्याओ के विवाह की समस्या शायद उस समय भी इतनी ही जटिल थी जितनी आज है। कवि को योग्य वर ढूढने मे बडी कठिनाई उठानी पडी। अत मे तमिळ कवयित्री औवैयार की सहायता से योग्य वर प्राप्त कर कवि ने दोनो कन्याओ का विवाह कर दिया। इसके वाद कवि चेर राजा के दरवार मे गये। परतु अपने परम मित्र पारि की मृत्यु से कवि का हृदय विदीर्ण हो चुका था। उस दुख से दुखी होकर उन्होने जैन सप्रदाय के अनुसार निरतर उपवास के द्वारा अपने जीवन का अत कर लिया।

कपिलर ने दीर्घ काल तक तमिळ साहित्य की सेवा की और अनेक छोटे-छोटे काव्यो की रचना की। 'कुरिंजिप्पाट्टु' के अतिरिक्त भी उन्होने अनेक सुदर पद्य रचे। उनकी रचनाए 'अहनानूरु,' 'पुरनानूरु' आदि सग्रहो मे सगृहीत है। कपिलर सघम काल के एक दिव्य नक्षत्र माने जाते है।

३. परणर

सघम काल के कवियो मे परणर का विशेप स्थान है। वह नक्कीरर तथा कपिलर के समकालीन थे। नक्कीरर, कपिलर और परणर तीनो सघमरूपी

आकाश के दैदीप्यमान नक्षत्र थे। परणर ने भी खूब देशाटन किया था। तमिळनाडु के अनेक राजाओ के दरबार उन्होने देखे थे। उस समय प्राय छोटे-छोटे राजाओ के बीच आपस मे युद्ध हुआ करते थे। परणर ने कई युद्ध अपनी आखो से देखे थे, जिनका वर्णन उन्होने अपनी रचनाओ मे किया है। परणर की रचनाओ मे युद्ध तथा युद्ध के बाद युद्ध-क्षेत्र के दृश्यो का रोमाचक वर्णन मिलता है। उनकी कविताओ मे उस समय की युद्ध-प्रणाली, शस्त्रो और वाहनो आदि का परिचय मिलता है।

परणर ने अपने समय के अनेक राजाओ की ख्याति गाई है और उनके वीरोचित कार्यों का वर्णन किया है। उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण और अलकारिक है तथा वर्णन अत्यत सजीव है।

परणर के समय मे सेगुट्टुवन चेर राज्य का एक बडा प्रतापशाली राजा था। उसके पास स्थल-सेना और जल-सेना दोनो थी। देश-विदेश के अनेक केद्रो के साथ उसका व्यापारिक सबध था। परणर ने उसकी प्रशसा मे अनेक पद्य गाये और पुरस्कार पाया। राजा ने कवि से प्रसन्न होकर उन्हे आठ तालुको की आय दान मे दे दी। इतना ही नही, उनकी विद्वता से प्रभावित होकर अपने पुत्र की शिक्षा का भार भी उनको सौप दिया। परणर ने अनेक दूसरे राजाओ की प्रशसा मे भी पद गाये है।

४ अव्वैयार

प्राचीन तमिळ साहित्य की अभिवृद्धि मे पुरुषो के साथ-साथ अनेक कवयित्रियो ने भी हाथ बटाया था। स्त्री कवियो मे अव्वैयार का नाम सबसे प्रथम आता है। यह अत्यत प्रतिभाशाली और तीक्ष्ण-बुद्धि महिला थी। इनका समय भी ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी माना जाता है। शायद यह भी कपिलर, परणर आदि कवियो की समकालीन थी और तमिळ सघम की एक प्रमुख सदस्या थी। इनकी रचनाए प्राचीन तमिळ सग्रहो मे स्थान पा चुकी है। कहा जाता है कि इन्होने आजीवन क्वारी रहकर साहित्य की सेवा मे ही अपना सारा समय बिताया।

अव्वैयार का अधिकाश समय अधिकमान नेडुमान अजि के दरबार मे बीता। अजि सेलम जिले के तकडूर (वर्तमान धर्मपुरी) इलाके का राजा था। वह बडा वीर और योद्धा था। उसने पाडिय, चेर, चोळ आदि सात राजाओ की

सम्मिलित सेना को युद्ध मे परास्त किया था। वह अव्वैयार का बडा आदर करता था। अव्वैयार ने अजि की प्रशसा मे अनेक पद्य लिखे है। राजा ने कवयित्री की रचनाओ से प्रसन्न होकर उन्हे आवले के फल भेट किये थे। आवला फलो मे सबसे अधिक स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है। उस जमाने मे इस फल का दान विशेष आदर का चिह्न माना जाता था। अव्वैयार राजा द्वारा इस तरह सम्मानित होकर बहुत प्रसन्न हुई और उन्होने राजा की तारीफ मे और भी कई पद्य बनाये। राजा उनकी तीक्ष्ण बुद्धि से इतना प्रभावित था कि एक बार उसने अव्वैयार को अपनी राजदूत बनाकर किसी मुख्य कार्य के लिए काची के महाराज के पास भेजा था।

सेरमान के साथ युद्ध मे अजि मारा गया। अपने अभिभावक राजा की मृत्यु से अव्वैयार को बडा सदमा पहुचा। वह राज्य छोडकर चली गई और कई वर्षो तक इधर-उधर भटकती रही। अत मे फिर तकडूर वापस आई। इस समय यहा अजि का पुत्र ऍलिनी राजगद्दी पर था। वह भी अव्वैय्यार के श्रेष्ठ गुणो से परिचित था, अतएव उसने कवयित्री का बडा स्वागत किया। उसने अव्वैय्यार को शहद और नये वस्त्र दिये और उनके सम्मान मे एक भोज भी दिया।

अव्वयार ने अपने समय के चेर, चोळ और पाडिय राजाओ की प्रशसा मे भी पद गाये है। सभवत इन तीनो राज्यो के साथ उनका घनिष्ठ सबध था और उनकी विद्वता के कारण तीनो राजाओ के दरबारो मे उसका आदर-सम्मान होता था।

अव्वैयार बडी लोकप्रिय कवयित्री थी। उनके विचार बहुत ऊचे और नीतिपूर्ण होते थे। समस्त तमिळनाडु मे उनकी रचनाओ का आदर है। हिंदी के कबीर, रहीम आदि की रचनाओ की तरह उनके पद्यो मे लोक-शिक्षा के और नीति के उपदेश भरे है। आज भी तमिळनाडु मे बूढे से बच्चे तक सभी उनके नाम से परिचित है और उनके छोटे-छोटे पद्य याद रखते है और आवश्यकता पडने पर उद्धृत करते है।

५. इलंगो अडिगल

यह तमिळ के प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिलप्पधिकारम' के रचयिता थे। इनका जन्म राज-परिवार मे हुआ था। ये चेरनाडु के राजा चेरलआडन के द्वितीय पुत्र और प्रसिद्ध राजा चेरन शेगुट्टुवन के छोटे भाई थे। 'इलगो' शब्द का अर्थ होता

है छोटा राजकुमार। छोटे होने के कारण यह इलगो कहे जाते थे। सन्यास ग्रहण करने के पश्चात इनका नाम इलगो अडिगल हुआ। अडिगल का अर्थ है सन्यासी।

इनके सन्यास-ग्रहण करने के सबध मे एक बडी रोचक कथा है। जब यह छोटे थे, तब इनके पिता के दरबार मे एक ज्योतिषी आया। उसने भविष्यवाणी की कि बहुत शीघ्र राजा का देहात हो जायगा और उनका छोटा पुत्र इलगो राज्य का अधिकारी बनेगा। बडे भाई के रहते छोटे भाई के राजा बनने की बात सुनकर इलगो को बडा क्षोभ हुआ। उन्होने उस भविष्यवाणी को विफल करने का निश्चय करके उसी समय सन्यास ले लिया। सन्यासी बनकर वह नगर के बाहर एक मठ मे रहने लगे। इसके बाद उन्होने देश-देशातरो का भ्रमण किया और अनेक विद्याओ और कलाओ का अध्ययन किया।

इलगो किस धर्म के माननेवाले थे, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। उनके समय मे तमिळनाडु मे जैन और बौद्ध दोनो धर्मो का खूब प्रचार था। उन्होने अपने महाकाव्य मे जैन धर्म के सिद्धातो और सस्थाओ का बहुत विस्तृत वर्णन किया है, जिससे अनुमान होता है कि यह जैन धर्म को माननेवाले थे। अडिगल नाम भी प्राय जैन साधुओ के लिए प्रयुक्त होता था, यद्यपि आजकल इस शब्द का प्रयोग प्राय सभी स्वामियो (सन्यासियो) के लिए होने लगा है। कुछ विद्वानो की राय है कि यह शैव मतावलबी थे। जो हो, इतना अवश्य है कि उन्होने राजगद्दी को तिलाजलि देकर सन्यास ग्रहण किया और अपना सारा जीवन साहित्य सेवा मे लगाया।

इलगो के समय के सबध मे विद्वानो मे मतभेद है, परतु उनकी रचना तथा अन्य सामग्रियो के आधार पर उनका समय ईसा की पहली शताब्दी निर्धारित किया गया है। 'महावश' नामक ग्रथ से ज्ञात होता है कि सिलोन के राजा गज-बाहु की शेगुट्टुवन से मित्रता थी और जिस समय शेगुट्टुवन ने कण्णकि देवी के मदिर की स्थापना की थी, उस समय गजबाहु भी वहा उपस्थित था। गजबाहु का समय ईसा की दूसरी शताब्दी माना जाता है। ऊपर लिखा गया है कि इलगो शेगुट्टुवन के छोटे भाई थे। इससे यह सिद्ध होता है कि इलगो अडिगल का समय ईसा की दूसरी शताब्दी था। यह तीसरे सघम काल मे मौजूद थे, पर इनकी गणना सघम के कवियो मे नही होती। शायद सघम से इनका कोई सबध नही था।

एक बार इनकी मुलाकात शीत्तलैच्चात्तनार से हुई। यह भी एक बडे प्रसिद्ध

कवि थे और इन्होने 'मणिमेखलै' नामक महाकाव्य लिखा था। उनका काव्य सुनकर इलगो बहुत प्रभावित हुए। उसे सुनकर इनके दिल मे भी कोई महाकाव्य लिखने की इच्छा उत्पन्न हुई। च्चात्तनार ने उन्हे कोवलन और कण्णकी की कहानी लिखने की सलाह दी। उनका प्रोत्साहन पाकर कवि ने उसी कहानी के आधार पर 'शिलप्पधिकारम' नामक महाकाव्य लिखा। यह महाकाव्य तमिळ भाषा का एक अनूठा ग थ है। इसकी कहानी अत्यत रोचक और ऐतिहासिक है। इस महाकाव्य की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे उस समय की सामाजिक अवस्था का अत्यत मनोरजक चित्र मिलता है।

६. शीत्तलैच्चात्तनार

शीत्तलैच्चात्तनार दूसरे कवि है जिन्होने तमिळ मे महाकाव्य लिखा है। इनका महाकाव्य 'मणिमेखलै' है और इसमे कोवलन की कन्या मणिमेखलै की कथा है। च्चात्तनार तीसरे सघम के कवि थे और इनका समय भी ईसा की दूसरी शताब्दी माना जाता है। यह प्रकाड विद्वान और कवि थे। सघम के कवियो मे इनका प्रमुख स्थान था। यह मदुरा के निवासी थे। 'मणिमेखलै' के अतिरिक्त भी इन्होने कई रचनाए की है। ये रचनाए अष्टकाव्यो मे सगृहीत है। 'शिलप्पधिकारम' के कवि इलगो इनका बडा आदर करते थे और इन्हीके प्रोत्साहन से उन्होने 'शिलप्पधिकारम' काव्य लिखा था। रचना की सरलता, भावो की ऊचाई, भाषा मे प्रवाह और कल्पना की प्रचुरता च्चात्तनार की कविता की विशेषताए है।

'मणिमेखलै' मे भी उस समय की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्था का वर्णन प्रचुर मात्रा मे मिलता है। उसमे बौद्ध धर्म और उसके सिद्धातो की अच्छी विवेचना और प्रशसा की गई है। इससे प्रगट होता है कि च्चात्तनार बौद्ध मतावलबी थे। उस समय चेर राजाओ की राजधानी करुवूर थी। वहा का राजा शेगुट्टुवन बडा विद्या-प्रेमी और इलगो अडिगल का बडा भाई था। च्चात्तनार ने कुछ समय उसके दरबार मे विताया। उसी समय उनकी मुलाकात इलगो अडिगल से हुई। च्चात्तनार की सलाह से ही शेगुट्टुवन ने मदिर बनवाकर उसमे कण्णकी देवी की प्रतिष्ठा की।

: ८ :

शैव मत और नायन्मार

शैव मत दक्षिण का सबसे प्राचीन धर्म है। वेदो मे रुद्र का नाम पाया जाता है, पर शिव की कल्पना द्रविड सभ्यता की ही देन प्रतीत होती है। डा० ग्रियर्सन ने लिखा है कि 'शिव' तमिळ शब्द है, जो अति प्राचीन काल मे ही आर्य भाषा मे प्रवेश कर चुका था। आगे चलकर त्रिमूर्तियो की कल्पना हुई, जिनमे शिव को भी एक स्थान दिया गया और उन्हे सहार और मृत्यु का देवता माना गया। प्रारभ मे शायद शिव और रुद्र अलग-अलग थे, पर बाद को दोनो एक हो गये। उत्तर के रुद्र की कल्पना से दक्षिण के शैवो के शिव की कल्पना भिन्न है। शैव मत मे शिव सर्वोपरि देवता माने गये है और सृजन, पालन और सहार के साथ-साथ वह जगत के कल्याण के कारण एव मोक्ष के दाता भी है। शिव की पूजा मुख्यत लिंग के रूप मे होती है, जो मूलत द्रविड पद्धति है। तमिळ देश मे हजारो शिव-क्षेत्र है, जिनमे भिन्न-भिन्न नामो से शिव की पूजा होती है।

तमिळ देश मे शिवोपासको की सख्या सबसे अधिक है। अब्राह्मणो मे प्राय ९० प्रतिशत लोग शिव के उपासक है, पर ब्राह्मणो मे भी शिव के उपासक कम नही है। यहा के ब्राह्मणो की अधिकाश आबादी स्मार्तो की है, जो मुख्यत श्री शकराचार्य के अनुयायी और शिव भक्त है। आध्र और कर्णाटक मे भी शिव भक्तो की अधिकता है। वहा के कुछ शिव भक्त अपने को 'वीर शैव' या लिंगायत' कहते है, जो कट्टर शिव भक्त होते है। उनकी दृष्टि मे शिव के अतिरिक्त अन्य कोई देवता नही। उनकी कट्टरता यहा तक बढी हुई है कि विष्णु या अन्य देवताओ के मदिरो के सामने से गुजरना भी वे पाप समझते है। ये लोग सदा सोने या चादी की डिबिया मे शिव लिग रखकर उसे अपने गले मे धारण किये रहते है। आध्र देश मे भी शिव के तीन प्रसिद्ध क्षेत्र है—द्राक्षाराम, काळहस्ती और श्रीशैलम। तीनो स्थानो मे शिव लिगो की स्थापना हुई है, जो 'त्रिलिग' के नाम से विख्यात है। कहा जाता है कि इसी 'त्रिलिंग' शब्द से 'तेलुगु' और 'तेलगाना' नामो की उत्पत्ति हुई है।

वैष्णव लोग अपना सप्रदाय सूचित करने के लिए जिस तरह रामानदी तिलक लगाते है, उसी तरह शिव के उपासक अपने ललाट पर भस्म लगाते है। साध्वी स्त्रिया भी तिलक या भस्म लगाती है।

शैव मतावलवियो का विश्वास है कि ईसा की पहली शताब्दी मे भी शैव धर्म वर्तमान था। तोळकाप्पियर ने अपने ग्रथ मे ईश्वर के लिए 'कडउळ शब्द का प्रयोग किया है, जो शिव का पर्याय माना जाता है। पर दक्षिण मे जैनो और बौद्धो के आने से शैव मत दव गया था और छठी शताब्दी तक दवा रहा। ईसा की छठी-सातवी शताब्दी मे इस मत मे अनेक सत पैदा हुए, जिन्होने देश मे घूम-घूमकर जैनो और बौद्धो को शास्त्रार्थो मे परास्त किया और शैव धर्म को पुन प्रतिष्ठापित किया। सन २०० और ६०० के बीच इस धर्म मे ६३ सत पैदा हुए, जिनमे अप्पर, सुदर मूर्ति, माणिक्कवाचकर और तिरुज्ञानसवधर मुख्य थे। ये चारो शिवाचार्य के नाम से प्रख्यात है। सत कण्णप्पर का समय ईसा की दूसरी शताब्दी, सवधर, अप्पर आदि कुछ सतो का समय सातवी सदी तथा सुदरमूर्ति और मेरनाम पेरुमाळ का समय ईसा की नवी शताब्दी माना जाता है। इन्होने शिव के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे जाकर उनकी महिमा गाई और अनेक स्थलो मे शिव-मदिरो की स्थापना की। अप्पर, सुदर मूर्ति और तिरुज्ञानसवधर की रचनाओ का सग्रह 'तेवारम' नाम से और तिरुज्ञानसवधर की रचनाए 'तिरुवाचकम' के नाम से प्रसिद्ध है। ये ग्रथ शैव मतावलवियो द्वारा अत्यत पवित्र और वेदो के समक्ष माने जाते है। इनका अध्ययन, कीर्तन और पठन-पाठन पुण्य कार्य माना जाता है। शिव मदिरो और मठो मे इन्हे सिखाने के लिए विद्यालय चलते है और उत्सवो के समय मदिरो मे ये पद वडे लय और भक्ति के साथ गाये जाते है। इन पदो के गानेवालो को 'ओदुवार' कहते है।

नीचे हम चार प्रमुख शिव भक्तो का सक्षिप्त परिचय देते है

१. अप्पर स्वामिगल

अप्पर स्वामी तिरुज्ञानसवधर के समकालीन सत थे। यह जाति के वेळ्ळाळ (अब्राह्मण) थे और तिरुवामूर (दक्षिण आर्काट) मे पैदा हुए थे। इनकी तिलकवती नाम की एक वहन थी, जो कट्टर शिव भक्ता थी। अप्पर ने जैन मत

स्वीकार कर लिया था, परतु अपनी, बहन के अनुरोध से फिर से शैव धर्म मे आ गये। सभवत यह सबसे पहले जैन थे जिन्होने शैव धर्म स्वीकार किया था। अप्पर के जैन धर्म-परित्याग करने से जैन साधु बहुत नाराज हुए। उन्होने उस समय के जैन राजा से जाकर शिकायत की। राजा ने अप्पर को बुलाकर अनेक तरह के शारीरिक और मानसिक कष्ट दिये। राजा ने अप्पर को जहर पिलाया, आग मे डाला, पागल हाथी के सामने बिठाया, समुद्र मे फिकवाया, पर शिवजी की कृपा से अप्पर का बाल भी बाका नही हुआ। यह देखकर राजा को शैव धर्म पर विश्वास हो गया और उसने स्वय भी जैन मत को त्यागकर शैव धर्म स्वीकार कर लिया। इसके बाद अप्पर सारे तमिळनाडु मे घूम-घूमकर शैव धर्म का प्रचार करते रहे। कहा जाता है कि अप्पर के प्रभाव मे आकर उस समय का पल्लव राजा महेद्र वर्मा भी जैन धर्म को छोडकर शैव मतावलबी बन गया था।

अप्पर मे अद्भुत कार्य करने की अपार शक्ति थी। कहा जाता है कि एक बार उन्होने एक ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित कर दिया था। उन्होने शिवजी की प्रशसा मे अनेक पद गाये है, जो 'तेवारम' मे सगृहीत है। अप्पर का समय छठी शताब्दी का अतिम भाग माना जाता है।

अप्पर का दूसरा नाम था तिरुनावुक्करशु, जिसका अर्थ पवित्र वाणी का राजा या वाक्शक्ति-प्रवर होता है। वास्तव मे उनकी वाणी मे अपूर्व बल था। इनकी रचनाओ मे करुण रस की प्रधानता है।

२. माणिक्कवाचकर

शिव भक्तो मे माणिक्कवाचकर का नाम सर्वप्रथम आता है। यह शिवजी के अनन्य उपासक थे। इनका चरित्र अत्यत निर्मल और हृदय प्रेम से सराबोर था। इन्होने शिवजी की प्रार्थना मे सुदर-सुदर और भक्तिपूर्ण पदो की रचना की है। इनकी भाषा बडी ओजस्विनी, भावपूर्ण तथा मधुर है। इनके पद शिव भक्तो की अमूल्य निधि है और अक्सर मदिरो मे भक्तो द्वारा गाये जाते है। किसीने कहा है कि आत्मा की प्यास बुझाने के लिए माणिक्कवाचकर के शब्द सबसे मीठे मधु के समान है। सूफी कवियो की तरह इनकी रचनाओ मे शृगार प्रचुर मात्रा मे मिलता है। पर उनका लक्ष्य लौकिक प्रेम न होकर भगवान के प्रति भक्ति है।

वह अपने को शिवजी का एकात प्रेमी और शिवजी को अपना प्रियतम मानकर उनकी उपासना करते थे और उनके वियोग मे तडपा करते थे। तमिळ के रहस्यवादी कवियो मे इनका प्रमुख स्थान है।

इनके सबध मे एक सुदर कहानी मिलती है। इनका जन्म मदुरा के पास तिरुवादऊर नामक स्थान मे चौथी शताब्दी मे हुआ था। मदुरा के तत्कालीन राजा अरिमर्दन पाडिय इनका बडा आदर करते थे और उन्होने इन्हे अपना मत्री नियुक्त किया था। मत्री का कार्य करते हुए भी वह शिव की आराधना और पूजा मे मस्त रहते थे।

एक बार राजा ने सुना कि अरब के कुछ व्यापारी घोडे बेचने के लिए लाये है। राजा ने इनको बहुत सा धन देकर घोडे खरीदने के लिए भेजा। रास्ते म माणिक्कवाचकर को एक शिव-भक्त मिले। माणिक्कवाचकर उनके प्रेम मे फसकर उन्हीके पास रहने लग गये और राजा का दिया हुआ सारा धन साधु-सतो को खिलाने और मदिर बनवाने मे खर्च कर दिया। जब राजा को इस बात की सूचना मिली, तब वह बहुत नाराज हुए और माणिक्कवाचकर को गिरफ्तार करके जेल मे डाल दिया। इस पर माणिक्कवाचकर ने भगवान शिव की प्रार्थना की। शिवजी ने अपने भक्त को जेल से मुक्त करने के लिए पास के जगल से बहुत से गीदडो को घोडा बनाकर राजा के अस्तबल मे भिजवा दिया। सबेरे उठकर राजा ने जब अपना अस्तबल सुदर घोडो से भरा हुआ देखा, तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और तुरत माणिक्कवाचकर को कैद से मुक्त कर दिया। पर उसी रात को सब घोडे फिर से गीदड बनकर जगल मे भाग गये। इस पर राजा और क्रोधित हुआ और माणिक्कवाचकर को अनेक तरह के कष्ट देने लगा। पर शीघ्र ही उसको उनकी शिव-भक्ति पर विश्वास हो आया और उनको फिर से मत्रि-पद पर नियुक्त कर दिया। पर अब माणिक्कवाचकर का मन नौकरी से विरक्त हो गया था। वह तीर्थाटन के लिए शिव-क्षेत्रो मे भ्रमण करने लगे। चिदबरम मे उन्होने बौद्ध विद्वानो को शास्त्रार्थ मे परास्त किया।

'तिरुवाचकम' और 'तिरुक्कोवै' इनकी प्रधान रचनाए है। 'तिरुवाचकम' मे इन्होने अपने जीवन की कथा लिखी है, जिसमे उन्होने अपनी साधना और उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओ का विशद वर्णन किया ह। 'तिरुक्कोवै' मे एक प्रेमिका के वियोग का वर्णन किया है। उसमे शिवजी प्रियतम परमात्मा और माणिक्कवाचकर

वियोगी प्रेमिका के रूप मे चित्रित किये गये है। इनकी रचनाओ मे प्रेम और भक्ति की पराकाष्ठा पाई जाती है।

'तिरुक्कोवै' की कथा इस प्रकार है—एक प्रेमी जब जगलो और पहाडो मे भटक रहा था, अचानक उसकी भेट एक सुदर कन्या से होती है। प्रेमी उस कन्या के प्रेम मे फस जाता है और उसके पास जाकर उससे प्रेम की भिक्षा मागता है। दोनो एक-दूसरे के साथ प्रेम के बधन मे दृढ रूप से बध जाते है। फिर धूमधाम के साथ उनका विवाह होता है और दोनो मिलकर अपनी गृहस्थी चलाते है। कुछ दिनो के बाद प्रेमी कुछ कार्यवश विदेश चला जाता है और दोनो प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे से कुछ काल के लिए विलग हो जाते है। वियोग की अवधि मे प्रेमी और प्रेमिका दोनो एक-दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल रहते है और चाहते रहते है कि कब हम दोनो मिलकर फिर एक हो जाय। इधर अपने प्रियतम के वियोग मे प्रेमिका की दशा अत्यत करुणापूर्ण हो जाती है। वह अकेली अपने घर मे सदा अपने प्रियतम की चिता मे ही ग्रस्त रहती है और उसकी याद मे आठ-आठ आसू बहाती है। इस तरह वियोग से पीडित प्रेमिका का करुण क्रदन ही इस काव्य का मुख्य विषय है।

यद्यपि इसकी कहानी साधारण और शृगारिक मालूम होती है, परतु वास्तव मे इसके द्वारा कवि ने परमात्मा से आत्मा का वियोग होने पर आत्मा किस तरह परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल रहती है, इसकी कथा चित्रित की है, विद्वानो का मत है कि कवि माणिक्कवाचकर ने स्वय अपने को अपने प्रियतम भगवान से बिछुडा हुआ प्रेमी मानकर अपने हृदय के उद्गार प्रकट किये है। कथा है कि कवि ने चिदबरम जाकर नटराज के मदिर के सामने खडे होकर इन पद्यो को गाया था और नटराज उन्हे सुनकर इतने मुग्ध हो गये थे कि उन्होने स्वय मदिर के बाहर आकर कवि का हाथ पकडकर उनकी प्रशसा की थी।

माणिक्कवाचकर तमिळ के सबसे बडे भक्त कवि थे। उन्होने अपनी कविता मे प्रेम और भावना की अपूर्व धारा बहाई है। काव्य की दृष्टि से इनकी दोनो रचनाए—'तिरुक्कोवै' और तिरुवाचकम'—अत्यत ऊची श्रेणी की है।

डा० पोप नामक अग्रेज विद्वान ने 'तिरुवाचकम' का अनुवाद अग्रेजी मे किया है।

३. सुंदरमूर्ति स्वामिगल

सुदरमूर्ति स्वामिगल जाति के ब्राह्मण थे और दक्षिण आर्काट जिले के तिरुनावलूर ग्राम मे पैदा हुए थे। इनके सबध मे भी एक विचित्र कथा प्रचलित है कि जब यह छोटे थे, उसी समय इनकी प्रतिभा को देखकर वहा का एक जागीरदार इनको अपने यहा रखकर अपने पुत्र के समान पालने लगा। जब यह बडे हुए, तब इनके पिता ने इनका विवाह-सस्कार करना चाहा। परतु, विवाह के दिन एक बूढे आदमी ने वहा आकर कहा कि यह लडका मेरा दास है, इसके दादा ने इसको मेरे पास बेच दिया था, इसलिए तुम लोगो का इस पर कोई अधिकार नही है, इसको हम अपने साथ ले जायगे। माता-पिता ने इसका विरोध किया। पर बूढा टस-से-मस न हुआ। अत मे यह मामला स्थानीय विद्वानो की मडली मे पेश हुआ। उसने यह निर्णय दिया कि दस्तावेज़ के मुताबिक सुदर पर बूढे का अधिकार है। आखिर बूढा सुदर को अपने साथ लेकर चला और एक मदिर मे पहुचकर अतर्धान हो गया। लोगो ने जान लिया कि वह बूढा शिवजी के सिवाय दूसरा कोई न था। उस दिन से सुदर शिवजी के बडे भक्त बन गये और भिन्न-भिन्न शिवस्थलो मे जाकर शिवजी की प्रार्थना के गीत गाये।

मालूम होता है कि सुदर बडे विषयी जीव थे। उन्होने कई स्त्रियो से विवाह किया था और विषयाधिक्य के कारण अत मे अधे हो गये थे। इनका समय ईसा की नवी शताब्दी का प्रारभ माना जाता है। इनके पद भी 'तेवाराम' मे सग्रहीत है।

४. तिरुज्ञानसंबंधर

दक्षिण के शिव भक्तो मे तिरुज्ञानसबधर का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। तमिळ देश मे जितना आदर इस सत को प्राप्त है, उतना अन्य किसीको नही। शैव मतावलबी सबधर को वेदव्यास के समान और उनकी रचनाओ को वेदो के समान आदरणीय और पवित्र मानते है। इनके समस्त पद 'तेवारम' मे सगृहीत है और शिव-भक्तो को अत्यत प्रिय है।

सबधर की ख्याति का एक कारण यह भी मालूम होता है कि उन्होने जैन और बौद्ध मतो के बहुत से विद्वानो को शास्त्रार्थ मे परास्त किया और इन धर्मो

की जडे हिला दी। यो तो प्रारभिक युग के प्राय सभी शिवाचार्यो को जैनो और बौद्धो का सामना करना पडा था, किंतु इन दोनो धर्मावलवियो के गढो को गिराने और देश मे शिव धर्म को स्थापित करने का सबसे अधिक श्रेय सवधर को ही प्राप्त है।

तजाऊर जिले मे शियाळि नाम का एक प्रसिद्ध शिव-क्षेत्र है। वहा एक प्रसिद्ध शिव भक्त थे। उन्होने शिवजी की प्रार्थना की कि हे भगवान, हमे एक ऐसा पुत्र दो जो विधर्मियो का नाश करके शिव-मत का प्रचार करे। शिवजी की कृपा से उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सवधर रखा गया। वह बचपन से ही शिव का भक्त बना।

बडे होने पर सवधर शैव मत के कट्टर समर्थक और प्रचारक बने। उन्होने समस्त शिव क्षेत्रो की यात्रा की। जगह-जगह पर बौद्धो और जैनो से शास्त्रार्थ किया और उनको परास्त किया। उस समय मदुरा के पाडिय राजा शैव-धर्म को छोडकर जैन हो गये थे, पर उनकी स्त्री और मत्री ने जैन धर्म स्वीकार नही किया था। उन दोनो ने सवधर को वहा आने के लिए निमत्रण दिया। उनका निमत्रण पाकर वह मदुरा पहुचे। राजा के सामने जैनो के साथ शास्त्रार्थ हुआ, जिसमे जैन विद्वान परास्त किये गये। राजा ने फिर से शैव मत ग्रहण कर लिया। राजा की आज्ञा मे और सवधर की सलाह से नगर के आठ हजार जैन, जो अपना धम छोडना नही चाहते थे, सूली पर चढा दिये गये।

लोगो का यह भी विश्वास है कि मदुरा का राजा कूबड था। सवधर ने अपनी शक्ति से उसे चगा कर दिया था और इसी घटना से प्रभावित होकर उसने धर्म-परिवर्तन कर लिया और शैव मत मे आ गया। राजा की स्त्री और मत्री भी ६३ नायन्मारो (शिव सतो) मे गिने जाते है।

सवधर ने काचीपुरम, तिरुवण्णामलै, पलनी, तिरुवीलिमळळै आदि मदिरो के देवताओ पर असख्य पद लिखे है। इनका समय सन ६५० के आस-पास माना जाता है

: ६ :

तमिळ के अन्य तीन संत कवि

पिछले अध्याय मे जिन चार सत कवियो का उल्लेख किया गया है, उनके अति-रिक्त भी तमिळ देश मे अनेक प्रतिभाशाली सत कवि हुए है, जिन्होने अपनी भक्तिपूर्ण रचनाओ से तमिळ साहित्य को समृद्धिशाली बनाया है। इनकी भक्ति-पूर्ण पदावली भक्तो की अपूर्व निधि है। यह इन सतो की ही उपासना और भक्ति का फल है कि आज भी तमिळ देश मे शैव मत और शैव सिद्धात हिमाचल पर्वत की तरह स्थिर है। इनकी रचनाओ ने भक्तो के हृदयो मे भक्ति का दीप कभी बुझने नही दिया। इन कवियो मे तिरुमूलर, तायुमानवर और रामलिगस्वामी सबसे अग्रणी है। शिव और शिवयोग के अनुयायियो मे इन तीनो का बहुत ऊचा स्थान है। इनमे से तिरुमूलर तो ईसा की नवी शताब्दी मे, सत सुदरमूर्ति के पूर्व ही पैदा हुए थे, बाकी दो को हम आधुनिक युग के सत कह सकते है। श्री तायुमानवर अठारहवी शती के मध्य मे वर्तमान थे और रामलिगस्वामी का जन्म तो और पीछे चलकर सन १८२३ मे हुआ था।

१. तिरुमूलर

तिरुमूलर के जन्म आदि के सबध मे विशेष विवरण प्राप्त नही। इनके सबध मे एक कथा प्रचलित है कि यह पहले कैलाश पर्वत पर रहते थे, जो शिव का निवास माना जाता है और वही से दक्षिण मे आये। कैलाश पर्वत पर अनेक शिव-भक्त और नदी के उपासक सत महापुरुष रहते है। उन्हीमे से एक सत की इच्छा हुई कि चलो दक्षिण चलकर पोदियमलै की पहाडी पर रहनेवाले श्री अगस्त्य से मिला जाय। यह सोचकर तिरुमूलर कैलाश छोडकर दक्षिण की ओर चल पडे और मार्ग मे अनेक तीर्थो और क्षेत्रो का दर्शन करते हुए कुवकोणम के पास तिरु-वाडुतुरै स्थान मे पहुचे। वहा निवास करते समय एक दिन उन्होने पास के जगल की ओर से कई गायो का चिल्लाना सुना। निकट जाकर देखा कि गायो का चर-

वाहा मूला भूमि पर मृत पडा है और उसकी गाए और बछडे उसे चारो तरफ से घेरकर रो-चिल्ला रहे हैं। यह दृश्य देखकर सत के हृदय मे दया उत्पन्न हो गई। उन्होने अपना शरीर छोडकर मूला के मृत शरीर मे प्रवेश किया और मूला जी उठा। उसे जीवित पाकर गाए बहुत प्रसन्न हुई और चरने चली गई। सध्या के समय गौओ का झुड घर पहुचा और गोशालाओ मे बाध दिया गया। परतु मूला घर के अदर न जाकर दरवाजे पर ही खडा रहा। इतने मे उसकी स्त्री बाहर आई और मूला को बुलाने लगी। परतु उसने यह कहकर अदर जाने से इन्कार कर दिया कि हमारा-तुम्हारा कोई सबध नही है। स्त्री रात भर चिता मे पडी बिलखती रही। दूसरे दिन सवेरे गाव के सभी लोगो को इकट्ठा किया। लोगो ने आकर देखा कि मूला गाव के मठ मे समाधि लगाकर बैठा हुआ है। कहा जाता है कि मूला की यह समाधि ३००० वर्ष तक लगी रही और इसी अवधि मे उन्होने 'तिरुमत्रम' नामक ग्रथ की रचना की।

तिरुमूलर एक रहस्यवादी सत कवि थे और इनकी रचना का तमिळ साहित्य मे बहुत ऊचा स्थान है। इनकी रचनाओ मे सासारिक और ईश्वरीय ज्ञान का अपूर्व मिश्रण है। इन्होने ३००० पद्य भिन्न-भिन्न विषयो पर रचे, जिनमे अनेक पद्य ससार के अनेक छोटे-बडे विषयो के सबध मे भी रचे गये है। इनकी कविता अत्यत सुदर और भावपूर्ण है। कबीर की तरह ही इनकी कुछ रचनाओ का भाव समझना कठिन है। तिरुमूलर का स्थान तमिळ के रहस्यवादी कवियो मे सर्वश्रेष्ठ है। इनकी रचनाए हिंदी के रहस्यवादी कवि कबीर की रचनाओ से सादृश्य रखती है। कबीर ने जिस तरह लाक्षणिक ढग मे अपने विचार प्रकट किये थे, उसी तरह इस कवि ने भी अपने भाव व्यक्त करने मे लक्षणात्मक उक्तियो का प्रयोग किया है। एक जगह पर कवि लिखते है—"ब्राह्मण के घर मे पाच गाए है। पाचो भिन्न-भिन्न दिशा मे चली जाती है। यदि कोई होशियार ग्वाला उन्हे अपने वश म रखे, तो वे बहुत दूध देगी।" भाव यह है कि मनुष्य के पाच इद्रिया है, जो व्यक्ति मोक्ष पाना चाहता है, उसे इन पाचो पर काबू रखना चाहिए। इसी तरह की भाषा मे कवि ने अनेक सुदर उपदेश दिये है।

इनके जन्म आदि के सबध मे कोई बात ज्ञात नही। इनकी गणना ६३ शैव सतो मे होती है और इनका जन्म काल ईसा की ६ वी शताब्दी माना जाता है।

२. तायुमानवर

तमिळ के रहस्यवादी और संत कवियो मे तायुमानवर का स्थान दूसरा है। तायुमानवर की मृत्यु हुए बहुत दिन नही हुए। उनका समय १८ वी शताब्दी का मध्य माना जाता है। उनका जीवन चरित्र अत्यत रोचक और महत्वपूर्ण है। तजाऊर जिले के वेदारण्यम मे केडिलियप्प पिल्लै नामक एक शिव भक्त थे, जो तिरुच्चिरापल्ली के राजा विजय रघुनाथ चोक्कलिगम नायक की सेवा मे रहते थे। उनके एक ही लडका था, जिसे उन्होने अपने वडे भाई को गोद दे दिया था। इसलिए वे दोनो दपत्ति दूसरा पुत्र पाने की इच्छा से प्रति दिन तायुमानवर (भगवान शिव) के मदिर मे जाकर प्रार्थना किया करते थे। भगवान की कृपा से उनके एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम उन्होने भगवान के नाम पर तायुमानवर रखा। यह बालक बडा होने पर तमिळ का महापडित हुआ। जब तायुमानवर के पिता की मृत्यु हो गई, तब राजा ने उस पद पर पुत्र को नियुक्त किया। लेकिन उनका मन राज-काज मे नही लगता था। वह सदा भगवान शिव की पूजा और याद मे निरत रहते थे। एक दिन जब वह मदिर मे गये, तो वहा देखा कि कोई मुनि ध्यान मग्न होकर बैठे है। जब उनका ध्यान टूटा तब उन्होने मुनि का परिचय प्राप्त किया। मुनि का नाम मौनगुरुस्वामी था। तायुमानवर ने मुनि से आत्मज्ञान का उपदेश देने के लिए प्रार्थना की। स्वामीजी ने इन्हे अपना शिष्य बनाने का वचन तो दिया, परतु यह आदेश दिया कि पहले कुछ दिन तक तुम राज्य की सेवा और गृहस्थ का जीवन व्यतीत करो। मै जब लौटकर आऊगा तब तुम्हे उपदेश दूगा। यह कहकर स्वामीजी वहा से चले गये और तायुमानवर बडी अनिच्छा से राज्य की सेवा करने लगे। इसके कुछ दिन बाद नायक राजा का देहात हो गया। राजा के कोई सतान नही थी। इसलिए उसकी स्त्री मीनाक्षी ने तायुमानवर से विवाह करने की प्रार्थना की। पहले तो तायुमानवर राजी नही हुए और तिरुच्ची छोडकर रामेश्वरम चले गये। परन्तु जब उनके बडे भाई ने यह समाचार सुना, तब उन्होने उन्हे राजी करके मीनाक्षी के साथ उनका विवाह करा दिया। मीनाक्षी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम कनकसभापति रखा गया। उसके कुछ दिन बाद मौनगुरुस्वामी फिर तिरुच्चिरापल्ली पधारे। इस बार उन्होने तायुमानवर को सन्यास देकर अपना शिष्य बनाया।

तायुमानवरस्वामी एक रहस्यवादी कवि थे। वह शिव के परम भक्त थे और शिव को निर्गुण और निराकार मानकर उनकी उपासना करते थे। उनका विश्वास था कि यह जगत भगवान शिव से व्याप्त है और वह शिव रूप, गुण और आकार से रहित है। वह सत, चित और आनद का रूप है। यद्यपि वह शैव सिद्धात के अनुयायी थे, तो भी उनका दार्शनिक सिद्धात अद्वैतवाद था। उन्होने शिव के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो का भ्रमण किया और ईश्वर की प्रशसा मे अनेक सुदर पद्य रचे।

३. रामलिगस्वामी

आधुनिक युग के सत कवियो मे रामलिगम स्वामी का स्थान सबसे ऊचा है। इनका जन्म चिदबरम के पास मरुदूर ग्राम मे सन १८२३ मे हुआ था। इनके पिता का नाम रामय्या पिल्लै था। इनके जन्म के सबध मे भी एक अद्भुत कहानी प्रचलित है। एक दिन जब रामय्या पिल्लै कही बाहर गये थे, एक बूढा सन्यासी उनके घर आया। पति की अनुपस्थिति मे स्त्री ने सन्यासी का अच्छी तरह सत्कार किया। उसके सत्कार से प्रसन्न होकर सन्यासी ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हे एक अत्यत प्रतिभाशाली पुत्र पैदा होगा। ऐसा ही हुआ। कुछ समय के बाद पिल्लै के एक पुत्र हुआ, जो बचपन से ही अत्यत तीक्ष्ण बुद्धि और मेधावी था। उसने बिना किसी अध्यापक की सहायता के ही सभी शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया। वह शिव का परम भक्त हुआ और सोलह साल की अवस्था मे ही वह आत्मज्ञानी बनकर दूसरो को तत्वज्ञान का उपदेश देने लगा। अब तक इनके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। वैराग्य की ओर इनकी प्रवृत्ति देखकर इनके बडे भाई ने इनका विवाह कर दिया। परतु विवाहित होने पर भी भगवान शिव मे उनकी आस्था कम नही हुई। वडलूर नामक स्थान मे इन्होने एक मदिर बनवाया और उसीके साथ एक धर्मशाला और पाठशाला भी बनवाई।

श्री रामलिंगस्वामी की मृत्यु भी एक अजीब घटना है। एक दिन वह अपनी धर्मशाला के एक कमरे मे ध्यान-मग्न होकर बैठ गये और कमरे का दरवाजा बद कर लिया। अपने शिष्यो से कहा कि वह जब तक स्वय बाहर न आये, तब तक कोई आदमी कमरे का दरवाजा न खोले। कुछ समय के बाद जब शिष्यो ने दरवाजा खोला, तो देखा कि स्वामीजी का कही पता नही है। वह अतर्धान हो गये थे।

रामलिग स्वामी ने भगवान शिव की प्रशसा मे अनेक मधुर पद्य रचे है। इनकी रचनाए छद शास्त्र के अनुसार भी अत्यत उच्च कोटि की है।

: १० :

वैष्णव मत और आळवार

अति प्राचीन काल से भारतवर्ष मे शैव और वैष्णव धर्मो की प्रधानता रही है। कहा जाता है कि जिस तरह दक्षिण मे शैव धर्म का उदय हुआ, उसी तरह उत्तर भारत मे वैष्णव धर्म का आविर्भाव हुआ और आर्य ब्राह्मणो के साथ वैष्णव धर्म भी दक्षिण मे आया। यो तो ईसा की दूसरी शताब्दी मे भी तमिळ कवि कपिलर ने अपनी रचनाओ मे 'तिरुमाल' के नाम से विष्णु का उल्लेख किया है, पर सन ५०० के बाद ही यहा विष्णु भक्ति की धारा स्पष्ट रूप से बहती हुई दिखाई पडती है। इसी धारा ने आगे चलकर वैष्णव सप्रदाय का रूप धारण किया।

ईसा की छठी और सातवी शताब्दियो मे दक्षिण मे बहुत बडा धार्मिक उथल-पुथल हुआ। उस समय दक्षिण मे जैन और बौद्ध धर्मो का प्राबल्य था। समस्त देश मे इन धर्मावलबियो के विहार और मदिर बने हुए थे। छठी-सातवी शताब्दियो मे अनेक शिव और विष्णु भक्त उत्पन्न हुए, जिन्होने मिलकर उक्त दोनो धर्मो का विरोध किया और शिव और विष्णु भक्ति का जबरदस्त प्रचार आरभ किया। उस समय देश की विचित्र अवस्था थी। धर्म परिवर्तन सुलभ हो गया था। एक ही घर मे पति बौद्ध था, तो स्त्री शैव या वैष्णव धर्म का अनुसरण करती थी, या पति वैष्णव होता था, तो स्त्री शिव की उपासना करती थी। प्रसिद्ध शिव भक्त तिरु-नावुक्करसु पहले जैन थे। उनकी बहन तिलकवती शैव थी। राजा सिहविष्णु वैष्णव था पर उसका लडका महेद्र वर्मन जैन था, जो बाद को कट्टर शैव हो गया।

दक्षिण मे वैष्णव धर्म का प्रचार वैष्णव समयाचार्यो ने आरभ किया, जिन्हे 'आळवार' कहते है। ये आळवार वैष्णव साधु और भक्त होते थे। आळवार शब्द का अर्थ है ज्ञानी। वैष्णवो का विश्वास है कि विष्णु भगवान के अस्त्र-शस्त्र, आभूषण तथा वाहनो ने लोक कल्याण के लिए इन आळवारो के रूप मे अवतार लिया था। ये विभिन्न समय पर दक्षिण के तोडमान, चोळ, चेर और पाडिय राज्यो मे उत्पन्न हुए। ये लोग भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे घूम-घूमकर भगवान विष्णु की प्रशसा मे पद

गाया करते थे। उनका उद्देश्य भगवान विष्णु तथा उनके अवतार राम और कृष्ण, जिन्हे शैव और वैष्णव दोनो अपना विरोधी मानते थे, की भक्ति का प्रचार करना तथा बौद्ध एव जैन धर्मों का विरोध करना होता था। इन आळवारो ने भिन्न-भिन्न स्थलो पर विष्णु के अनेक मदिर बनवाये। उन्होने धर्म को कर्मकाडियो के चगुल मे निकालकर उसे भक्ति-प्रधान बनाया और सर्वसाधारण के लिए उसका द्वार खोल दिया। उन्होने सर्वसाधारण के हृदय तक पहुचने के लिए अपने पद जनता की भाषा (तमिळ) मे गाये। इन आळवारो की रचनाए प्राचीन तमिळ साहित्य का एक प्रधान अग है।

श्रीरगम और तिरुपति (बालाजी) के प्रसिद्ध मदिर आळवारो द्वारा ही स्थापित किये गये थे। पौराणिक युग मे वैष्णव और शैव भक्तो के प्रभाव मे आकर पल्लव, चोळ और पाडिय राजाओ ने भी विष्णु और शिव के अनेक मदिर बनवाये।

आळवार १२ है। उनके नाम है—पोयगै आळवार, भूतत्ताळवार, पेयाळवार, तिरुमलिशै आळवार, नम्माळवार, मधुरकवि आळवार, कुलशेखर आळवार, पेरिय आळवार, तिरुपान आळवार, तिरुमगै आळवार, तोडरडिपोडि आळवार और आडाल।

वैष्णव आळवारो मे ब्राह्मण, अब्राह्मण, वानर (अछूत) आदि सभी जातियो के लोग थे। उन्होने भगवत भक्ति के सामने जाति-पाति का कोई भेद नही माना। वे "हरि को भजै सो हरि का होई" सिद्धात के माननेवाले थे। उन्होने अपनी रचनाओ के लिए सस्कृत का त्याग कर जनवाणी 'तमिळ' को अपनाया और अपनी भक्तिपूर्ण पदावली उसी भाषा मे प्रस्तुत की।

आळवारो की जीवनी के सबध मे ऐतिहासिक मसाला बहुत कम मिलता है। वैष्णव भक्तो द्वारा रचित आळवारो के चरित्र अनेक तरह की अलौकिक घटनाओ और कथाओ मे पूर्ण है। जिस तरह हिंदी मे 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' नामक ग्रथ है, उसी तरह दक्षिण के वैष्णव सतो की जीवनिया 'गुरु-परपरा' नामक ग्रथ मे सग्रहीत है। इस ग्रथ मे भक्तो की जीवनिया बहुत बढा-चढाकर लिखी गई है। इससे उनके आविर्भाव काल का भी पता ठीक से नही चलता।

'गुरु-परपरा' के अनुसार जब भगवान विष्णु ने देखा कि लोगो मे पाप और अनाचार बहुत बढ गये है, तो उन्होने पथहीन जनता को मार्ग दिखाने के लिए अपने

आयुधो को नर रूप धारण कर पृथ्वी पर जाने और जन-कल्याण का कार्य करने का आदेश दिया। उनकी आज्ञा पाकर उनके भिन्न-भिन्न आयुधो और वाहनो ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रो, भिन्न-भिन्न समयो एव भिन्न भिन्न जातियो मे अवतार लिया।

पोयगै आळवार भगवान विष्णु के शख के अवतार माने जाते है। उनका जन्म 'गुरु-परपरा' के अनुसार काचीपुरम मे द्वापर युग मे ४२० ई० पू० मे हुआ था। पोयगै आळवार के जन्म के दूसरे दिन भूतत्ताळवार का जन्म हुआ था। यह कडनमलै (वर्तमान महाबलिपुरम) मे उत्पन्न हुए थे और भगवान विष्णु की गदा के अवतार थे। इसी प्रकार पोयगै आळवार के जन्म के तीसरे दिन मैलै (वर्तमान मैलापुर) मे पेआळवार का जन्म हुआ था। यह नदक (विष्णु का खग) के अवतार थे। ये तीनो ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए थे और जन्म से ही योगी थे। इतिहास के अनुसार इनका काल ईसा की आठवी शताब्दी का पूर्वार्ध मे माना जाता है। ये तीनो सम-कालीन थे।

इनके सबध मे एक अत्यत रोचक कथा है कि एक अधकारमय रात्रि मे भीषण वर्षा और तूफान से रक्षा पाने के लिए तिरुकोवलूर के मदिर के एक छोटे से कमरे मे पोयगै आळवार विश्राम ले रहे थे। इसी समय भूतत्ताळवार भी वही आ पहुचे। कमरे मे दोनो के लेटने के लिए पर्याप्त स्थान नही था, अतएव दोनो ने बैठकर रात्रि बिताने का निश्चय किया। थोडी देर के बाद कमरे के द्वार पर फिर किसीके धक्का देने का शब्द सुनाई दिया। वर्षा से रक्षा पाने के लिए पेआळवार भी उसी कमरे मे आ पहुचे। पर तीन व्यक्तियो के बैठने के लिए वह कोठरी काफी नही थी। अतएव तीनो ने खडे रहकर रात बिताने की ठानी। थोडी देर मे उस अधकारपूर्ण कमरे मे एक चौथे व्यक्ति के आने का आभास हुआ। तुरत सारा कमरा प्रकाशमय हो गया और उन्हे भगवान विष्णु के दिव्य दर्शन हुए। उस दर्शन से तृप्त होकर तीनो आळवारो ने भगवान विष्णु की प्रशसा मे सौ-सौ पद्य गाये, जो 'तमिळ दिव्य प्रबधम' का प्रारभिक भाग है। इसी प्रकार तिरुमलिशै आळवार भगवान के चक्र के, नम्माळवार भगवान के विश्वक्सेन के, कुलशेखर भगवान की कौस्तुभ मणि के, पेरिय आळवार भगवान के वाहन गरुड के, तोडर-डिपोडि भगवान की वनमाला के एव तिरुमगै आळवार भगवान के सारग के अवतार माने जाते है।

आळवार लोग भगवान विष्णु के क्षेत्रो की यात्रा करते और उनकी प्रशसा मे

सुदर पद्य रचकर गाते थे। इन पद्यो का सग्रह श्री नाथमुनि ने ईसा की दसवी शताब्दी मे किया। इस सग्रह मे चार हजार पद है, जो 'दिव्य प्रबधम' या 'नालाइर प्रबधम' के नाम से प्रसिद्ध है। वैष्णव लोगो मे इस ग्रथ का बडा आदर है। वे इनको वेदो के समान मानते है और विष्णु के मदिरो मे भक्ति और स्वर से इनका पाठ करते है। वैष्णव मतावलबियो के बीच इन प्रबधो को वही ख्याति और मान्यता प्राप्त है, जो शिव भक्तो मे 'तेवारम' को है।

आळवारो का समय दसवी सदी मे समाप्त हो जाता है, जिसके बाद आचार्यो का काल आरभ होता है। आळवार और आचार्य का भेद है—आळवार उन्हे कहते थे, जो ज्ञानी होते थे और जिन्हे भगवान विष्णु का साक्षात्कार प्राप्त था। आचार्य लोग आळवारो की अपेक्षा निम्न श्रेणी के महापुरुष थे, जिन्होने आळवारो के तत्वो और सिद्धातो का शास्त्रीय विवेचन तथा सर्वसाधारण मे प्रचार किया था। वैष्णव आचार्यो मे सर्वप्रथम आचार्य श्री नाथमुनि थे, जिन्होने आळवारो के वचनो का 'दिव्य प्रबधम' के रूप मे सपादन किया। नाथमुनि के बाद उनके पोते यामुनाचार्य आचार्य की गद्दी पर विराजमान हुए। यह आवळार के नाम से भी प्रसिद्ध है। इनका जन्म चोळमडल मे सन ९२० हुआ था। यह अपने बचपन से ही बडे प्रतिभाशाली थे और प्रकाड विद्वान हुए। इनके सबध मे एक छोटी-सी कथा है कि चोळ राजा के दरबार मे अक्कियालवान नाम का एक दिग्गज पडित रहता था, जो विद्वत्ता मे राज्य के समस्त पडितो को परास्त कर उनसे कर वसूल किया करता था। उसने यामुन के गुरु से भी कर मागा, पर गुरु की अनुपस्थिति मे यामुन ने कर देने से साफ इन्कार कर दिया। इस पर पडित को बडा क्रोध आया और उसने यामुन को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। बालक यामुनाचार्य ने भरी सभा मे उसे परास्त कर अक्षय कीर्ति पाई। बालक की विद्वत्ता से चोळ रानी बहुत प्रसन्न हुई और उसने उन्हे गोद मे लेकर 'आळवदार' कहकर सबोधित किया, जिसका अर्थ होता है 'आया है मेरी रक्षा के लिए'। यामुनाचार्य ने अनेक ग्रथ भी रचे। इनके अधिकाश ग्रथ सस्कृत मे रचे गये थे।

यामुनाचार्य के बाद आचार्य-परपरा मे श्री रामानुजाचार्य आते है। वह इस आचार्य-परपरा के सबसे प्रसिद्ध एव सर्वमान्य गुरु है। उन्होने वेदो और उपनिषदो मे वर्णित वैष्णव धर्म और आळवारो द्वारा प्रचारित भक्ति मार्ग का समन्वय कर विशिष्टाद्वैत सप्रदाय की प्रतिष्ठा की।

श्री रामानुज का जन्म काचीपुरम के पास श्रीपेरुवुदूर नामक गाव मे सन १०१८ मे हुआ था। इनके पिता का नाम केशव पेरुमाल और माता का नाम भूमिपिराट्टियार था (जिसका अर्थ होता है पृथ्वी माता)। श्री रामानुज शिक्षा पाने के हेतु काचीपुरम पहुचे और वहा श्री यादव प्रकाश नामक एक पडित के पास वेदात का अध्ययन करते रहे। रामानुज बचपन से ही वडे प्रतिभाशाली थे। पढाते समय अक्सर ब्रह्म सूत्रो की व्याख्या के सबध मे गुरु-शिष्य मे मतभेद हो जाता था। चलते-चलते मतभेद यहा तक वढ गया कि यादव प्रकाश रामानुज से घृणा करने लगे और काशी यात्रा करने के बहाने रामानुज को काशी ले जकर वहा गगा मे डुबो देने का निश्चय किया। परतु यात्रा के समय यादव प्रकाश के दूसरे शिष्य के द्वारा यह समाचार पाकर रामानुज चुपके से काचीपुरम लौट आये।

रामानुज की प्रतिभा की ख्याति दक्षिण मे श्रीरगम तक पहुची जहा आचार्य नाथमुनि रहते थे। उन्होने अपने एक शिष्य को रामानुज को श्रीरगम ले आने के लिए भेजा। उधर रामानुज भी आचार्य नाथमुनि के विषय मे सुन चुके थे और उनके दर्शन करने के इच्छुक थे। आचार्य नाथमुनि के शिष्य के साथ वे श्रीरगम आ पहुचे। पर हाय! उनके श्रीरगम पहुचने के कुछ ही क्षणो के पूर्व नाथमुनि का देहावसान हो चुका था।

यह कथा प्रसिद्ध है कि नाथमुनि के देहावसान होने के वाद भी उनके दाय हाथ की तीन उगलिया मुडी हुई थी। यह अवस्था देखकर उनके शिष्य बहुत परेशान हुए। किंतु रामानुज ने इसका भेद ताड लिया। आचार्य नाथमुनि की तीन इच्छाए अपूर्ण रह गई थी। वह गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदो पर भाष्य लिखना चाहते थे, जिन्हे वह पूरा नही कर पाये थे। रामानुज ने उसी समय आचार्य की अपूर्ण इच्छाओ को पूरा करने की प्रतिज्ञा ली और तत्काल नाथमुनि की उगलिया सीधी हो गई।

रामानुज ने अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया और गीता-भाष्य, ब्रह्मसूत्र-भाष्य और उपनिषदो के भाष्य लिखे।

रामानुज के सन्यास ग्रहण करने के सबध मे एक रोचक कथा है। कुछ काल तक रामानुज नाथमुनि के शिष्य पेरियनवि के साथ रहकर उन्हीके पास अध्ययन करते रहे। किंतु दुर्भाग्यवश इन दोनो की पत्नियो मे झगडा हो गया, जिससे असतुष्ट होकर पेरियनवि काचीपुरम छोडकर श्रीरगम चले गये। अपनी स्त्री के

उग्र स्वभाव और सकीर्ण बुद्धि से दुखित होकर रामानुज ने उसे मायके भेज दिया और यह देखकर कि पारिवारिक जीवन मे रहकर अध्ययन करना और अपने जीवन का उद्देश्य प्राप्त करना सभव नही है, उन्होने गार्हस्थ्य जीवन का त्याग कर सन्यास ले लिया। 'गुरु-परपरा' मे इस घटना का वडा सुदर और रोचक वर्णन दिया गया है।

पीछे चलकर रामानुज का प्रभाव इतना बढा कि उनके पूर्व आचार्य श्री यादव-प्रकाश ने भी वैष्णव धर्म ग्रहण कर लिया और उनके शिष्य वन गये।

कुछ काल के पश्चात रामानुज काचीपुरम छोडकर श्रीरगम चले आये। उन्होने श्रीरगनाथ के मदिर का प्रवध अपने हाथ मे ले लिया और मदिर की व्यवस्था, पूजा आदि मे कई सुधार किये। यहा पर उन्होने अनेक शैव विद्वानो को शास्त्रार्थ मे परास्त किया और उन्हे वैष्णव धर्म मे सम्मिलित किया। इनमे से उस काल के प्रसिद्ध अद्वैतवादी पडित ज्ञानमूर्ति थे, जिन्होने वैष्णव धर्म ग्रहण किया था।

इसके वाद रामानुज ने भारत के १०८ क्षेत्रो की यात्रा आरभ की और यात्रा करते हुए वह कश्मीर भी पहुचे, जहा उनका बहुत आदर-सत्कार हुआ। वही पर उन्हे 'ब्रह्म सूत्र' पर महर्षि वोधायन की वृत्ति की प्रतिलिपि प्राप्त हुई, जिसके आधार पर उन्होने अपना प्रसिद्ध 'श्रीभाष्य' लिखा।

रामानुज के समय मे शिव और विष्णु के भक्तो मे भी विरोध उत्पन्न हो गया था। कथा है कि जव रामानुज श्रीरगम मे रहते थे, तव गगैकोडचोळपुरम का चोळ राजा, जो कट्टर शिव भक्त और वैष्णवद्रोही था, अपनी प्रजा को जवरदस्ती शैव वनाता और जो उसकी आज्ञा नही मानता, उस पर अनेक प्रकार से अत्याचार करता था। उसने रामानुज को भी अपने दरवार मे बुलाया, किंतु अपने भक्तो का आग्रह मानकर वह चोळ राजा के दरवार मे न जाकर श्रीरगम छोडकर कुछ काल के लिए तोडनूर (मेलकोट) चले गये और कई वर्ष तक वही रहे। वहा उन्होने होयसला राजा वित्तिदेव को वैष्णव सप्रदाय मे शामिल किया, जो पहले जैन मतावलवी था। राजा की सहायता से उन्होने मेलकोट मे श्रीनारायण का मदिर भी वनवाया और आस-पास के कई जैन मदिरो मे श्री नारायण की मूर्तिया स्थापित कराई। तिरुपति (वालाजी) मे भी उन्होने विष्णु मदिर की स्थापना की।

इनमे सबसे मुख्य भेद तो प्रपत्ति के सबध मे है। 'प्रपत्ति' का अर्थ श्रीमन्ना-रायण की शरण मे पहुचना है। जो व्यक्ति भक्ति-योग की साधना करने मे असमर्थ है, वह भी इस प्रपत्ति मार्ग से मोक्ष प्राप्त कर सकता है—यह वैष्णवो का मतव्य है। गीता का श्लोक—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
अह त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच ॥

इसी मार्ग को प्रतिपादित करता है। वडकलै लोग मानते है कि पूर्वोक्त पच-सस्कार पाकर वैष्णव धर्म मे दीक्षित होने पर भी प्रपत्ति का एक अलग सस्कार पाना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक मानसिक परिपक्वता चाहिए। ससार से निर्वेद पाया हुआ व्यक्ति गुरु के आश्रय मे जाता है और प्रपत्ति की शिक्षा देने की प्रार्थना करता है। गुरु उसे प्रपत्ति का मार्ग बताकर भगवान की शरण मे पहुचा देता है। तेनकलै सप्रदायवाले पच-सस्कार के अतिरिक्त अन्य सस्कार को अनुपेक्षित समझते है। इन दोनो सप्रदायो के बीच मे आगे चलकर बडा विरोध हो गया, जो अब तक कुछ मात्रा मे वर्तमान है।

जनता को बौद्ध और जैन धर्म से शैव धर्म की ओर आकृष्ट करने में शैव सतो ने लोक भाषा तमिळ को अपनाया था और अपने प्रचार मे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। वैष्णव सतो ने भी उनका अनुकरण करके अपनी भक्तिपूर्ण रचनाओ का जनता मे प्रचार करने के लिए तमिळ का ही आश्रय लिया और वे उसमे सफल हुए।

वैष्णव सप्रदाय मे आचार्यों की परपरा आरभ होने से दक्षिण मे सस्कृत भाषा और साहित्य को अधिक प्रोत्हासन मिला और इन आचार्यों ने अपनी रचनाओ मे सस्कृत को ही स्थान दिया। इस काल मे दक्षिण मे सस्कृत-मिश्रित तमिळ की एक शैली का प्रचार भी हुआ, जिसमे कुछ ग्रथ रचे गये। आज भी वैष्णव ब्राह्मणो की भाषा मे सस्कृत शब्दो का बाहुल्य देखने मे आता है।

आळवारों का संक्षिप्त जीवन वृत्त

तिरुमलिशै आळवार—यह तोडमान (पल्लव देश) के निवासी थे। यह कवि, दार्शनिक और सिद्ध पुरुष थे। इनका पालन-पोषण एक चिडीमार के यहा हुआ था

पर इनके पिता कोई भार्गव ऋषि थे। यह सस्कृत और तमिळ के बडे विद्वान थे। इनके पदो से मालूम होता है कि उन्होने रामायण, महाभारत, विष्णुपुराण आदि ग्रथो का बहुत अच्छा अध्ययन किया था। यह शैव, जैन और बौद्ध धर्मो के कट्टर विरोधी और वैष्णव धर्म के पक्के समर्थक थे।

तिरुमलिशै आळवार एकेश्वरवादी थे और विष्णु को ही परमात्मा मानते थे और शिव और ब्रह्मा को उनकी कृति बतलाते थे। 'गुरु-परपरा' मे उनका जन्म द्वापर मे लिखा है, पर इतिहासकार उनका समय ईसा की आठवी सदी मानते है। यह प्रसिद्ध शैव भक्त तिरुनावक्करसु और तिरुज्ञानसबधर के समकालीन माने जाते है।

नम्माळवार—नम्माळवार वैष्णव आळवारो मे सबसे प्रमुख माने जाते है। इनका जन्मकाल ईसा की नवी सदी का मध्य माना जाता है। इनका जन्म तिरुनेल-वेली जिले मे आळवार तिरुनगरी नामक स्थान मे वेळ्ळाळर (अब्राह्मण) परिवार मे हुआ था। इनका पहला नाम मारन था, पर इनके धर्म गुरु ने इन्हे सस्कृत नाम शठकोपन दिया था। वैष्णव सतो मे इनका स्थान बहुत ऊचा है।

कहा जाता है कि जन्म होने के बाद दस दिन तक इनको भूख-प्यास का अनुभव ही नही हुआ। यह योगी थे और बचपन मे ही घर-द्वार छोडकर योग-साधन करने चले गये थे। इन्होने एक इमली के पेड के नीचे सिद्धि प्राप्त की थी। वह इमली का पेड आज भी वर्तमान है। इनका विश्वास था कि मोक्ष के सच्चे दाता विष्णु भगवान ही है और शिव और ब्रह्मा विष्णु के ही अश है। यह जाति-भेद नही मानते थे। इनकी मान्यता थी कि ईश्वर का ज्ञान या अज्ञान ही मनुष्य को समाज मे ऊचा या नीचा स्थान दिला सकता है। कथा है कि भगवान नारायण ने प्रकट होकर इन्हे नारायण मत्र का उपदेश दिया, जो "ओम् नमो नारायणाय" नाम से प्रसिद्ध है। वैष्णव सप्रदायियो मे यह मूल मत्र माना जाता है।

नम्माळवार ने चार ग्रथ रचे—'तिरुविरुत्तम', 'तिरुवाशिरियम', 'तिरुवदादी और 'तिरुवायमोळि'। ये चारो ग्रथ वैष्णवो के बीच चार वेदो की तरह समादृत है। 'तिरुवायमोळि' ग्रथ इनका सबसे बडा एव प्रसिद्ध ग्रथ है। इसमे एक हजार पद्य है, जो 'दिव्य प्रबधम' का एक चौथाई भाग है। इसमे भगवान नारायण के दिव्य गुणो और उनके रूप का वर्णन है। 'तिरुवायमोळि' और 'तिरुविरुत्तम' मे भग-वान के प्रति प्रेम और तन्मय भाव के सबध मे विस्तृत रूप से कहा गया है। कवि ने

अपन को नायिका मानकर अपने प्रियतम नारायण के साथ माधुर्य भाव से भक्ति की है। वैष्णव भक्तो मे सर्वप्रथम नम्माळवार ने ही श्रीमदभागवत के माधुर्य भाव के आधार पर भक्ति साधना की है।

नम्माळवार के दो शिष्य थे श्री नाथमुनि और मधुरकवि। श्री नाथमुनि वैष्णवो के प्रथम आचार्य हुए और श्री मधुरकवि भक्तो की श्रेणी मे माने गये।

नम्माळवार का समय ईसा की नवी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। 'गुरु-परपरा' के अनुसार इनका काल ३१०२ ई० पू० होता है। यह आळवारो की परपरा म प्रधान थे। इन्होने अनेक वैष्णव क्षेत्रो की यात्रा की थी और वहा के स्थल-देवता पर छद रचे थे। इनकी भाषा मे सस्कृत शब्दो की प्रचुरता पाई जाती है।

मधुरकवि आळवार—यह दक्षिण आर्काट जिले म तिरुकोइलूर के निवासी थे और ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए थे। इन्होने अयोध्या मे जाकर अध्ययन किया था और नम्माळवार के जन्म का समाचार पाकर आळवार तिरुनगरी को वापस आ गये थे और वहा पहुचकर नम्माळवार के शिष्य बन गये थे। जब नम्माळवार ने 'तिरुवायमोळि' की रचना की, तब उन्होने गुरु के मुखारविंद से सुनकर समस्त ग्रथ को ताड पत्र पर लिख लिया।

कुलशेखर आळवार—यह मदुरा के पाडिय वश मे पैदा हुये थे। इन्हे चेर देश का राजा बनाया गया था। बाल्यकाल ही मे इन्होने पुराण और इतिहास का अच्छा अध्ययन किया था। इनके समय मे मापिल्ला (मलबार के मुसलमान) लोगो का उपद्रव बहुत ज्यादा था, जिसे इन्होने शात किया था।

कुलशेखर सस्कृत तथा तमिळ के अच्छे विद्वान थे। इन्होने सस्कृत मे 'मुकुद-माला' नामक काव्य लिखा और तमिळ मे १०५ पद्य रचे। ये पद्य 'पेरुमाल तिरुमोळि' (भगवान के पवित्र वचन) के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होने जो पद्य श्रीरगम के भगवान रगनाथ की प्रशसा मे गाये है, वे करुण-रस से ओत-प्रोत है।

यह बडे भावुक थे। इनके सबध मे एक कथा प्रचलित है कि एक बार इनके दरबार मे एक पडित रामायण की कथा सुना रहे थे। खर-दूषण-वधवाला प्रसग था। सुनते-सुनते कुलशेखर आवेश मे आ गये और राम की मदद के लिए अपनी

सेना को फौरन तैयार हो जाने की आज्ञा दी। उसी तरह राम-रावण युद्ध का प्रसग आने पर भी हुआ था। इससे उनकी भावुकता का पता चलता है। इनका समय ईसा की नवी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है।

पेरिय आळवार—इनका दूसरा नाम विष्णुचितन था। उस समय के प्राय सभी वैष्णव भक्तो के दो-दो नाम थे। एक शुद्ध तमिळ नाम, दूसरा सस्कृत नाम। यह पाडियो के देश मे श्रीविल्लिपुत्तूर नामक स्थान मे पैदा हुए थे और वहा के मदिर के सेवको के मुखिया थे और बडे विद्वान थे। एक बार मदुरा के पाडिय राजा के राजगुरु शेल्वनवी ने देश के तमाम धार्मिक नेताओ की एक सभा बुलाई। उस सभा मे पेरिय आळवार ने सभी धर्मावलबियो के सामने वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता स्थापित की। तभी से उस प्रदेश मे वैष्णव धर्म का प्रभाव बढने लगा। पेरिय आळवार ने सूरदास की तरह कृष्ण चरित्र तथा उनकी लीलाओ के पद गाये है। इन पदो की सख्या ४१६ है। इनकी शैली सरल थी, पर इनकी भाषा मे सस्कृत के अनेक तद्भव शब्द मिलते है, जिनका प्रयोग इन्होने बडी कुशलता से किया है। इनकी रचनाओ का प्रधान अश वात्सल्य रस है। इन्होने अपने को यशोदा मानकर बालक कृष्ण के साथ अपना प्रेममय सबध स्थापित किया है। इन्होने जैन तथा बौद्ध धर्मावलबियो के विरुद्ध एक भी कटु शब्द का प्रयोग नही किया। सभव है, तब तक देश से ये दोनो धर्म विदा हो चुके थे। इन्होने शैव धर्म के विरुद्ध भी कुछ नही कहा। इससे ज्ञात होता है कि इनके समय मे शैव और वैष्णव दोनो मत देश मे पूर्ण रूप से स्थापित हो चुके थे और इनका आपस का विरोध दूर हो गया था। इनका समय ८४० और ६१५ ईसवी के बीच माना जाता है। तमिळ की एक शैली है जिसे 'पिल्लै तमिळ' कहते है। इसमे बच्चो के खेल, उनकी क्रीडा तथा उनके पालन-पोषण का रोचक वर्णन किया जाता है। पेरिय आळवार ने इस शैली मे भगवान कृष्ण के बाल-चरित्र का वर्णन किया है।

तिरुप्पाण आळवार—यह तिरुच्चिरापल्ली के पास एक गाव में किसी पानन परिवार मे जन्मे थे। पानन जाति उस जमाने मे अस्पृश्य समझी जाती थी। तिरुप्पाण शैव भक्त नदन की तरह विष्णु के अनन्य भक्त थे, पर अस्पृश्य होने के कारण श्रीरगम के मदिर मे उनको प्रवेश नही मिलता था। उसी समय लोकसारगन नाम के एक साधु श्रीरगम मे रहते थे। श्रीरगनाथ ने उन्हे दर्शन देकर आदेश दिया कि तिरुप्पाण को अपने कधो पर बिठाकर मदिर मे ले आओ। उसी
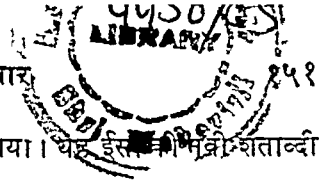
समय से तिरुप्पाण का दूसरा नाम मुनिवाहन पड गया। ये ईसा की नवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे रहते थे।

तिरुमगै आळवार—तिरुमगै आळवार का समय ईसा की नवी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। यह तजाऊर जिले मे शियाली के आस-पास पैदा हुए थे। यह कल्लर जाति के थे। यह जाति पहले जरायम पेशा जातियो मे गिनी जाती थी। लेकिन किसी जमाने मे इस जाति के लोग राज्य भी करते थे। तिरुमगै के पिता चोळ राजा के सेनापति थे और एक छोटी जागीर के स्वामी थे। इसलिए तिरुमगै को भी युद्ध की शिक्षा मिली थी। इनका विवाह कुमुदवल्ली नाम की एक लडकी से हुआ, जो विष्णु की परम भक्त थी। उसीके प्रभाव मे आकर तिरमगै भी वैष्णव हो गये।

तिरुमगै आळवार वडे दानशील थे। जागीर से जो कुछ मिलता था, सव दान कर देते थे। राजा को कर तक अदा नही करते थे। जव दान देते-देते इनके पास कुछ न वचा, तो यह डाका डालने लगे। डकैती से प्राप्त धन गरीव दुखियो को वाट देते थे। भगवान विष्णु ने इनकी सच्चाई पर प्रसन्न होकर इनको दर्शन दिया।

चोळ राजा से मतभेद हो जाने के कारण इन्होने राज्य की नौकरी छोड दी और सारे देश मे घूम-घूमकर वैष्णव धर्म का प्रचार करने लगे। इस जमाने मे यात्रा की कठिनाइयो के होते हुए भी इन्होने कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक की यात्रा की और भारत के समस्त तीर्थ क्षेत्रो के दर्शन किये। इन्होने श्रीरगम के मदिर का तीसरा प्राकार (चहार दीवारी) वनवाया। कहते है कि इन्होने इस कार्य के लिए नागपट्टिनम मे स्थित भगवान वुद्ध की स्वर्ण मूर्ति को तोड डाला और उसीसे प्राप्त धन से श्रीरगनाथ के मदिर का प्राकार वनवाया।

तिरुमगै आळवार अद्वितीय विद्वान थे। इन्होने भगवान विष्णु को प्रियतम परमात्मा मानकर उनकी उपासना की है। उनके पद दार्शनिक विचार से भरे है। इन्होने छ ग्रथ रचे, जो वैष्णवो के बीच 'वेदाग' के नाम से प्रसिद्ध है और वडी भक्ति से गाये जाते है। नम्माळवार और तिरुमगै आळवार, ये दोनो वैष्णव सप्रदाय के प्रमुख भक्त कवि माने जाते है। इनके मत के अनुसार शुष्क तपस्या व्यर्थ है और नवधा भक्ति ही मोक्षदायिनी है। इनके सबध मे एक आलोचक का कहना है कि तिरुमगै आळवार ऐसे भक्त थे जो "आत्मा को सूर्य की धूप मे सुखाना और शरीर को छाया की ठडक मे पालना चाहते थे।"

तोडरडिपोडि आळवार—यह शोलिय ब्राह्मण (दक्षिण मे ब्राह्मणो का एक वर्ग) के घर मे उत्पन्न हुए थे और इनका नाम विप्रनारायण था। इन्होने सभी शास्त्रो का अध्ययन किया था। यह श्रीरगम भगवान के मदिर के समीप तुलसी का एक बगीचा लगाकर नित्य प्रति भगवान पर चढाने के लिए अपने बगीचे से फूल एव तुलसी दल दिया करते थे। किंतु दुर्भाग्यवश एक अत्यत रूपवती वेश्या के प्रेम मे फसकर यह पूजा-पाठ सब भूल गये। जब यह दरिद्र हो गये, तब उस वेश्या ने इनका परित्याग कर दिया। इनकी दयनीय दशा देखकर भगवान रगनाथ ने इन पर दया की और इन्हे अपनी भक्ति देकर इनका त्राण किया। इन्होने भगवान की प्रशसा मे तमिळ मे दो ग्रथ लिखे—'तिरुमालै' और 'तिरुप्पल्लि-एलुच्चि'।

आडाल—श्रीविल्लिपुत्तूर (रामनाद जिले मे वैष्णवो का एक प्रधान क्षेत्र) मे भगवान विष्णु के परम भक्त पेरिय आळवार रहते थे, जिनका उल्लेख पहले हो चुका है। आडाल उन्हीकी पुत्री थी। परतु इनके सबध मे यह भी कथा प्रचलित है कि एक दिन जब पेरिय आळवार नदवन (मदिर से लगी हुई पुष्प वाटिका) मे भगवान पर चढाने के लिए फूल चुन रहे थे, तो वहा उन्हे एक बालिका पडी मिली। वह उसको घर लाये और कोदै नाम देकर उसका पालन पोषण करने लगे। 'कोदै' शब्द का अर्थ है फूल का गुच्छा। कोदै पुष्प वाटिका मे प्राप्त हुई थी, इसीलिए उसको आळवार ने ऐसा नाम दिया। वह जब बडी हुई, तब उसका भी मन भगवान मे रम गया और वह उनकी भक्ति मे तल्लीन हो गई।

पेरिय आळवार रोज भगवान विष्णु को फूल की माला चढाते थे। माला बनाने का कार्य कोदै को सौपा गया था। वह नित्य फूल चुनकर माला गूथती थी और पहले स्वय उसे अपने गले मे धारण कर यह देख लेती थी कि माला कैसी बनी है? जब उसको माला पसद आती, तब उसे भगवान पर चढाने के लिए अपने पिता को दे देती। पेरिय आळवार को इस बात का पता न था। वह अनजाने ही प्रति दिन कोदै की पहनी हुई जूठी माला भगवान पर चढाया करते थे। एक दिन सयोग से उन्होने देख लिया कि कोदै अपने गले मे माला डाले खडी है। इस पर वह बहुत नाराज हुए और कोदै को खूब डाटा-डपटा। फिर दूसरी माला बनाकर भगवान पर चढाई।

उसी दिन रात को भगवान ने स्वप्न मे आकर पेरिय आळवार से कहा कि मुझे कोदै की पहनी हुई माला ही प्रिय है। तब से कोदै का नाम शूडिकोडत्त नाच्चियार (पहनी हुई माला अर्पण करनेवाली देवी) पड गया।

धीरे-धीरे कोदै की भक्ति इतनी तीव्र हो गई कि उसने श्री रगनाथ को ही अपना पति बनाने का निश्चय किया। श्रीकृष्ण भगवान की लीलाओ का गीत गाती हुई वह श्रीरगम पहुची और श्रीरगनाथजी मे लीन हो गई।

आडाल के पद 'तिरुप्पावै मुप्पतु' और 'नाच्चियार तिरुमोळि' के नाम से सग्रहीत है। आडाल भगवान विष्णु को अपना पति मानकर प्रेम करती थी। वह भगवान को अपना पति बनने के लिए अनेक तरह के मधुर शब्दो मे उनका विनय आह्वान करती थी। 'तिरुप्पावै' मे इन्ही गीतो का सग्रह है। आजकल भी कुमारी लडकिया योग्य पति पाने के लिए गौरी व्रत की तरह पावै नोवू नामक व्रत रखती है और उस अवसर पर आडाल के रचे पद गाती है।

'तिरुमोळि' मे भगवान विष्णु को अपना प्रियतम और अपने को उनकी प्रियतमा मानकर आडाल ने पद रचे है। उसका विरह वर्णन, स्वप्न मे भगवान से मिलन, विवाह वर्णन आदि बडे रोचक है। आळवारो के भक्ति साहित्य मे आडाल की रचनाओ को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। आडाल को दक्षिण की मीरा कहते है। उनकी रचनाओ मे मीरा के पदो के समान ही भक्ति और प्रेम की तीव्रता है।

आडाल का जन्म ईसा की नवी शताब्दी के अत मे हुआ था।

: ११ :

प्राचीन तमिळ् संस्कृति—१

आर्य-ग्रथो मे दक्षिण भारत का उल्लेख सबसे पहले रामायण और महाभारत मे मिलता है। रामायण और महाभारत के काल के सबध में विद्वानो मे मतभेद है। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि ये दोनो ग्रथ ५०० ई० पू० से लेकर ३०० ई० पू० के बीच लिखे गये थे। उनका यह भी मत है कि रामायण के कुछ अश ईसा से पाच सौ वर्ष पूर्व और कुछ अश ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व लिखे गये। हॉपकिन नामक विद्वान का कहना है कि रामायण ३०० ई० पू० मे लिखी गई। बेरिडेल कीथ का भी यही मत है। प्रोफेसर रैपशन और डा० कृष्णस्वामी ने रामायण और महाभारत दोनो की रचना का समय ५०० ई० पू० माना है। महाभारत के सबध मे प्रोफेसर मैकडोनल्ड का कथन है कि वह तीन कालो मे रचा गया। उसके कुछ अश ५०० ई० पू० मे, कुछ अश ३०० ई० पू० मे, और कुछ अश १०० ई० पू० मे रचे गये। इनके विपरीत प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान प० भगवतदत्त का मानना है कि उपलब्ध ब्राह्मण ग्रथो मे से सबसे पुराने ब्राह्मण ग्रथ विक्रम से लगभग ३४००-३५०० वर्ष पूर्व प्रवचन किये गये थे। उनमे लगभग १७०० वर्ष पहले भार्गव वाल्मीकि रामायण की रचना कर चुके थे।

इसी तरह वह महाभारत का रचना-काल भी ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व मानते है। रामायण और महाभारत की रचना का काल ठीक-ठीक निर्णीत हो जाने से दक्षिण के इतिहास का काल निर्धारित करने मे आसानी हो सकती है।

रामायण से दक्षिण की सामाजिक व राजनैतिक अवस्था पर कोई प्रकाश नही पडता। रामायण मे दक्षिण का जो भौगोलिक वर्णन किया गया है, वह भी स्पष्ट नही है। उससे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि लका मे राक्षस रावण का राज्य था। उसके राज्य की सीमा उत्तर मे गोदावरी तट तक विस्तारित थी, जिसे

जनस्थान कहते थे। यहा उसके राज्य की सीमा की रक्षा-हेतु खर और दूपण नामक दो राक्षस सेनापति नियुक्त थे, जिनका मुख्य कार्य आर्यों के दक्षिण आने का मार्ग अवरुद्ध करना था। दक्षिण की समस्त भूमि अरण्यो से आच्छादित थी। इस प्रदेश को दडकारण्य कहते थे और यहा विराध, कवध, दुदुभि आदि राक्षस और निषाद, शबर, भील, वानर आदि जगली जातिया निवास करती थी, जो रावण का आधिपत्य मानती थी। शायद कही-कही स्वतत्र राज्य भी वर्तमान थे, जैसे वानरो की किष्किधापुरी। रामायण मे लिखा है कि रामचद्र को लका जाते समय मार्ग मे बदर, भालू, गृद्ध आदि वन्य पशुओ के अतिरिक्त किसी नगर या गाव के दर्शन नही हुए। इससे प्रतीत होता है कि राम के युग मे दक्षिण मे पाडिय, चोळ और चेर राज्यो का उदय नही हुआ था। परतु किष्किधा काड मे जब सुग्रीव अपनी वानर सेना को सीता की खोज मे चारो दिशाओ मे जाने का आदेश देता है, तब वह दक्षिण भारत के कुछ राज्यो का उल्लेख करता है, जिनमे आध्र, चोळ, पाडिय और केरल के नाम भी दिये गये है। दक्षिण की ओर जानेवाली वानर सेना से वह कहता है

"ततो हेममय दिव्य मुक्ता मणि विभूषितम्।
युक्त कवाट पाड्याना गताद्रक्ष्यथ वानरा ॥"

अर्थात मुक्तामणि से विभूषित पाडियो की राजधानी कवाटपुरम है, वहा भी सीता की खोज करना। चेरो की राजधानी मुशिरि का भी उल्लेख हुआ है और चोळ राज्यातर्गत पुहार के पास श्वेतारण्यम का भी नाम आया है, परतु कुछ विद्वानो का मत है कि रामायण का यह अश प्रक्षिप्त है या पीछे से उसमे जोडा गया है। रावण के राजत्व काल मे पाडिय चोळ, चेर आदि राज्यो का होना सभव नही था। इनका उदय रावण की मृत्यु के बाद ही हुआ होगा।

तमिळ लोगो का प्राचीन इतिहास अधकार के गर्भ मे छिपा हुआ है। आर्यो की तरह तमिळ लोग भी इतिहास लिखने के प्रेमी नही थे और उन्होने अपना कोई इतिहास नही छोडा। आर्यों के प्राचीन ग्रथो मे दक्षिण भारत का वर्णन बहुत कम पाया जाता है। इतना सकेत अवश्य मिलता है कि वैदिक काल से ही आर्यावर्त और दक्षिण देश मे व्यापारिक सबध स्थापित हो चुका था। 'ऋग्वेद सहिता' मे भी दक्षिणापथ का नाम आया है। वैदिक काल मे ही दक्षिण के मोती और मयूरपख उत्तर भारत मे पहुच चुके थे और वहा प्रचुर मात्रा मे उनका उपयोग होता था।

'मुक्ता' और 'मयूर' शब्द भी तमिळ भाषा के 'मुत्तु' और 'मयिल' के ही आधार पर बन प्रतीत होते है।

श्रीरामचद्र के लका-विजय और रावण की हार के बाद राक्षसो का प्रभुत्व दक्षिण भारत पर से मिट गया। उसी समय से दक्षिण के इतिहास ने पल्टा खाया। तमिळ देश की उन जातियो ने, जो रावण के प्रभाव के कारण दबी हुई थी, फिर अपना सिर उठाया और छोटे-छोटे राज्य स्थापित किये। इन्ही छोटे-छोटे राज्यो से कुछ शताब्दियो के बाद पाडिय, चोळ और चेर राज्यो का उदय हुआ होगा। इन राज्यो के सगठित होने से तमिळ लोगो को अपनी सभ्यता और सस्कृति का विकास करने का अच्छा अवसर मिला। पाडिय और चोळ राजाओ का सहारा पाकर देश मे वाणिज्य-व्यापार की वृद्धि हुई, कला-कौशल का विकास हुआ और नगरो का निर्माण हुआ, जो सभ्यता और सस्कृति के केद्र बने।

यह तो निश्चित है कि भारत मे आर्यो के आने के बहुत पहले ही तमिळ लोग अपनी सभ्यता और सस्कृति को विकसित कर चुके थे। तमिळ के अति प्राचीन साहित्य से तमिळ लोगो की तत्कालीन सस्कृति तथा सभ्यता के सबध मे बहुत-कुछ बाते विदित होती है। उस समय मानव-जीवन का उद्देश्य, जैसाकि 'तिरुक्कुरल' मे कहा गया है, मुप्पाल (त्रिवर्ग), अर्थात धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति था। इन उद्देश्यो के अनुकूल व्यक्ति के जीवन को सुव्यवस्थित बनाने के लिए ही समाज सुसगठित हुए थे। तत्कालीन समाज का ऐसा सगठन और राजनीति की ऐसी व्यवस्था कुछ इने-गिने वर्षो का परिणाम नही हो सकता, यह तो कई शताब्दियो के क्रमिक विकास का फल है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि तमिळ लोगो की सस्कृति व सभ्यता का इतिहास ईसा से पहले कई शताब्दी पुराना है।

प्राचीन तमिळ सस्कृति के विषय मे जानने के लिए विशेष रूप से देखने योग्य ग्रथ ये है

(१) तोळकाप्पियम
(२) अहम और पुरम नामक पद्य-सग्रह
(३) तिरुक्कुरल
(४) शिलप्पधिकारम
(५) मणिमेखलै

सस्कृति के विकास-क्रम की दृष्टि से प्राचीन तमिळ सस्कृति का युग तीन

कालो मे बाटा जाता है—(१) प्रागैतिहासिक काल—ईसा से चार शताब्दी से पूर्व का समय। (२) तिरुक्कुरल का काल—ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से लेकर ईसा पूर्व पहली शताब्दी तक। (३) महाकाव्य काल—'शिलप्पधिकारम', 'मणिमेखलै' आदि काव्यो का युग, अर्थात ईसा के बाद लगभग पाचवी शताब्दी तक।

अति प्राचीन काल से ही तमिळ लोग साहित्य रचने लगे थे। उस समय का साहित्य अधिकतर पद्यमय होता था, जिसमे राजाओ के कार्य-कलाप और प्रेम आदि का वर्णन होता था। उन ग्रथो के आधार पर उस समय की घटनाओ का कोई सिलसिलेवार इतिहास तैयार नही किया जा सकता, पर उनसे उस समय की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्थाओ की जो झाकी मिलती है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। कवियो ने अपनी ललित शब्दावली मे जीवन के प्रत्येक अग का इतना रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है कि कवि सुलभ अतिशयोक्ति को छोड देने पर भी उनकी रचनाओ मे उस समय की अवस्था का बडा सुदर और जागृत चित्र मिलता है।

'अहम' और 'पुरम'—ये दोनो पद्य सग्रह है, जिनमे १००० ई० पू० से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी तक के प्रसिद्ध कवियो की कविताओ का सकलन किया गया है। इनका सकलन लगभग ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी मे किया गया था, परतु इनमे कुछ ऐसे पद्य भी है, जिनकी रचना ईसा से कई शताब्दियो के पहले ही हुई होगी। प्राचीन तमिळ की सामाजिक अवस्था, पूजाविधि तथा उस समय के युद्धो का बडा ही रोचक वर्णन इनमे मिलता है।

'अहम' मे प्रेम और वियोग का विस्तृत वर्णन है। भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे प्रेम की रीति, विवाह की भिन्न-भिन्न पद्धतिया, देश की अवस्था तथा प्राकृतिक सुदरता का मनोहर चित्र है।

'पुरम' मे राजाओ के युद्धो की, उनके बल-विक्रम की तथा उनकी दान-शीलता की कथाए है। इनमे कही-कही उस समय की सामाजिक अवस्था व देश की स्थिति की भी सुदर झाकी मिलती है।

इन दोनो सकलनो से ज्ञात होता है कि उस समय तमिळ देश कई छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त था। राजा लोग अक्सर आपस मे लडते रहते थे। युद्ध के बाद जो समय उनको मिलता था, उसे वे भोग-विलास और प्रेम-क्रीडा मे व्यतीत करते थे। उस काल के कवियो ने भी इन्ही दो व्यापारो को अपनी कविता का

विषय बनाया है। युद्ध भी प्राय. पशुओ की चोरी या इसी प्रकार के कुछ कारणो से हुआ करते थे।

इसी काल का एक प्रसिद्ध ग्रथ है 'तोळकाप्पियम'। इसके रचयिता तोळकाप्पियर जाति के ब्राह्मण थे। यही ग्रथ तमिळ भाषा का आदि व्याकरण ग्रथ है। यद्यपि इसका रचना काल कुछ विद्वानो के अनुसार ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तथा कुछ अन्य विद्वानो के अनुसार ईसा की पहली या दूसरी सदी माना जाता है, तथापि इसका वर्ण्य-विषय बहुत पुराना और ईसवी सन से कुछ शताब्दियो पूर्व का माना जाता है। इसके तीसरे खड मे कविता के विषय का विवेचन किया गया है। सस्कृति के इतिहास की दृष्टि से यह खड सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, क्योकि इसमे ईसवी सन पूर्व की सामाजिक तथा राजनैतिक अवस्था का वर्णन मिलता है। इस खड मे उस समय की युद्ध प्रणाली, सामाजिक रीति-रवाजो तथा प्रेम और विरह का बहुत ही सजीव तथा रोचक वर्णन मिलता है। 'तोळकाप्पियम' को पढने से ज्ञात होता है कि ईसवी सन की पूर्व की शताब्दियो मे दक्षिण मे आर्य-सस्कृति का प्रचार आरभ हो गया था और लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि चातुर्वर्ण की व्यवस्था स्वीकार कर चुके थे।

'तोळकाप्पियम' के बाद महाकाव्यो का युग आता है। उस काल के दो महाकाव्य बहुत प्रसिद्ध है—'शिलप्पधिकारम' और 'मणिमेखलै'। इन दोनो महाकाव्यो से देश की उस समय की अवस्था का विशद परिचय मिलता है। अब तक तमिळ देश मे आर्य-सस्कृति का बहुत प्रचार हो चुका था और आर्य तथा तमिळ—दोनो सस्कृतियो का समन्वय होने लगा था। तमिळनाडु के छोटे-छोटे राज्य अब तक बहुत प्रभावशाली और सुसगठित हो चुके थे। इनमें पाडिय, चोळ और चेर राज्य सबसे प्रसिद्ध थे। पाडियो की राजधानी मदुरा थी, चोळो की कावेरी-पू-पट्टिणम और चेर राजाओ की राजधानी अरब समुद्र के तीर पर बसी बची थी।

: १२ :

प्राचीन तमिळ् संस्कृति—२

प्रागैतिहासिक काल

प्राचीन तमिळ जलवायु और अवस्था के अनुसार देश के पाच विभाग मानते थे, जिन्हे 'तिणै' कहते थे। 'तिणै' शब्द का अर्थ है भूखड या प्रदेश। इन पाचो तिणै के नाम थे—(१) कुरिंजि (२) पालै (३) मुल्लै (४) मरुदम और (५) नेयिदल। कुरिंजि पहाडी प्रदेश को कहते है। पालै का अर्थ है समतल भूमि, जहा जल कम वरसता है। मुल्लै पहाड और तराई के बीच के वन प्रदेश को कहते है। नदी के आस-पास की समतल भूमि मरुदम कहलाती है और समुद्र के किनारे की भूमि नेयिदल। प्रत्येक प्रदेश मे भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग बसते थे, जिन्होने वहा की प्रकृति और अवस्था के अनुसार अपनी अलग-अलग सभ्यता विकसित की थी।

कुरिंजि (पहाड़ी भूमि) इस प्रदेश मे मुख्यत जगली जातिया बसती थी, जो फल-मूल खाकर अपना जीवन-निर्वाह करती थी। ये पहाडिया न वहुत ऊची थी, न वहुत नीची, पर यहा मनुष्यो के निवास करने लायक समतल भूमि थी। पहाडी के नीचे की भूमि जब घने जगलो से आच्छादित थी और हिंस्र वन्य पशुओं से भरी थी, तब आदि मानव इन पर्वतो पर हिंस्रक पशुओ और प्रकृति के कोपो से बचकर सुख से निवास करता था। दक्षिण मे सरदी और वर्षा कम पडने से पहाडियो के ऊपर खुले मैदान में जीवन व्यतीत करना वहुत आसान था। वर्षा और धूप से वचने के लिए पहाडियो की कदराए मकान का काम देती थी। सभवत द्रविड सभ्यता की पहली सीढी यही पर आरभ हुई। उसी समय आदि मानव ने प्रस्तर युग मे पत्थरो के औजार बनाना, तीर और धनुष की सहायता से पशुओ का शिकार करना और लकडी और पत्थरो के टुकडो को रगडकर अग्नि उत्पन्न करना सीखा था। पहाडो के ऊपर ऐसे प्रस्तर खडो की और उसके नीचे वासो के जगलो की कमी नही थी, जिनकी सहायता से आग पैदा की जा सकती थी। आरभ मे

कुरिंजि के निवासी कद-मूल खाकर ही अपना जीवन व्यतीत करते थे, पर तीर और धनुष का आविष्कार होने से वन्य पशुओ का शिकार करना सुलभ हो गया और कुरिंजि निवासियो के खाद्य पदार्थों मे वन्य पशुओ का मास भी शामिल हो गया।

सक्षेप मे कुरिंजि-निवासियो का जीवन आखेटक-जीवन कहा जा सकता है। धीरे-धीरे उन्होने लकडी काटकर घर बनाना भी सीखा और इस तरह उस प्रदेश मे सभ्यता के विकास की नीव पडी।

कुरिंजि प्रदेश के निवासियो की विवाह रीति भी अत्यत सरल थी। प्रथम सम्मिलन मे ही प्रेम उत्पन्न होता था और सरलता से वे पति-पत्नी बन जाते थे। सबध-विच्छेद भी अत्यत सरल था। कुरिंजि-निवासी शिकारी होते थे, इसलिए विवाह के समय अपने शिकार मे सफलता के स्मृति स्वरूप कुछ चिह्न अपनी पत्नी को भेट करते थे। प्राय यह वर द्वारा मारे हुए शेर के दात या नख होते थे, जिन्हे स्त्रिया अपने गले मे सौभाग्य का चिह्न मानकर धारण करती थी। कुछ विद्वानो का मत है कि आगे चलकर इसीने ताळी का रूप धारण किया, जो आज भी दक्षिण मे विवाहिता स्त्रियो के सौभाग्य का चिह्न मानी जाती है। दक्षिण की सभी जातियो मे विवाह के समय पति पत्नी के गले मे ताळी बाधता है। यह एक धार्मिक कृत्य माना जाता है और दक्षिण की सभी जातियो मे आज भी यह प्रथा प्रचलित है।

पालै (मरुभूमि) . साधारणत मरुभूमि मनुष्यो के निवास के योग्य स्थान नही समझी जाती। विवश होकर ही किसीको ऐसी भूमि मे निवास करना पडता है। इस प्रदेश मे बसनेवाले तमिळ लोग भी या तो अपने समाज से लड-भिडकर या अत्यत अधिक स्वतत्रता प्रेमी होने के कारण इस प्रदेश मे आ बसे होगे। यहा आकर उन्होने यहा की जलवायु के अनुसार अपनी अलग सभ्यता का विकास किया। पालै मे खाद्य पदार्थो की कमी होने के कारण स्वभावत उनमे लूट-पाट की प्रवृत्ति जागृत हुई। वे आस-पास के निवासियो की सपत्ति लूटकर अपना जीवन बिताने लगे। यहा के निवासियो को मरवर और कल्लर कहते है और ये चोरी और डकैती के लिए प्रसिद्ध है। तमिळ मे 'कल' शब्द का अर्थ होता है बल या शराब। शायद अपने व्यवसाय के अनुसार ये लोग अन्य जातियो की अपेक्षा अधिक बलवान होते थे या मरुभूमि मे ताड के वृक्ष अधिक होने के कारण मधु पीना इनको अधिक प्रिय रहा हो, इसलिए इनका नाम कल्लर पड गया हो। पीछे चलकर ये लोग

सिपहगीरी करने लगे। कुछ समय पूर्व तक ये जातिया जरायमपेशा समझी जाती थी। इनके सरदार 'काकै' कहे जाते थे और ये लोग काली की उपासना करते थे।

मुल्लै (वन प्रदेश) जब पहाडो पर खाद्य पदार्थो की कमी होने लगी, तब लाचार हो वहा के निवासियो को पहाडो से नीचे उतरकर उस प्रदेश मे आना पडा, जहा पेड-पोधे अधिक पैदा होते थे तथा चराई की सुविधा थी। यह पहाडी के नीचे का जगली प्रदेश था। अब तक ये लोग भेडे, बकरी, गाय और भैस आदि पशुओ को पालने लग गये थे। जगली प्रदेश मे चराई की सुविधा अधिक होने से भी पशु-पालन मे प्रोत्साहन मिला होगा। यहा आकर इन लोगो ने पशु-पालन को और भी दृढता से अपनाया। पहाडी जातियो का जगली प्रदेशो मे आकर बसना और पशु-पालन को जीवन का आधार बनाना सभ्यता के मैदान मे दूसरा कदम कहा जा सकता है। ये लोग कुरिजि के निवासियो मे अधिक सभ्य थे—यह बात उनमे प्रचलित विवाह-रीति से भी प्रकट होती है। प्राचीन तमिळ साहित्य मे विवाह की दो रीतिया बताई गई है—कलवु और करप्पु। कलवु के अनुसार पुरुप जबरदस्ती किसी दूसरी जाति की कन्या का अपहरण कर उसके साथ विवाह-सबध जोड लेता था। यह विवाह की पद्धति विशेषकर कुरिंजि-निवासियो के बीच प्रचलित थी। करप्पु के अनुसार विवाह की रीति अधिक सभ्य और सुसस्कृत थी। उसमे नियमानुसार वर-वधू का सम्मिलन होता था। वर वधू को ताळी पहनाता था, उसके बाद भाई-बधुओ को भोज देता था। विवाह की यह रीति मुल्लै के बीच प्रचलित होना इस बात को साबित करता है कि मुल्लै-निवासी कुरिजि और पालै-निवासियो से अधिक सभ्य थे।

प्रारभ मे विवाह-सबध कम दृढ होते थे और पति-पत्नी मे सरलता के साथ परिवर्तन होने के कारण सपत्ति के उत्तराधिकार का निश्चय करना कठिन होता था। कभी-कभी एक ही स्त्री कई पतियो से सताने उत्पन्न करती थी, इसलिए सतान के ऊपर माता का अधिकार होना स्वाभाविक था। मुल्लै की सभ्यता मे जब पशुओ की वृद्धि होने लगी और उन्हे चराने, उनकी देख-रेख करने आदि की आवश्यकता हुई, तो स्वभावत परिवार का सगठन होना शुरू हुआ और परिवारो के मुखिया उत्पन्न हुए, जो कुटुब की देख-रेख करते थे—आगे चलकर इसी मुखिया पद से राजा पद की उत्पत्ति हुई। इसी अवस्था मे भेडो के ऊन से कबल आदि बनाने का कार्य भी शुरू हुआ होगा।

नेयिदल (समुद्र के किनारे की भूमि) तमिळ देश का अतरीप तीन ओर से विशाल समुद्र से घिरा हुआ है। इसके दक्षिण मे हिद महासागर, पूरब मे बगाल की खाडी और पश्चिम मे अरब का समुद्र है। नेयिदल के निवासी 'पडवर' कहे जाते थे और ये समुद्र के किनारे छोटे-छोटे गावो मे रहते थे। समुद्र के किनारे बसने के कारण इस प्रदेश के निवासियो का ध्यान खाद्य-पदार्थो की खोज मे समुद्र की ओर जाना स्वाभाविक था। अतएव यहा के निवासी मछली पकडने और नौका-सचालन मे कुशल बने। ये नाव बनाने मे बडे चतुर थे। प्रारभ मे ये लोग हल्के लकडी के टुकडो को बाधकर नाव की शक्ल दे देते थे और उसी पर बैठकर मछली पकडने दूर-दूर तक समुद्र मे जाया करते थे। ये लकडिया इतनी हल्की होती थी कि इनके डूबने का भय नही होता था। आज भी इस तरह की नावे दक्षिण के समुद्री तटो पर सैकडो की तादाद मे देखी जा सकती है। इन्हे कट्टमर्रम कहते है। धीरे-धीरे इस जाति ने बडी-बडी नावे बनाना भी सीखा और जब मध्य युग म विदेशो के साथ दक्षिण भारत का व्यापार प्रारभ हुआ, तब इस जाति ने कुशल नाविक का कार्य किया। इस प्रदेश की मुख्य उपज मछली और नमक थी, इसलिए यहा के निवासी स्वभावत व्यापार मे रुचि लेते थे। वे बैलो और गाडियो पर मछली और नमक लादकर भीतर के प्रदेशो मे ले जाकर बेचते थे। इस तरह उनके बीच व्यापार की प्रवृत्ति का उदय हुआ।

मरुदम (नदी के किनारे की समतल भूमि) मरुदम जगली प्रदेश और समुद्र के बीच की वह समतल भूमि थी, जहा से होकर नदिया बहती थी या जहा वर्षा का पानी जमा होता था। यह प्रदेश अत्यत उपजाऊ था। यहा के निवासी खेती-बारी करके भिन्न-भिन्न प्रकार के अनाज पैदा करते थे। ये लोग सभी दृष्टियो से अन्य चारो प्रदेशो के लोगो से अधिक सभ्य और उन्नत थे। वर्तमान युग की सभ्यता का क्रोड भी यही था और यही से मनुष्यं के जीवन और निवास मे स्थायित्व का आरभ हुआ था। मरुदम के निवासी उलवर और वेळ्ळाळर कहे जाते थे। ये लोग खेती करने, पशु पालने, नदियो और तालाबो के जल से खेतो को सीचने आदि कार्यो मे अत्यत कुशल होते थे। खेती के लिए एक ही स्थान पर लगातार रहना आवश्यक होता है, इसलिए इस प्रदेश के निवासियो ने घर बनाना, खेती के साधन जुटाना और प्रतिकूल ऋतुओ के लिए खाद्य पदार्थो का सग्रह करना भी सीखा। अब वे स्थान-स्थान मे फिरनेवाले खानाबदोश नही रहे, वरन एक निश्चित

स्थान पर वसने के आदी हो गये। इसी समय धीरे-धीरे गावो का भी निर्माण हुआ। गावो के निर्माण से व्यापार को प्रोत्साहन मिला। गावो के निर्माण मे भिन्न-भिन्न प्रदेशो के निवासियो का सहयोग आवश्यक था। मरुदम मे अनेक ऐसी चीजो की कमी थी, जिन्हे दूसरे प्रदेशो से लाना पडता था। वे नमक और मछली के लिए पडवर लोगो के यहा जाते। मुल्लै के निवासियो से उन्हे दूध-दही मिलते थे और कुरिंजि के निवासी गृह-निर्माण के लिए पत्थर काटने का काम करते थे। इस तरह मरुदम की सभ्यता के विकास मे अन्य चारो प्रदेशो के निवासियो का सहयोग होता था। इस प्रदेश के निवासी अधिक सुखी, सपन्न और सुसस्कृत थे। उनका पेशा कृषि अधिक उन्नत और प्रतिष्ठित माना जाता था और यहा के रहनेवाले अधिक सभ्य समझे जाते थे। आज भी द्रविड जातियो मे वेळ्ळाळर (कृषिकार) अन्य जातियो की अपेक्षा अधिक उच्च और प्रतिष्ठित माने जाते है।

इसमे सदेह नही कि तमिळ सभ्यता का विकास इन्ही प्रदेशो मे हुआ। पर यह कहना कठिन है कि किस प्रदेश मे विशेष मानव सृष्टि सबसे पहले आरभ हुई और किस तरह वह तमिळ देश के भिन्न-भिन्न प्रातो मे फैली। विद्वानो का अनुमान है कि सबसे पहले कुरिंजि (पहाडी) प्रदेश मे मानव जीवन का आरभ हुआ होगा और वही से वह भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे फैला होगा। वह युग आजकल की तरह बिजली और हवाई जहाज का युग नही था, जबकि लोगो के रहन-सहन मे बडी शीघ्रता से परिवर्तन हुआ करता है। पता नही, इन पाच प्रदेशो के जीवन मे परिवर्तन और विकास होने मे कितने हजार वर्ष लगे थे ? पता नही, किस समय कुरिंजि-पहाडी प्रदेश मे जीवन का आरभ हुआ और मरुदम की सभ्यता तक पहुचते-पहुचते उन्हे कितने हजार या लाख वर्ष व्यतीत हुए ?

वस्तुत ये पाचो प्रकार के सगठन सभ्यता की पाच श्रेणिया है, जिनमे से होकर आदिम द्रविड समाज गुजरा और सभ्यता की ओर बढता गया। इस युग की सभ्यता का अतिम विकसित रूप मुल्लै और मरुदम मे दिखाई पडता है। अन्य भू-खडो मे व्यक्तियो के छोटे-छोटे परिवार जीविका की खोज मे घूमते-फिरते रहते थे। क्रमश इन परिवारो का एक सगठित समाज बना, जिसका एक मुखिया रहता था। ज्यो-ज्यो जनसख्या बढती गई, त्यो-त्यो लोग अधिक-से-अधिक क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाते गये। समाज का मुखिया, जो समाज की शत्रुओ

और वन्य मृगो से रक्षा करता था तथा न्याय प्रदान करता था, अब राजा बन गया। मुल्लै और मरुदम मे इन राजाओ के राज्यो का विकास हुआ होगा।

व्यापार का प्रारभ सबसे पहले एक तिणै से दूसरे तिणै के बीच हुआ होगा। व्यापार की मुख्य सामग्री नमक थी, जो समुद्र के किनारे ही पैदा होती थी और वही से भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे ले जाई जाती थी। तमिळ के 'पुरम' नामक सकलन मे नमक के बोरो से लदी हुई बैलगाडियो का रोचक वर्णन मिलता है। व्यापार की दूसरी सामग्री रही होगी खाद्य पदार्थ, शहद, मछली, आदि, जिनका परिवहन एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को होता रहा होगा। धीरे-धीरे बाजारो की प्रथा चली होगी और नगरो का बीजारोपण हुआ होगा। प्रारभ मे नगर मुख्यत राजाओ की राजधानी और व्यापार के केंद्र होते थे।

प्राचीन तमिळो का धर्म क्या था, वे किन-किन देवताओ की पूजा करते थे, इन बातो के सबध मे निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। विद्वानो ने अनेक अनुमान लगाये है और प्राचीन ग्रथो के आधार पर उस समय के धार्मिक समाज का चित्र खीचा है।

प्रारभ मे तमिळ लोग भूत-प्रेतो, वृक्षो और नागो की पूजा करते थे। तत्र-मत्र मे विश्वास करते थे और पशु-बलि द्वारा अपने देवताओ को तृप्त करने का प्रयत्न करते थे। धीरे-धीरे उनमे सस्कारो का विकास हुआ और सस्कारो मे विकास के साथ-साथ उनके धार्मिक विश्वासो मे भी परिवर्तन हुए। भूत-प्रेतो की पूजा का स्थान एक परम शक्तिमान परमेश्वर पर विश्वास ने ले लिया। सभव है इस विश्वास के मूल मे भी किसी अलक्ष्य शक्ति का भय रहा हो। पर ज्यों-ज्यो सभ्यता का विकास होता गया, भय कम होता गया और उसका स्थान प्रेम एव भक्ति ने ले लिया। इस तरह प्रागैतिहासिक युग मे ही तमिळ लोगो के हृदय मे भगवान की भावना जागृत हुई और वे आये दिन के युद्ध तथा क्रूरता को त्याग कर शाति की ओर उन्मुख हुए।

द्रविड लोगो के सबसे प्राचीन देवता शिव थे और उनका प्रतीक लिंग था। लिंग-पूजा आज भी दक्षिण मे प्रचलित है। मोहनजोदडो मे भी लिंग-पूजा के प्रमाण पाये गये है। इससे यह सिद्ध होता है कि शैव मत दक्षिण का सबसे पुराना धर्म था तथा शिव दक्षिण के सबसे बडे देवता थे।

'तोळकाप्पियम' मे मायोन, शेयोन, मुरुगन, कोर्रवै आदि देवताओ के

नाम भी मिलते हैं। इन देवताओ की कल्पना देश की अवस्था, जलवायु और भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार हुई थी। मुल्लै प्रदेश के देवता मायोन थे। मायोन का रग काला था और गोप तथा गायो के यह प्रिय देवता थे। यह अपनी वशी की मधुर ध्वनि से वन प्रदेश को गुजारित करते थे और सदा गोप और गोपिकाओ से घिरे रहते थे तथा उनके साथ नाना प्रकार की क्रीडाए और नृत्य किया करते थे। गोरस और क्षीरान्न इनके प्रिय भोज्य पदार्थ थे। द्रविडो के देवता मायोन की कल्पना उत्तर भारत के भगवान कृष्ण मे मिलती-जुलती है।

पहाडी प्रदेश के देवता शेयोन थे। इनका दूसरा नाम मुरुगन था। इनका रग लाल था और यह अत्यत सुदर माने जाते थे। यह प्रेम के देवता थे और अविवाहित कन्याए सुदर वर पाने के लिए इनकी पूजा करती थी। यह बडे शिकारी थे और भाला इनका अस्त्र था। भात और बकरे का ताजा रक्त इनका प्रसाद था और मयूर इनका वाहन। इनके मदिर प्राय ऊचे पर्वत पर होते थे। प्राचीन काल की नाग-पूजा के साथ भी इनका सबध मालूम होता है। द्रविड लोगो का विश्वास है कि यह कोर्रवै (काली) के पुत्र और युद्ध के देवता है। इन्हीको सस्कृत मे स्कद, कार्तिकेय और सुब्रह्मण्य कहा गया है। इनके वेलायुधम और दडपाणि नाम भी दक्षिण मे प्रचलित है। सुब्रह्मण्य के सबध मे आर्य और द्रविड कल्पनाओ मे एक विशेष अतर यह है कि आर्यों के देवता स्कद अविवाहित माने जाते है और द्रविडो के मुरुगन विवाहित। इनकी दो पत्निया थी, जिनके नाम है वल्ली और देवयानी। वल्ली की कल्पना पूर्णत द्रविड है। कथा है कि वल्ली शिकारी जाति की एक कन्या थी, जिस पर मोहित होकर भगवान मुरुगन ने उससे विवाह किया था। तमिळ देश मे यह कथा बहुत प्रचलित है और उसका आध्यात्मिक अर्थ भी किया जाता है।

शिव भी पहाडी प्रदेश के देवता थे। महेद्रगिरि (पश्चिम घाट की एक पहाडी) पर इनका निवास स्थान था और यह मनुष्यो के जीवन और मरण के स्वामी थे। शिव द्राविड लोगो के सबसे प्राचीन देवता है। उन्होने अगस्त्य मुनि को तमिळ भाषा सिखाई थी। तमिळ सघमो की स्थापना मे भी उन्होने योग दिया था। पीछे, जब आर्य और द्रविड सस्कृतियो का सगम हुआ, तब वेदो के रुद्र और द्रविडो के शिव मे एकता मानी गई। परतु इन दोनो मे अतर यह रहा कि शिव प्रेम और कल्याण के देवता थे और रुद्र सहार के। रुद्र का रूप अत्यत भयानक था, यह बिजली

और वर्षा के साथ आधी और तूफान की तरह ऊचे पर्वत के शिखर से पृथ्वी पर उतरते दिखाई देते थे, पर शिव प्रेम और दया के स्वरूप थे।

मरुदम के देवता का 'अहम' ग्रथ मे इस प्रकार वर्णन मिलता है—"वह मेघो का अधिपति है, उसका हथियार है वज्र। जब भूमि गरमी से सतप्त होती है, तब वह मेघो को भेजकर पानी बरसाता है। वह कई अप्सराओ से घिरा रहता है। उसका प्रिय भोज्य पदार्थ पोगल (खिचडी) है।" आजकल भी तमिळ प्रदेश मे पोगल-त्योहार के दिन (मकर-सक्राति के दिन यह त्योहार होता है) इस देवता की पूजा होती है। यही आर्यो के देवता इद्र है। यह कहना कठिन है कि वैदिक देवता इद्र और तमिळ के इस देवता मे क्या सबध है।

नेयिदल के लोगो के देवता समुद्र के अधिपति थे। मछली पकडकर जीविका चलानेवाले पडवर लोग इस देवता के उपासक होते थे। वे बडी धूम-धाम के साथ इस देवता की पूजा करते थे। तिमिगल मछली का दात इस देवता का आयुध था। यही आर्यो के वरुण है।

पालै प्रदेश की स्त्री देवता का नाम कोर्रवाई था। यह आजकल की कालिका है। यह युद्ध मे विजय प्रदान करनेवाली मानी गई थी। इसके उपासक मरवर या कल्लर लोग थे, जो आखेट आदि क्रूर कृत्यो से अपनी जीविका चलाते थे और देवता को प्रसन्न करने के लिए पशुओ तथा मनुष्यो की भी बलि चढाते थे। मदिरा और मास इस देवता के प्रिय भोज्य थे। वास्तव मे पालै प्रदेश के निवासी जैसे भयकर और क्रूर स्वभाव के थे, उनके देवता भी वैसे ही क्रूर और भयकर थे।

तोळकाप्पियर ने अपने व्याकरण के तीसरे खड मे उस युग की सामाजिक अवस्था का वर्णन किया है, जिससे मालूम होता है कि उस युग मे आर्यो के वर्णाश्रम धर्म की कल्पना देश मे फैलने लगी थी। तोळकाप्पियर ने अपनी पुस्तक मे चार वर्णो का उल्लेख किया है। अरशर (क्षत्रिय), अदणर (ब्राह्मण), वणिकर (व्यापारी) और वेळ्ळाळर (किसान)। दक्षिण की सामाजिक व्यवस्था मे वेळ्ळाळर जाति का स्थान सबसे ऊचा माना जाता था। इस जाति मे भी दो श्रेणिया थी—उच्च और निम्न।

उच्च श्रेणी के लोग प्राय छोटे राजा और जमीदार होते थे और निम्न श्रेणी के लोग किसान। इस श्रेणी के लोग बडे चतुर और बलशाली होते थे। यहा

क्षत्रिय नाम की कोई अलग जाति नही थी। उच्च वर्ग के वेळ्ळाळर, जिनका संबंध राज-परिवार से होता था, ही आर्यो द्वारा क्षत्रिय माने गये। प्राचीन तमिळ में राजा के लिए 'को' या 'कोन' नाम का प्रयोग मिलता है। इस शब्द का मौलिक अर्थ होता है--"गाय चरानेवाला"। उस जमाने मे गाय ही राजा की प्रधान संपत्ति होती थी, इसलिए को या कोन का मतलब हुआ--संपत्तिशाली। अधिक संपत्तिशाली व्यक्ति ही समाज का मुखिया बनता था। पीछे चलकर यही कोन शब्द राजा के लिए व्यवहृत होने लगा। प्राचीन तमिळ ग्रथो मे शूद्र शब्द का प्रयोग कही नही मिलता। इससे यह ज्ञात होता है कि दक्षिण की व्यवस्था मे ब्राह्मण और शूद्र जैसा भेद नही था। तमिळ लोग किसी वर्ग को इतना तुच्छ नही समझते थे कि उसे शूद्र कहकर संबोधित करते।

राज्यो के संघर्षण के साथ राजाओ के अधिकारो मे भी वृद्धि हुई। राजा ईश्वर का अंग माना जाने लगा और समाज मे उसका आदर बढ गया। तोळकाप्पियर ने राजा की तुलना पवित्र वृक्ष से और मायोन (भगवान विष्णु) से की है। राजा के पाच कर्तव्य बताये गये है--विद्या देना, यज्ञ करना, दान देना, रक्षा करना और दड देना।

'तोळकाप्पियम' से यह पता नही चलता कि राजा वशगत होता था या चुना जाता था, परतु उससे इतना अवश्य मालूम होता है कि युद्ध क्षेत्र मे वीरता दिखानेवाला योग्य राजपुरुष ही राज-पद का अधिकारी होता था। वृद्धावस्था मे राज्य छोडकर सन्यास लेने की प्रथा भी उस समय तक प्रचलित हो चुकी थी। तमिळ राजा लबे अरसे तक न्याय के साथ प्रजा-पालन करने के बाद वृद्धावस्था आने पर सिंहासन छोडकर तप करने चले जाते थे। मगध के सम्राट चद्रगुप्त और अशोक ने भी इसी नियम का पालन किया था।

लोक-जीवन की झांकी

कुर्रिजि, पालै आदि पाच प्रदेशो की हम चर्चा कर चुके है। इन भिन्न-भिन्न प्रदेशो के निवासियो ने वहा की जलवायु और भौगोलिक स्थिति के अनुसार अपनी अलग-अलग सभ्यता व संस्कृति का विकास किया था। प्रत्येक प्रदेश के अलग-अलग देवता, अलग-अलग धार्मिक विश्वास तथा अलग-अलग रहन-सहन थी।

सभी प्रदेशो मे विकास की गति एक जैसी नही थी—कुछ प्रदेश अधिक उन्नत और सभ्य थे, तो कुछ अपेक्षाकृत अवनत दशा मे थे। कुरिंजि के निवासी कदराओ मे अर्धनग्न अवस्था मे रहते थे, कौडियो की मालाए पहनते थे और जगली फूलो और पत्तो से अपने शरीर को सजाते थे, तो इसके विपरीत मरुदम के निवासी खेती-बारी करते थे, पशुओ को पालते थे और गावो मे घर बनाकर रहते थे। तमिळ के 'अहम' व 'पुरम' ग्रथो मे उक्त पाचो प्रदेशो की सुदर झाकी मिलती है, जिससे उस समय की सामाजिक अवस्था और भिन्न-भिन्न प्रदेशो के लोगो के रहन-सहन का ज्ञान होता है।

कुरिजि प्रदेश का जीवन कुरिजि प्रदेश पहाडी होने के कारण वहा खेती-बारी की सुविधा बहुत कम थी, अतएव वहा के निवासियो को प्राय जगलो मे मिलने-वाले फल-मूल खाकर अपना जीवन निर्वाह करना पडता था। यहा के लोगो के मुख्य खाद्य पदार्थ थे जगलो मे मिलनेवाले फल-मूल, जैसे कटहल, शकरकद, एक प्रकार के बास के बीज, झाडो से मिलनेवाला धान्य और शहद। ये चीजे कुरिजि प्रदेश मे प्रचुर मात्रा मे मिलती थी और इनके लिए वहा के लोगो को कोई विशेष परिश्रम नही करना पडता था। इस प्रदेश के कवियो ने अपनी कविताओ मे इन्ही बातो का उल्लेख किया है। कुरिंजि का एक कवि कहता है

"कुरिंजि के निवासी अपने प्रिय जन्मस्थान को छोडकर जाना नही चाहते, क्योकि वहा वृक्षो की डालो से मधुमक्खियो के छत्ते लटक रहे है, पेडो मे बडे-बडे फलो के गुच्छे लग रहे है, स्वच्छ जल की धाराए माला के समान पर्वतो के गले से नीचे उतर रही है, पहाडो के बाजू मे अनेक प्रकार के अन्न उपजते है और भूमि अत्यत उपजाऊ है।" एक और कवि किसी राजा को सबोधित करके कहता है—"हे राजन! तुम्हारी भूमि जोते बिना ही चार प्रकार के खाद्य पदार्थ प्रजा को प्रदान करती है—पहले तो बासो की झुरमुट मे, जिसमे छोटे-छोटे सुदर पत्ते लगे है, धान उपजता है। दूसरा, कटहल के फल मे मधुर गूदा भरा है, तीसरा, शकरकद की लता मे मोटे-मोटे कद लगे है। चौथा, जब बदर वृक्षो की डालियो पर उछलता है, तो शहद के छत्ते से पत्थरो पर शहद टपकने लगता है।" ये चारो प्रकार के भोजन कुरिंजि निवासियो के लिए सदा सुलभ थे, जिन्हे खाकर कुरिंजिवासी सतुष्ट रहते थे।

यहा के निवासी यद्यपि पहाडो मे रहते थे, उनका जीवन प्रेम से शून्य नही था।

उनके बीच प्राय स्वच्छद प्रेम की परिपाटी प्रचलित थी। जगलो और पहाडो मे प्रेमियो का मिलन होता था और उनमे प्रेम पैदा हो जाता था। फिर वे एक-दूसरे को चाहने लगते थे और अत मे विवाह बधन मे बधकर सुखी जीवन व्यतीत करते थे। कवि ने इस प्रात के प्रेम का चित्र इन शब्दो मे अकित किया है—प्रेमिका अपने प्रेमी से कहती है—"मेरी माता और तुम्हारी माता के बीच मे क्या सबध है ? (कुछ भी नही)

"मेरे पिता तुम्हारे पिता के कौन होते है ? (कोई भी नही)

"तो भी हम दोनो का सम्मिलन किस प्रकार हुआ ? (यह आश्चर्य की बात है)

"जिस प्रकार वर्षा का जल ऊपर से गिरकर भूमि मे समाकर अदृश्य हो जाता है, उसी तरह हम दोनो के हृदय एक-दूसरे से मिलकर एक हो गये है।"

आगे एक पद्य मे कवि वियोग का वर्णन करता है

"ज्वार के खेत के रखवाले द्वारा छोडे गये गुलेल से चौककर जब हरिणी बास की हरी शाखा को छोड देती है, तब वह शाखा बसी के अकुश की तरह झटककर अपनी जगह पर पहुच जाती है, इसी तरह मेरा हृदय भी बार-बार उस जगह पर पहुच जाता है (जहा उसके साथ मेरा प्रथम सम्मिलन हुआ था)।"

पालै प्रदेश का जीवन पालै की भूमि अनुपजाऊ और ऊसर थी। इसलिए यहा के निवासियो को अधिक कष्टमय जीवन व्यतीत करना पडता था और अपनी जीविका के लिए चोरी, डकैती आदि कर्मों का भी सहारा लेना पडता था। इसलिए स्वाभावत इस प्रदेश के लोग साहसी और योद्धा होते थे। कभी-कभी इनके भिन्न-भिन्न दलो मे भयकर युद्ध भी हुआ करते थे। युद्ध मे प्रत्येक प्रदेश के निवासी अलग-अलग रग और किस्म का फूल उपयोग करते थे। प्रत्येक प्रदेश का अलग चिह्न होता था, जो प्राय कोई पुष्प-विशेष होता था। उस प्रात का योद्धा युद्ध के समय अपने प्रदेश मे उत्पन्न होनेवाले पुष्प-विशेष की माला पहनकर या उसे सिर मे बाधकर युद्ध क्षेत्र मे उपस्थित होता था।

मरुभूमि मे पानी कम बरसता है और खेती-बारी की सुविधा नहीं रहती। वहा के निवासियो को तालाबो और कुओ का गदा पानी पीना पडता है और जगली पेडो के फल खाकर अपना जीवन बिताना पडता है। ग्रीष्मकाल मे मरुभूमि

की भयकरता का क्या कहना! उसका वर्णन करता हुआ एक कवि लिखता है

"सध्या के समय पहाडो की श्रेणी मे सूर्य वहुत देर तक टिका रहता है और उसकी धूप पृथ्वी पर सफेद चादर की नाई फैली रहती है। भूखा भेडिया हिरण को मारकर खाता है और उसके खाने के वाद वचा हुआ मास ही मरुभूमि मे यात्रा करनेवाले पथिको का सवल होता है। निश्चय हा इस भूमि मे यात्रा करना अत्यत कष्टदायक है।"

पालै प्रदेश का एक दूसरा सरस वर्णन देखिये—"मरुभूमि की वालुका पर, जहा ज ग की धारा सपूर्ण रूप से अदृश्य हो गई है, झुके पखोवाले पक्षियो के चलने-फिरने के निशान वन गये है। जव मद-मद उत्तरी पवन चलने लगता है, तो गन्ने के ऊपर लगे सफेद-सफेद फूल फैलकर ऐसे लगते है, मानो किसी राजा के निकट चवर डुल रही हो। नीले आसमान पर मडरानेवाले मेघ-मडल के मध्य से छिपता-निकलता हुआ सूर्य ऐसा लगता है, मानो वह नीद मे अपनी आखे खोलता-मूदता हो। दिन व्यतीत होता है, सध्या आती है, सध्या के उपरात अर्ध निशा व्याप्त होती है और ओस-कण सर्वत्र विखर जाते है।"

कितना वास्तविक और विवग्राही चित्रण है!

कुरिजि और पालै प्रदेशो मे वहुत काल तक मातृसत्तात्मक सस्कृति प्रचलित थी। पिता की अपेक्षा माता के अधिकार अधिक होते थे। विशेषकर ऐसे प्रात मे, जहा पुरुषो का जीवन लडाई-झगडे और चोरी डकैती पर निर्भर रहता हो, परिवार की देख-रेख के लिए स्त्रियो पर अवलवित रहना स्वाभाविक ही था और शायद इसीलिए पालै प्रदेश मे देवता की अपेक्षा देवी की पूजा का अधिक प्रचार था, जैसाकि हम पहले लिख चुके है।

मुल्लै प्रदेश का जीवन मुल्लै मे चारे की सुविधा अधिक होने से यहा के निवासी प्राय पशु-पालक होते थे और चारे की तलाश मे नदियो के किनारे-किनारे फिरा करते थे। इनका जीवन अत्यत मधुर, सुखमय, सरल और विनोदपूर्ण होता था।

इस प्रात से सवध रखनेवाले साहित्य मे वियोग और सम्मिलन की वडी हृदयस्पर्शी कल्पनाए पाई जाती है। मुल्लै जगली प्रात होने से वसत ऋतु मे यहा की वन-शोभा वडी ही निराली होती होगी। भला कवि उसका वर्णन करने से कैसे

चूक सकता था। मुल्लै मे वसत ऋतु की शोभा का वर्णन कवि निम्नलिखित शब्दो मे करता है

"पौधो के पीले पत्ते झड गये है और उनमे सुदर नई कोपले निकल आई है, वाडो पर फैली हुई चमेली पुष्पिता हो गई है, कनेर ने सुवर्ण रग के पीले फूल धारण किये है, छोटी-छोटी डालोवाली काया पर लगे हुए नीले फूल सुदर नीलमणि के गुच्छो जैसे दिखाई देते है। देखो, प्रेम से मत्त हिरण अपनी सगिनी की खोज मे इधर-उधर दौड रहा है, जो अपने भयभीत छौने के पीछे-पीछे झुड से दूर मैदान की ओर भाग गई है।"

देखा आपने, मुल्लै के कवि का प्रकृति वर्णन। पर यह वात नही कि इस प्रदेश मे सब लोग सुखी और सपन्न ही थे। भारत के भाग्य मे दरिद्रता अतीत काल से लिखी हुई है। कवि एक गरीब परिवार का निम्न प्रकार वर्णन करता है

"चूल्हे मे कई दिनो से आच नही पडी है, जिससे वह रसोई की याद भी भूल गया है, उस पर कुकुरमुत्ते निकल आये है। घर की स्त्री उस भूख से पीडित है, जो शरीर को सुखाकर काटा वना देती है। उसका दूध से रिक्त स्तन चमडे की थैली मात्र रह गया है, उसके दूध निकलनेवाले छिद्र वद हो गये है और गोद का वच्चा उसी सूखी चमडी को चवाता हुआ रो रहा है, मेरी स्त्री उस रोते वच्चे को देखती है और उसके आखो मे अश्रु भर आते है।"

कितना यथार्थ और करुणापूर्ण वर्णन है!

नेयिदल दक्षिण भारत के तीन ओर विशाल समुद्र-तट है, जिसके किनारे अनत काल से मछुओ की वस्तिया आवाद है। इस समुद्री प्रदेश को तमिळ साहित्य-कारो ने नेयिदल प्रदेश नाम दिया है। यहा की सभ्यता उपर्युक्त तीनो प्रदेशो की सभ्यता मे भिन्न थी। समुद्र के किनारे पर निवास करने से यहा के निवासी समुद्री साधनो का उपयोग करने और मछली पकडने मे कुशल वन गये थे।

साधारणतया लोग मछुए के पेशे को निम्न श्रेणी का मानते है, परतु प्रकृति-प्रेमी तमिळ कवियो के लिए यह विषय भी काव्योचित ही था। एक कवि मछुओ का वर्णन निम्नलिखित शब्दो मे करता है

"मत्त हाथियो के समान शरीरवाले मछुए लवे वासो से अपनी नाव खे रहे है और वादलो के समान गरजनेवाले समुद्र मे वटी हुई रस्सियो के जाल फेक रहे है।"

मछुए प्राय देखने मे काले और शरीर से वलिष्ट होते है। मत्त हाथियो से इनकी उपमा कितनी सुदर है! इन मछुओ का जीवन भी प्रेम और रस से शून्य नही था। एक सुदर कविता मे एक मछुआ कन्या अपने प्रेमी से रात भर ठहर जाने के लिए प्रार्थना करती हुई कहती है

"चमकदार चूडियोवाली धीवर कन्या उस काली आखोवाली सध्या का स्वागत करती है, जो इस वात की सूचना देती है कि जो सूर्य पूर्व के समुद्र से उदय होकर दिन भर अपनी स्वच्छ किरणे फैलाता रहा, वह अव पश्चिम की पहाडियो मे जा छिपा है। मछली की चरवी से जलनेवाले दीपक की नीली लौ के रगवाले समुद्र की गडगडाहट से सारा गाव प्रतिध्वनित हो रहा है। मेरे सवधी, जो हमारे जालो को फाडकर निकल जानेवाले दुष्ट मगरो का शिकार करने गये है, कभी खाली हाथ नही लौटेगे। क्या तुम आज रात भर यहा ठहरकर विश्राम नही कर सकोगे?"

भाव यह है कि मछुओ के शीघ्र घर लौटने की सभावना नही है, इसलिए प्रेमिका अपने प्रेमी से रात भर ठहरने का आग्रह कर रही है। "चरवी से जलनेवाले दीपक की लौ के समान नीला समुद्र"--"काली आखोवाली सध्या"--कितनी स्वाभाविक उपमाए है! निश्चय ही इसका रचयिता कोई मछुआ कवि ही रहा होगा!

इस प्रदेश के कवियो ने वियोग का भी वडा मार्मिक वर्णन किया है। प्राय इस प्रदेश मे वियोग दीर्घकालीन होता था। नाविक जव अपनी नावो को लेकर दूर देश की यात्रा करते थे, तव उनके लौटने मे विलब होना स्वाभाविक था, जिससे वियोग की अवधि लवी हो जाती है। कभी कभी समुद्र मे दुर्घटनावश स्थायी वियोग की भी सभावना होती थी। इसलिए इस प्रदेश से सवध रखनेवाली कविताओ मे वियोग का अधिक करुणापूर्ण वर्णन होना ही चाहिए। ,किसी स्त्री का प्रेमी, वदरगाह का स्वामी, दूर समुद्र पर चला गया है और उसके लौटने मे वहुत देर हो गई है। स्त्री अपना दुख इन शब्दो मे व्यक्त करती है—"मेरा सौंदर्य फीका पड गया है, मेरे कधो का आकर्पण चला गया है, मेरा मन खट्टा हो गया है और मेरा चेहरा मुरझा गया है। जहा समुद्र की लहरे जगली फूलो को विखेरती है और जहा समुद्र के राजहस क्रीडा करते है, उस सुदर वदरगाह के स्वामी के साथ हसने-खेलने का यह कैसा दुष्परिणाम है!"

• **मरुदम प्रदेश का जीवन** मरुदम वह समतल भूमि थी, जहा वर्पा का पानी

एकत्रित होकर भूमि को सिचित करता था और उर्वर बनाता था और जहा खेती-बारी की सुविधाए विशेष रूप मे प्राप्त थी। इस प्रदेश के निवासी तालाबो मे वर्षा का जल सग्रह कर उससे सिचाई का काम लेने मे बडे पटु थे। तमिळनाडु मे अनत काल से तालाबो के जल से खेतो को सीचने की परिपाटी चली आई है और आज भी यहा हजारो तालाब है, जिनसे सिचाई का काम लिया जाता है। एक तमिळ कवि इस दृश्य का वर्णन करते हुए लिखता है

"विशाल तालाब का जल नहरो से होकर खेतो मे बह रहा है। सीगी मछली धारा के विरुद्ध तैरने का प्रयत्न कर रही है, पर बहकर खेत मे चली जाती है जहा किसान भैसो से हल जोत रहे है। भैसो के खुर की मिट्टी से मछली के सफेद चोइटे मटीले हो गये है और वह बहकर हल की सिरा मे लुढक गई है।"

सभ्यता के विकास मे मुल्लै और मरुदम प्रदेशो के निवासी बहुत आगे बढे हुए थे। यहा के निवासी खेती-बारी करते थे, घर बनाकर रहते थे, जोतने-बोने की क्रिया जानते थे और सिचाई का कार्य जानते थे। ये सारी बाते इस बात को प्रकट करती है कि ये लोग अन्य प्रदेशो के निवासियो की अपेक्षा अधिक सभ्य व सुसस्कृत थे।

पाच तिणै के इस सक्षिप्त वर्णन से प्राचीन तमिळ देश के जीवन की एक झाकी मिलती है।

: १३ :

प्राचीन तमिळ् संस्कृति—३

तिरुक्कुरल युग 'तिरुक्कुरल' का समय ईसा से पूर्व पहली शताब्दी माना जाता है। 'तोळकाप्पियम' के बाद तिरुवल्लुवर द्वारा रचित यही ग्रथ सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, आज भी जिसकी उपयोगिता कम नही हुई है। इसमे 'मुप्पाल' अथवा धर्म, अर्थ, और काम—प्रत्येक विषय पर विस्तार से लिखा गया है।

'तिरुक्कुरल' की रचना के समय दक्षिण में राजतत्र का बहुत-कुछ विकास हो चुका था। सामाजिक जीवन भी बहुत प्रगति कर चुका था और दूर-दूर के देशो के साथ तमिळ देश का व्यापारिक सबध स्थापित हो चुका था। राज्य का विस्तार हो जाने के कारण किसी राजा के लिए अकेले देश का शासन करना और उसके भिन्न-भिन्न विभागो पर नियत्रण रखना सभव नही था। अतएव राज्य के कई अग बन गये थे और शासन-प्रबध भी जटिल हो गया था। शासन के कार्य मे सहायता देने के लिए अनेक पदाधिकारियो की नियुक्ति होने लगी थी। गावो और नगरो का शासन प्राय वहा के स्थानीय अधिकारियो के हाथ मे रहता था और केंद्रीय सरकार का मुख्य कार्य इन स्थानीय शासको पर नियत्रण रखना, देश मे शाति कायम रखना और बाहरी शत्रुओ से उसकी रक्षा करना मात्र रह गया था। राज्य के छ अग माने जाते थे—सेना, देश, खजाना, मत्री, सहायक-मित्र और दुर्ग। राजा का मुख्य कर्तव्य इन छहो साधनो का युक्ति से पालन करना, प्रजा के हितो की रक्षा करना तथा त्रिवर्गीय उन्नति (अर्थ, धर्म और काम) मे उनकी सहायता करना होता था। अपने कर्तव्य से च्युत होनेवाले और विषयो मे अत्यधिक अनुरक्ति रखनेवाले राजा की निदा होती थी। तिरुवल्लुवर ने लिखा है—"जो राजा उदार, दयालु और न्यायनिष्ट है और जो प्रेम के साथ अपनी प्रजा का पालन करता है, वह राजाओ के बीच सूर्य के समान है।"

तिरुवल्लुवर ने राजा के गुणो की व्याख्या करते हुए लिखा है—"राजा को उदार साहसी, बुद्धिमान और क्रियाशील होना चाहिए। उसे धर्म से कभी नही

च्युत होना चाहिए। अपनी इज्जत की रक्षा करनी चाहिए और सत्य पथ का त्याग कभी नही करना चाहिए। राजा को अपने साधनो की वृद्धि और धन की रक्षा का भी ज्ञान होना चाहिए। अनुशासन का पालन करते हुए भी प्रेम से शासन करना चाहिए। उसे मृदुभाषी होना चाहिए और समस्त प्रजा की उस तक पहुच होनी चाहिए। उसे निष्पक्ष न्यायी होना चाहिए और अप्रिय वचनो को भी सहने की शक्ति उसमे होनी चाहिए।"

राजा का सबसे बडा गुण प्रजा-वत्सलता बतलाया गया है। तिरुवल्लुवर ने लिखा है कि "जो राजा अपने राज्य की प्रजा पर प्रेमपूर्वक शासन करता है, उससे राजलक्ष्मी कभी पृथक नही होगी। जिस राजा की प्रजा आसानी से उसके पास नही पहुच सकती और जो ध्यानपूर्वक उनकी शिकायतो को नही सुनता, वह अपने पथ से भ्रष्ट हो जायगा और शत्रुओ के न होने पर भी उसका राज्य नष्ट हो जायगा।"

राजा को विद्वान और बुद्धिमान होना चाहिए। "बुद्धि ऐसा दुर्ग है, जिसे शत्रु भी घेरकर नही जीत सकता।" उसे योग्य पुरुषो से मित्रता करनी चाहिए। सुयोग्य पुरुषो से सलाह लेकर अपनी शक्ति, अवसर और स्थान का विचार करके कार्य करना चाहिए। कजूसी, अहकार, बेहद ऐयाशी आदि दोषो से दूर रहना चाहिए। परीक्षा करके योग्य व्यक्तियो को अपना सेवक बनाना चाहिए। जुल्म और अत्याचार राज्य के शत्रु के समान है। "वर्षाहीन आकाश के नीचे पृथ्वी की जो दशा होती है, ठीक वही दशा निर्दयी राजा के राज्य मे प्रजा की होती है।"

राज्य के सरक्षण और व्यवस्था के लिए योग्य मत्रियो का होना भी अत्यत आवश्यक है। मत्रियो के सबध मे कवि ने लिखा है कि मत्रियो को विद्वान और कार्य-परायण होना चाहिए। उन्हे खूब सोच-विचारकर कार्य करना चाहिए। केवल पुस्तकीय ज्ञान मे दक्ष होना पर्याप्त नही। उनमे अनुभवजन्य ज्ञान भी होना चाहिए। उन्हे सत्य, पर अरुचिकर, बात भी राजा को बताने मे झिझकना नही चाहिए। "जो मत्री मत्रणा-गृह मे बैठकर अपने ही राजा के सर्वनाश की युक्ति सोचता है, वह सात करोड शत्रुओ से भी अधिक भयकर है।"

सेना—तिरुवल्लुवर ने राज्य के भिन्न-भिन्न अगो पर भी विचार किया है। राजा के पास सगठित और बलवती सेना होनी चाहिए, जो "खतरे से भयभीत न हो, जिसमे अनेक मजे हुए बहादुर सिपाही हो और जो कभी हारना न जाने। ऐसी सेना का स्वामी अवश्य युद्ध मे विजयी होगा।"

दुर्ग—राजा के पास सुदृढ दुर्ग भी होना चाहिए। दुर्ग के चार गुण बतलाये गये है—ऊचाई, मोटाई, मजबूती और अजेयत्व। "दुर्ग दुर्बलो के लिए, जिन्हे केवल अपने बचाव की चिंता होती है, उपयोगी होते है, साथ ही बलवान और शक्तिशाली के लिए भी वे कम उपयोगी नही होते।"

देश—"वही देश महान है, जो अन्न पैदा करने मे कभी नही चूकता, जो अकाल, महामारी और शत्रुओ के आक्रमण से सुरक्षित है, जो परस्पर युद्ध करनेवाले दलो मे विभक्त नही है, जिसके अदर देश का सर्वनाश करनेवाला कोई देशद्रोही नही है और जो शत्रुओ के हाथो कभी बरबाद नही हुआ।"

मित्र—तिरुवल्लुवर ने सच्ची मित्रता को राज्य का पाचवा अग माना है। वह लिखते है कि शत्रुओ से रक्षा करने के लिए मित्रता के समान दूसरा कोई कवच नही। मित्रो का अर्थ हसी-दिल्लगी करनेवाली गोष्ठी नही। परतु "जो व्यक्ति तुम्हे बुराई मे बचाता है, नेक रास्ते पर चलना सिखाता है और मुसीबत के वक्त साथ देता है, वही सच्चा मित्र है।" राजा को इस बात की चेतावनी दी गई है कि बिना अच्छी तरह जाच किये वह किसी को मित्र न बनाये। "जिस व्यक्ति को तुम अपना मित्र बनाना चाहते हो, उसके गुण-दोषो का और उसके साथियो के सबध मे विचार करने के बाद ही उसे अपना मित्र बनाओ। मतलबी, अक्खड, मूर्ख, खुशामदी, ऐसे लोगो से मित्रता करने की अपेक्षा अकेले रहना हज़ार दर्जा बेहतर है।"

गुप्तचर—शासन मे गुप्तचरो का स्थान सदैव महत्वपूर्ण रहा है। तिरुवल्लुवर के समय मे भी गुप्तचरो द्वारा प्रजा के दुख-सुख का सवाद पाने की परिपाटी प्रचलित थी। कवि ने लिखा है कि "राजनीति और गुप्तचर राजा की दो आखे है, जिनसे वह देखता है। जो राजा गुप्तचरो और दूतो के द्वारा अपने चारो तरफ होनेवाली घटनाओ की खबर नही रखता, वह कभी दिग्विजयी नही हो सकता।"

मालूम होता है तिरुवल्लुवर के समय मे भी मत्रियो और सभासदो मे वाक्पटुता की उसी तरह सराहना होती थी, जिस तरह आज कौसिलो मे होती है। अच्छी वाक्शक्ति रखनेवाले सभासदो का उस समय भी विशेष आदर होता था। कवि ने लिखा है—"वाक्शक्ति निस्सदेह ईश्वर का एक वरदान है।" कवि ने एक पूरा परिच्छेद वाक्पटुता की प्रशसा मे लिखा है और अत मे वह कहते है, "जो

लोग अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान को समझाकर दूसरो को नही बता सकते, वे उस फूल के समान है, जो खिलता नही और दूसरो को सुगध नही देता।'

राजदूत—राजदूतो का कार्य उस समय भी बहुत कठिन एव महत्वपूर्ण था, इसलिए कवि ने राजदूतो के गुण विस्तार के साथ लिखे है। उनकी दृष्टि मे, "वही व्यक्ति राजदूत होने लायक है, जिसमे तीक्ष्ण बुद्धि और सम्यक ज्ञान हो, जिसका मुखडा सुदर और रोबीला हो, जो ऊचे खानदान का हो, जो राजाओ को खुश करने का तरीका जानता हो, जो वाक्पटु हो, जो अप्रिय बातो को भी मधुर वाणी मे कह सकता हो, जो विद्वान हो और प्रभावोत्पादक वक्तृता दे सकता हो, जो निर्भीक और प्रत्युत्पन्नमति (हाजिरजवाब) हो, जो दृढप्रतिज्ञ, पवित्र-हृदय और प्रसन्नचित्त हो, जो अपने मुख से कभी अयोग्य और हीन वचन नही निकालता हो, जो मौत का सामना होने पर भी कर्तव्य-पथ से विचलित नही होता हो, ऐसा ही व्यक्ति राजदूत के पद पर नियुक्त करने के लायक है।"

तिरुवल्लुवर की रचना से हमे ज्ञात होता है कि उस समय तक तमिळ देश अनेक क्षेत्रो मे प्रगति कर चुका था। उनके समय मे दक्षिण मे आर्य-सस्कृति और आर्य-ग्रथो का भी प्रचार था, यह तथ्य इस बात से प्रगट होता है कि 'कुरल' के बहुत से विचार कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से समता रखते है। बहुत सभव है कि तिरुवल्लुवर ने उस ग्रथ का भी अध्ययन किया हो और वह आर्यावर्त मे प्रचलित राजतत्र का पूर्ण ज्ञान रखते हो।

: १४ :

प्राचीन तमिळ् संस्कृति—४

महाकाव्य काल

तिरुक्कुरल-काल के बाद तमिळ देश मे महाकाव्यो का काल आता है। इस समय 'मणिमेखलै' और 'शिलप्पधिकारम' नामक दो महाकाव्य रचे गये। अब तक तमिळनाडु के राज्य काफी सगठित और प्रभावशाली हो चुके थे। पाडिय, चोळ और चेर राज्यो की स्थापना हो चुकी थी। समाज पर्याप्त उन्नति कर चुका था। कई बडे-बडे शहर आबाद हो चुके थे, जो उस समय की सभ्यता और सस्कृति, विद्या और कला, व्यापार और कारीगरी के केंद्र बन गये थे। उस काल मे देश मे जैन और बौद्ध धर्मो का बहुत प्रचार था और देश के कई भागो मे उनके मदिर और विहार बन चुके थे। उस समय के नगरो मे कावेरि-पू-पट्टिणम, उरैयूर, वची, काची, मदुरा आदि मुख्य थे। उपर्युक्त दोनो महाकाव्यो मे उस समय की राजनैतिक अवस्था, सामाजिक जीवन, देश की स्थिति और तमिळ लोगो के आचार-विचार का अत्यत रोचक वर्णन मिलता है। इन्ही ग्रथो के आधार पर उस काल की तमिळ सस्कृति की एक झाकी उपस्थित की जाती है।

महाकाव्यो के काल मे राज्यो का सगठन सुदृढ हो जाने और राजाओ का बल बढ जाने से उनमे साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा तीव्र हो उठी थी। वे सदा एक-दूसरे से युद्ध मे सलग्न रहते और अपना राज्य बढाने के प्रयत्न मे लगे रहते थे।

दक्षिण के कुछ राजाओ ने विध्य पर्वत को पारकर हिमालय तक अपने राज्य की सीमा बढाने का प्रयत्न किया था। करिकाल चोळ इस महत्वाकाक्षा का अग्रणी माना जाता है। सबसे पहले वही उत्तर के राजाओ को पराजित कर अपनी दिग्विजय का डका बजाता हुआ हिमालय तक जा पहुचा था। इस कथा का जिक्र 'शिलप्पधिकारम' मे मिलता है, यद्यपि इसके लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त नही। पाडिय, चोळ और चेर अक्सर एक-दूसरे पर अपना प्रभुत्व स्थापित

करने के लिए युद्ध किया करते थे। सबकी इच्छा यही रहती थी कि अन्य राज्यो को मिटाकर हम सारे दक्षिण मे एक केंद्रीय राज्य स्थापित करे। जो राजा अनेक राजाओ पर विजयी होता था, वह सात मुकुटो की माला अपनी दिग्विजय के चिह्न-स्वरूप गले मे धारण करता था। चेर राजा अपने को इस आदर के हकदार मानते थे।

राजा का पद प्राय परपरागत होता था, यद्यपि कभी-कभी राजा के अयोग्य होने पर या उसकी नि सतान मृत्यु होने पर राजा को चुनने की भी प्रथा प्रचलित थी। राजा को चुनने की एक अनोखी प्रथा का भी उल्लेख प्राचीन ग्रथो मे मिलता है। जब कोई राजा अपना उत्तराधिकारी छोडे बिना मर जाता था और गद्दी के लिए राज-परिवार के लोगो मे स्पर्धा और झगडा आरभ हो जाता था, तब राज-घराने के युवको की एक सभा की जाती थी और राजा के हाथी की सूड मे एक माला देकर उसकी आखे बद कर दी जाती थी। वह हाथी जिस राजपुरुष के गले मे माला डाल देता था या जिसे अपनी पीठ पर बिठाकर लाता था, वही राज-पद के योग्य समझा जाता था और उसीको सिहासन पर बिठाया जाता था।

राजा प्राय वैधानिक रूप से, पूर्व निश्चित नियमो के अनुसार, प्रजा के हित के लिए देश का शासन करता था। कुशासन के बुरे नतीजो से वह अच्छी तरह परिचित होता था। 'मणिमेखलै' मे एक अत्याचारी राजा का वर्णन निम्न-लिखित शब्दो मे किया गया है

"यदि राजा अपने न्याय-पथ से भ्रष्ट हो जाय, तो आसमान के ग्रह अपना मार्ग बदल दे, यदि ग्रह अपना मार्ग बदल दे, तो निस्सदेह पृथ्वी पर वर्षा होना बद हो जाय और भूमि पर कोई जीव-जतु जीवित न रहे। फिर तो यह कहने का अव-सर ही न हो कि पृथ्वी का शासन करनेवाला राजा सब जीवो को अपने प्राण समान समझता है।"

राजा के लिए यह आवश्यक था कि यह अपने योग्य पुत्र को ही अपना उत्तरा-धिकारी बनाये। अत्याचारी पुत्रो को दड देना भी राजा के लिए उचित और आवश्यक था। 'पळमोळि' नामक ग्रथ मे मनुनीतिचोळन नामक एक राजा के सबध मे एक कथा का उल्लेख है कि उसने अपने पुत्र को रथ के नीचे दबवा दिया था। राजकुमार का अपराध यह था कि उसने एक गाय के बछडे को अपने रथ के नीचे दबाकर उसे मार डाला था। गाय ने राजा के दरबार मे आकर फरियाद की थी। यह कहना कठिन है कि यह कथा कहा तक सच है, परतु इससे राजा के

न्याय की पराकाष्ठा मालूम होती है। तमिळ राजाओ के न्याय विचार की अनेक कथाए तमिळ साहित्य मे मिलती है।

योग्य राजा मे इन गुण होना आवश्यक समझा जाता था—युद्ध क्षेत्र मे दृढ रहना, भागते हुए शत्रु का पीछा न करना, एक ही स्त्री से विवाह करना, विद्वान और निष्पक्ष न्यायाधीशो को नियुक्त करना, उचित न्याय करना और सबसे मित्रता का व्यवहार करना, आदि।

राजाओ के वृद्धावस्था प्राप्त होने पर सिंहासन छोडकर सन्यास ग्रहण करने की प्रथा तो तोळकाप्पियर के समय मे ही तमिळ देश मे प्रचलित हो गई थी। इस रीति के अनुसार अनेक चोळ राजाओ ने वृद्धावस्था मे सन्यास ग्रहण किया। था

ब्राह्मणो के प्रभाव मे आकर अनेक तमिळ राजा क्षत्रिय बन गये थे और यज्ञ आदि कर्म करने लगे थे। कई तमिळ राजाओ के यज्ञ करने का उल्लेख प्राचीन ग्रथो मे मिलता है। अनेक यज्ञ करने के कारण एक राजा का नाम ही राजसूयम-वेत्ता पेरुनर्रकिल्लि पड गया था। ब्राह्मण लोग इन यज्ञो मे पुरोहित का कार्य करते थे। ब्राह्मणो के प्रभाव के कारण राजाओ के नामो मे भी परिवर्तन हुए। शुद्ध तमिळ नामो का स्थान आर्य नामो ने ले लिया। ईसा की चौथी शताब्दी के पहले के प्राय सभी राजाओ के लबे-लबे शुद्ध तमिळ नाम मिलते है, उसके बाद आर्य नामो का प्रचार आरभ होता है। ब्राह्मण लोग कभी-कभी मत्री या आमात्य का कार्य भी करते थे और युद्ध काल मे राजा की विजय के लिए भगवान से प्रार्थना किया करते थे।

तमिळ राजा प्राय उदार और दयालु होते थे। वे स्वेच्छाचारी नही होते थे। वे सदैव अपने मत्रियो और पुरोहितो की सलाह से प्रजा की इच्छा के अनुसार ही शासन किया करते थे। वे अपनी प्रजा को पुत्रवत मानते थे और सदा उसके कल्याण की बाते सोचा करते थे। तमिळ के प्राचीन कवियो ने अपनी रच-नाओ मे राजा को प्रजावत्सल और न्यायी बनने का उपदेश दिया है। तमिळ राजा सदैव प्रजा का प्रेमपात्र बनने का प्रयत्न करते और अपनी भूलो के लिए अपने को दडित करने मे कभी सकोच नही करते थे। 'शिलप्पधिकारम' के नायक निरपराध कोवलन को मृत्यु दड देने के बाद जब पाडिय राजा नेडुजेलियन को अपनी भूल मालूम हुई, तब उसने आत्महत्या कर ली। ऐसी थी तमिळ राजाओ की न्यायप्रियता !

राजा के कर्तव्य--'शिलप्पधिकारम' और 'मणिमेखलै' मे राजा के क्या-क्या कर्तव्य है, इसकी चर्चा विस्तार के साथ की गई है। उसमे लिखा है कि राजा को अपने मन्त्रियो की सलाह से 'अरिवु' (विवेक) और 'अन्वु' (प्रेम) के साथ शासन करना चाहिए। शास्त्रो का उसे सपूर्ण ज्ञान होना चाहिए। एक प्राचीन पद्य मे लिखा है कि राजा को "सूर्य के समान प्रतापी, चद्रमा के समान आनददायक और वर्षा के समान उदार होना चाहिए। उसे मधुरभाषी और प्रजा की शिकायते सुनने मे सहनशील होना चाहिए।" एक दूसरे छद मे लिखा है--"जीवन देनेवाली वस्तु न अन्न है, न पानी, वास्तव मे जीवन-प्रद वस्तु राजा है। राजा के न्यायपूर्ण शासन से ही प्रजा को जीवन मिलता है ।" इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि महाकाव्यो के काल मे राजा को कितना आदर दिया जाता था ।

राजा लोग शिकार के प्रेमी होते थे, जो उनके विनोद का मुख्य साधन होता था। कुछ राजा शराब भी पीते थे, परतु शराब पीना किसी भी राजा के लिए दुर्गुण माना जाता था। एक पद्य मे राजा को निम्नलिखित दोषो से दूर रहने का उपदेश दिया गया है—शिकार, कटुवचन, अत्याचार, जुआ, लालच, मधुपान और काम-वासना।

राज्य-सभा—इन महाकाव्यो से पता चलता है कि राजा के पास अठारह अधिकारी होते थे, जो राजा को धार्मिक कार्यो मे सलाह देते और शासन मे सहायता करते थे। इन अधिकारियो मे मत्री, पुरोहित, सेनापति, दूत और चर के स्थान सर्वोच्च माने जाते थे। राजा कोई भी कार्य इनसे परामर्श लेकर ही करता था। इन पाच अधिकारियो के अतिरिक्त भी अनेक अधिकारियो के नाम महाकाव्यो मे दिये गये है, जिनका कर्तव्य भिन्न-भिन्न प्रकार से राजा की सेवा करना होता था। इनमे से वहुत से अधिकारियो के नाम और कार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भी मिलते है ।

आय के स्रोत—तमिळ मे कर के लिए 'वरि' शव्द का प्रयोग होता है। तेलुगु भाषा मे 'वरि' शव्द का अर्थ धान होता है, जिससे प्रकट होता है कि प्राचीन युग मे कर के रूप मे अन्न या पैदावार वसूलने की प्रथा प्रचलित थी। उत्तर भारत की तरह दक्षिण मे भी जमीन की पैदावार का छठा अश राज-कर के लिए लिया जाता था। तमिळ देश भी कृषि-प्रधान देश था, अतः अन्न के रूप मे कर की वसूली बिल्कुल स्वाभाविक थी।

'पुरप्पोरुल वेण्बामालै' नामक ग्रथ मे राज-कर को देश की रक्षा करने के लिए राजा को दिया जानेवाला पारिश्रमिक कहा गया है। आवश्यक परिस्थिति मे प्रजा को अधिकार था कि वह कर देना बद कर दे या उसे कम करने की प्रार्थना राजा से करे।

राजा की आय का दूसरा स्रोत था व्यापार-कर। उस समय देश मे वाणिज्य-व्यापार की काफी उन्नति हो चुकी थी। विदेशो मे भी व्यापारिक सबध स्थापित हो चुका था और माल का आना-जाना आरभ हो गया था। सामानो पर चुगी वसूलने के लिए राजाओ ने चुगी-घर और चुगी-अफसर भी नियुक्त किये थे।

आय का तीसरा स्रोत खनिज पदार्थों से आमदनी और युद्धो मे प्राप्त धन था। खनिज पदार्थों पर अधिकार विशेषत राजा का होता था, यद्यपि कभी-कभी राजा उस धन को प्रजा के लिए छोड देता था।

आय का चौथा साधन छोटे-छोटे राजाओ से प्राप्त होनेवाला नजराना था। कभी-कभी राजाओ को प्रजा से भेट के रूप मे भी सपत्ति मिला करती थी और यह धन भी राजकोष मे ही जाता था। राजा के लिए यह आवश्यक था कि वह न्याय-मार्ग से ही अपनी प्रजा से कर वसूल करे। 'पुरम' ग्रथो मे अन्याय से अधिक कर वसूलने की निंदा निम्नलिखित शब्दो मे की गई है

"थोडी-सी जमीन की पैदावार भी यदि नियमपूर्वक हाथी को खिलई जाय, तो वह अन्न बहुत दिनो तक चल सकता है। पर भूमि अधिक होने पर भी यदि उसमे हाथी को मनमाना चरने के लिए छोड दिया जाय, तो उसके पैरो के नीचे जो फसल नष्ट होगी, वह उसके भोजन से कई गुना अधिक होगी। इसी तरह यदि राजा न्यायपूर्वक अपनी प्रजा मे उचित मात्रा मे और समान रूप से कर वसूलता है, तो उसका खजाना हमेशा भरा रहेगा, परतु यदि वह बुद्धिहीन अयोग्य कर्मचारियो के कारण अपनी प्रजा से अनुचित मात्रा मे और असमान रूप से कर वसूल करे, तो उसका राज्य उसी तरह नष्ट हो जायगा, जिस तरह खेत मे हाथी के प्रवेश करने से फसल नष्ट हो जाती है।"

व्यय की मदें—इस सबध मे तमिळ ग्रथो मे कोई विस्तृत विवरण नही मिलता। केवल दो बातो का ही उल्लेख मिलता है। राजा लोग सिचाई पर बहुत धन व्यय करते थे। ईसा की पहली शताब्दी मे ही चोळ राजा करिकाल ने कावेरी नदी के दोनो तरफ ऊचे बाध बधवाये थे और कावेरी के पानी से खेतो को सीचने का

प्रवध किया था। उसने इसी उद्देश्य से वडे-वडे तालाव और कुए भी खुदवाये थे और जगल काटकर गाव वसाये थे। खर्च का दूसरा मद कवियो और विद्वानो को दान देना था। तमिळ राजा विद्वानो का वडा आदर करते थे और उन्हे अन्न-वस्त्र और भूमि देकर सतुष्ट रखते थे।

गावो का शासन—गावों की व्यवस्था स्थानीय स्वशासन प्रणाली पर होती थी। प्राय आतरिक मामलो मे ये गाव सर्वथा स्वतत्र थे और राजा या केद्रीय शासक उनके कार्यों मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करता था। प्रत्येक गाव से एक निश्चित रकम राजकोष मे भेजी जाती थी और उसके न पहुचने पर ही राजा का हस्तक्षेप होता था। गाव की व्यवस्था प्राय ग्राम-पचायत के द्वारा होती थी, जिसके सदस्य गाव के प्रतिष्ठित और सच्चरित्र वयोवृद्ध व्यक्ति होते थे। यही पचायत गाव की सार्वजनिक सपत्ति की देखभाल करती थी और छोटे-मोटे झगडो का भी निपटारा करती थी। गाव की इस सभा को 'मन्रम' कहते थे। इसमे लोकतात्रिक प्रणाली का पूरा अनुसरण होता था। मन्रम की वैठके प्राय भिन्न-भिन्न प्रकार के वृक्षो के नीचे हुआ करती थी, जिससे उन वृक्षो के नाम भी इन मन्रमो के साथ जुड गये थे। उदाहरण के लिए पलामन्रम (कटहल की सभा, अर्थात कटहल के पेड के नीचे एकत्रित होनेवाली सभा), वेप्पमन्रम (नीम के नीचे होनेवाली सभा) आदि। 'मन्रम' शब्द का वास्तविक, अर्थ है सार्वजनिक स्थान। प्रत्येक गाव मे इस तरह का मन्रम होता था, जिसका उपयोग पशुओ को चराने, समय-समय पर नाच-गान करने, मनोरजन-सभाए करने तथा पचायत की वैठको आदि के लिए होता था।

गाव की रक्षा, सफाई, शिक्षा आदि का प्रवध गाव की पचायत के अधीन रहता था। पचायत की ओर से चौकीदार मुकर्रर रहते थे, जो रात्रि के समय गाव का पहरा देते थे। यह प्रथा आज भी दक्षिण के गावो मे प्रचलित है। कभी-कभी लुटेरो से यात्रियो और व्यापारियो के माल-असवाव की रक्षा के लिए भी पचायत की तरफ से रक्षक नियुक्त होते थे। इनका वेतन चुगी द्वारा प्राप्त धन से अदा किया जाता था।

शासन की इकाई प्राय गाव ही होता था और जहा गाव छोटे-छोटे होते थे, वहा शासन की सुविधा के लिए तीन-चार गावो की एक इकाई वना दी जाती थी। गावो को तमिळ मे ऊर, पेरूर (वडा गाव), शिट्रू (छोटा गाव) कहते है।

कई गावो के समूह को नाडु कहते थे। कई नाडु मिलकर मडियम (मडलम) होता था। मडियम और नाडु के बीच मे भी एक विभाग होता था जिसे कर्रम या कोट्टम कहते थे। यह आजकल का जिला है। मडियम के अधिकारियो पर केद्रीय-सरकार का प्रत्यक्ष अधिकार होता था।

प्राचीन काल की शासन-व्यवस्था के इस सक्षिप्त विवरण से यह विदित होता है कि उस अतीत युग मे भी उत्तर-भारत और दक्षिण-भारत की शासन-व्यवस्था अनेक विषयो मे समान थी। वैदिक काल से ही उत्तर और दक्षिण भारत के मध्य यातायात आरभ हो चुका था और परस्पर विचारो का आदान-प्रदान होने लगा था। इनी काल से आर्य और द्रविड सस्कृतियो की सम्मिलित गगा-जमुनी धारा भारत की पावन भूमि को सिंचित कर उसे उर्वरा बनाने लगी थी।

युद्ध-कला—प्राचीन काल मे दक्षिण मे राजाओ के बीच अक्सर युद्ध हुआ करते थे, जिनका वर्णन तमिळ के 'पुरम' सग्रह मे पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है। यद्यपि युद्ध के सबध मे कोई विस्तृत विवरण नही मिलता, पर सघम काल के साहित्य, 'तोळकाप्पियम' 'पत्तुप्पाट्टु' आदि सग्रहो मे यत्र-तत्र युद्धो का वर्णन मिलता है। 'शिलप्पधिकारम' और 'मणिमेखलै' मे कही-कही सेना, तथा योद्धाओ के युद्ध-कौशल का वर्णन भी दिया गया है। प्राचीन द्रविड बडे बहादुर और युद्ध-प्रिय होते थे। मरवर-कल्लर आदि जातिया, जो जगलो मे और बजर प्रदेशो मे निवास करती थी, प्राय युद्ध-कला मे निपुण होती थी। प्रागैतिहासिक युग मे युद्ध के अस्त्र मुख्यत तीर, धनुष, तलवार, भाला आदि होते थे। युद्ध प्राय पशुओ के लिए या कन्याओ के लिए हुआ करता था। विभिन्न कबीलो के अपने-अपने अलग-अलग युद्ध-वाद्य, नगाडे और पताका होते थे, जिन्हे लेकर वे युद्ध भूमि मे उपस्थित होते थे। उस समय के युद्धो मे नगाडो का एक मुख्य स्थान मालूम होता है। प्रत्येक जाति का अलग-अलग नगाडा होता था। युद्ध आरभ होने के पहले उसकी पूजा बडी धूमधाम से होती थी। शत्रु सेना को परास्त कर उसके नगाडो को छीन लेना विजय का प्रतीक माना जाता था।

प्राय नगरो और गावो की रक्षा के लिए ऊची और सुदृढ चहारदीवारिया बनी रहती थी, जिनके चारो तरफ खाइया और घने जगल होते थे, जिससे शत्रु या लुटेरे आसानी से गाव या नगर मे प्रवेश नही कर पाते थे। 'शिलप्पधिकारम,'

'मणिमेखलै' आदि ग्रथा मे उरैयूर, काची, करूर आदि नगरो के वर्णन मे उनकी रक्षा के लिए बने उपकरणो के उल्लेख मिलते है।

उत्तर भारत की राजपूत स्त्रियो की तरह तमिळ स्त्रिया भी अपने पुत्रो और भाई-भतीजो को देश और राज्य की रक्षा के लिए बडे आनद के साथ युद्ध मे भेजती थी और उनके युद्ध मे विजयी होने पर उत्सव मनाती थी। कभी-कभी स्त्रियो का अपने पति की चिता पर जलकर मरने का भी उल्लेख मिलता है, जो सती प्रथा का द्योतक है। युद्ध क्षेत्र मे मृत्यु वीरो के लिए स्वर्ग मे स्थान पाने या वीर-गति प्राप्त करने का साधन समझा जाता था। घायल योद्धा अपने घावो को आराम देने की अपेक्षा उसे बढाकर अपने प्राण दे देना अधिक उत्तम समझते थे। प्राय वीरो की लाशे दफन की जाती थी और उनकी यादगार मे उनकी समाधियो के पास पत्थर गाड दिये जाते थे, जिन्हे 'वीर कल' या 'नेडु कल' कहते थे। 'कल' शब्द का अर्थ 'पत्थर' है।

युद्धो मे कवियो और भाटो के जाने का भी उल्लेख मिलता है, जो अपने उत्तेजक शब्दो से योद्धाओ को उत्साहित किया करते थे।

प्राचीन तमिळ समुद्र-यात्रा मे पटु होते थे और बडे-बडे राजाओ के पास व्यापार के लिए जहाजो का बेडा रहता था। कभी-कभी इन बेडो का उपयोग युद्धो या देशो को जीतने मे भी होता था। सघम काल मे नेडुचेरल आडन और चेगुट्टुवन के पास जगी जहाजो का बेडा था और ईसा की दसवी शताब्दी मे राजेद्र-चोळन ने ऐसे बेडे की मदद से लका, कडारम (निकोबार) और बर्मा तट के कुछ बदरगाहो पर अधिकार कर लिया था।

ईसवी सन के पूर्व ही तमिळ देश के राजाओ का व्यापारिक सबध अरब, बेबिलोन, मिस्र, यूनान (ग्रीस), रोम, फारस, अफरीका, चीन आदि देशो के साथ आरभ हो गया था। विदेशो के साथ दक्षिण भारत के व्यापारिक सबध के बारे मे विस्तार के साथ आगे लिखा गया है। व्यापारिक सबधो के साथ-साथ उन देशो के साथ राजनैतिक सबध होना भी स्वाभाविक था। रोम के साथ तमिळ देश का विशेष सबध था। उत्तर भारत के कुछ राज्यो के साथ भी दक्षिण के राज्यो का राजनैतिक सबध प्रगट होता है। महाभारत-काल मे भी चेरलआडन ने पाडवो की सेना के लिए खाद्य-पदार्थ भेजे थे। करिकालचोळन का व्रज, मगध, अवती आदि देशो के साथ राजनैतिक सबध होने का उल्लेख 'शिलप्पधिकारम' मे मिलता

है। राजा शेगुट्टुवन का भी उत्तर भारत के राज्यो के साथ राजनैतिक सबध बतलाया गया है।

युद्ध-नीति—प्राचीन काल मे प्राय युद्ध बडे भयकर हुआ करते थे और विजयी सेना के द्वारा विजित राज्यो की प्रजा पर अनेक प्रकार की कडाई की जाती थी। कभी-कभी पराजित राजा और उसकी सेना के साथ अत्यत निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। पराजित राजा को परास्त करने के बाद उसकी राजधानी को लूट लेना, उसके दुर्ग और राज-भवनो को विध्वस्त कर देना, उसकी तमाम सपत्ति लूट लेना, नगरो और गावो को उजाड देना साधारण-सी बात थी। 'पुरनानूरु' मे एक स्थान पर लिखा है कि "राजा को जीतने के बाद उसकी राजधानी को ध्वस्त करके भवनो को भूमिसात करके, सडको और गलियो को गधो के हल से जोतकर उसमे अरडी और कपास बो दिये गये।" कभी-कभी मदिरो को तोडने की भी बात लिखी गई है।

परतु धीरे-धीरे युद्ध की इस बर्बरता मे कमी होती गई और अधिक मानुपिक नियमो का प्रचार हुआ। ब्राह्मणो, जैन साधुओ तथा स्त्रियो पर अत्याचार करना अनुचित माना जाने लगा। नच्चिनार किनियर ने अपने भाष्य मे लिखा है कि निष्क्रिय, पुत्रहीन, भय से व्याकुल, नपुसक, निशस्त्र, पलायित और समान शस्त्र का उपयोग न करनेवाले योद्धा को युद्ध मे मारना अनुचित माना गया था। इससे मालूम होता है कि प्रागैतिहासिक युग के बाद जब कबीलो की अवस्था से निकलकर तमिळ लोगो ने सगठित राज्य की स्थापना की, तब धर्म युद्ध करने की भावना भी उनमे व्याप्त हुई।

तमिळ मे 'भरणि' एक प्रसिद्ध वीर काव्य है। चोळ राजा कुलो-त्तुग ने कलिंग देश पर चढाई कर उस पर विजय पाई थी। उस युद्ध का वर्णन करते हुए एक कवि ने 'कलिगत्तुभरणि' नामक वीर काव्य रचा है। इस ग्रथ मे उस युद्ध की वीभत्सता और बर्बरता का रोमाचकारी वर्णन है।

सामाजिक दशा—तमिळ के दोनो महाकाव्यो से उस समय की देश की स्थिति, सामाजिक दशा, लोगो के रहन-सहन, कला-कौशल एव विवाह पद्धति आदि के सबध मे भी जानकारी प्राप्त होती है। ये दोनो ग्रथ उस समय के सामाजिक एव राजनैतिक जीवन का बहुत ही सुदर एव रोचक चित्र हमारे सामने उपस्थित

करते हैं। हम नीचे उन दोनो ग्रथो के आधार पर सामाजिक जीवन के कुछ चित्र उपस्थित करते हैं।

नगर रचना—बहुत प्राचीन काल मे ही तमिळ लोग नगर रचना मे बडे प्रवीण थे। नगरो की उत्पत्ति के चार मुख्य कारण माने जाते थे—(१) स्थान की रमणीयता, (२) व्यापार की सुविधा, (३) किसी प्रसिद्ध क्षेत्र का होना, (४) राजा का निवास। प्रत्येक नगर की रचना शास्त्रानुसार होती थी। साधारणतया नगर के चारो ओर गहरी खाई होती थी, जिसमे हमेशा जल भरा रहता था। खाई के बाद अदर की ओर ऊची ओर सुदृढ प्राचीर होती थी, जिस पर सदा नगर रक्षको का पहरा रहता था। प्राचीरो के अदर चौडी और सीधी सडके होती थी, जिनके दोनो ओर कतार मे बने हुए लोगो के मकान होते थे। नगर के भीतर कई प्राचीरे होती थी, जिनको प्राकार कहते थे। नगर के बाहर मठ, पाठशालाए और मुनियो के आश्रम होते थे। पहले प्राकार मे निम्न जाति के लोग रहते थे। वहा शराब, नमक, गोश्त, मछली, मिठाई जैसी वस्तुओ की दूकाने होती थी। इसके अदर के प्राकार मे छोटे-छोटे व्यापारी, जैसे दर्जी, कुम्हार, लोहार, सुनार, जौहरी आदि रहते थे। इसके भीतर के प्राकार मे ब्राह्मण, सरकारी अफसर और प्रतिष्ठित लोगो के घर होते थे। सबसे अदर के प्राकार मे राजमहल, दरबार, मत्रणागृह, नृत्यशाला, मदिर आदि होते थे। शहरो मे यात्रियो के ठहरने और भोजन के लिए धर्मशालाए और होटल होते थे। किसी-किसी शहर मे अजायबघर भी था, जिसमे तरह-तरह की नुमाइश की चीजे रखी रहती थी। प्राचीरो पर बडे-बडे गोपुर बने रहते थे। इन प्राचीन नगरो की रचना इतनी सुदर और व्यवस्थित होती थी कि आजकल के बडे-बडे इजीनियर भी इन्हे देखकर आश्चर्य मे पड जाते हैं। इस प्राचीन काल की नगर रचना के नमूने आज भी श्रीरगम, मदुरा आदि स्थानो मे देख पडते हैं। दक्षिण के नगर प्राय बहुत सपन्न और कला-कौशल के केंद्र होते थे। मध्य पूर्व तथा रोम आदि देशो के साथ व्यापार की वृद्धि होने से इन नगरो का महत्व और वैभव बहुत बढ गया था। मदुरा नगर पाडिय राजाओ की, और कावेरि-पू-पट्टिणम चोळो की राजधानी होने के कारण अन्य नगरो की अपेक्षा अधिक सपन्न और सुदर थे।

कावेरि-पू-पट्टिणम—इस नगर का निर्माण कब हुआ यह कहना कठिन है। ईसा की दूसरी शती मे चोळ राजा करिकाल चोळन ने अपनी राजधानी ऊरैयूर से

यहा स्थानातरित की थी, जिससे इसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ गई। परतु ईसा के पूर्व दूसरी या तीसरी शती मे भी बौद्ध और जैन भिक्षु यहा पहुच चुके थे। इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा के लगभग ५०० वर्ष पूर्व ही इस नगर की स्थापना हो चुकी होगी। करिकाल ने यहा आकर नगर के चारो तरफ प्राचीर बनवाये और उसकी विशेष रूप से अभिवृद्धि की। राजधानी का गौरव प्राप्त होने से नगर मे व्यापार तथा कला-कौशल का प्रचार हुआ और कावेरि-पू-पट्टिणम पूर्वी तट का एक प्रसिद्ध और सपन्न बदरगाह बन गया।

दक्षिण मे नगरो के नाम के साथ दो शब्दो का उपयोग बहुत होता है, 'पट्टनम' और 'ऊर'। 'ऊर' का अर्थ है गाव। कुछ छोटे-छोटे शहरो के नाम के साथ भी ऊर शब्द जोडते है, जैसे तजाऊर, उरैयूर, आदि। शायद ये नगर आरभ मे छोटे-छोटे गाव रहे होगे, पीछे चलकर शहर का रूप लिया होगा। 'ऊर' शब्द शुद्ध तमिळ का शब्द है। बलूचिस्तान की ब्राहुई भाषा मे भी यह शब्द प्रचलित है, जहा इसका अर्थ 'घर' होता है। 'पट्टनम' शब्द प्राय समुद्र के तट पर अवस्थित गावो के लिए प्रयुक्त होता था, पर अब तटवर्ती नगरो के साथ भी यह नाम जोडा जाने लगा है, जैसे विजगापट्टम, मसुलिपट्टम, नागपट्टनम आदि। 'पट्टम'—पट्टनम का ही अग्रेजी रूप है। सस्कृत मे भी पट्टनन शब्द नगर के ही अर्थ मे आता है। सभव है पट्टनम शब्द तमिळ के पट्टनम से ही लिया गया हो।

कावेरि-पू-पट्टिणम का दूसरा नाम पुहार था। पुहार का अर्थ होता है नदी के मुहाने पर का नगर, परतु यह नाम मुख्यत कावेरि-पू-पट्टिणम के लिए ही प्रयुक्त होता था।

इलगो अडिगल नामक राजकवि ने अपने 'शिलप्पधिकारम' महाकाव्य मे इस नगर का बडा विस्तृत और सुदर वर्णन किया है। उस महाकाव्य के नायक और नायिका, कोवलन और कण्णकी इसी नगर के निवासी थे।

दुर्भाग्यवश आज इस शहर का नाम ही अब शेष रह गया है। आज से लगभग डेढ हजार वर्ष पहले ही समुद्र ने इसको अपने गर्भ मे ले लिया। पुहार कई सौ वर्षो तक चोळ वशी राजाओ की राजधानी था। कवि लिखता है—"यहा बहुत प्राचीन वशो के लोग रहते है। नगर से भिन्न-भिन्न जाति के लोग आपस मे मिल-कर रहते है। उनमे आपसी ईर्ष्या,-द्वेष नाम को भी नही है। नगर मे बडे-बडे व्यापारी रहते है, जिनके पास अपार सपत्ति है, यहा तक कि राजा के वैभव से भी

उनका वैभव बढा-चढा है। स्थल और समुद्र, दोनो मार्गो से दूर-दूर के देशो के साथ व्यापार होता है। हजारो देशी और विदेशी व्यापारी व्यापार के लिए नगर मे आते जाते रहते है। नगर मे बहुत बडा बाजार है, जिसमे देशी और विदेशी माल प्रचुर मात्रा मे मिलते है। दुनिया के किसी भी कोने मे बनी हुई कोई भी वस्तु यहा के बाजार मे मिल सकती है। पुहार के बाजार व गलिया विदेशी व्यापारियो से खचाखच भरी रहती है।" इस वर्णन को पढने से ऐसा मालूम होता था कि पुहार सारे दक्षिण मे व्यापार का सबसे बडा केद्र था। राजा व्यापारियो की रक्षा करता था और उनको हर तरह की व्यापारिक सुविधाए देता था। प्राय सभी सभ्य देशो के साथ पुहार का व्यापारिक सबध था।

'पट्टिनप्पालै' नामक काव्य मे भी कावेरि-पू-पट्टिणम का बडा विस्तृत वर्णन दिया गया है। यह वर्णन शायद किसी नगर का सबसे प्राचीनतम विवरण है। कवि ने अतिशयोक्ति से दूर रहकर नगर का वास्तविक चित्रण किया है। कवि एक जगह पर लिखता है—"समुद्र के तट पर चौडी सडको के दोनो ओर व्यापारियो के बडे-बडे भवन है जिनके सुरक्षित गोदामो मे सामानो के अनगिनित ढेर लगे है। ये माल अधिकारियो द्वारा निर्यात-कर निर्धारित करने और उन पर पराक्रमी चोळ राजा का राज-चिह्न व्याघ्र-मुद्रा अकित करने के लिए वहा एकत्रित किये गये है। जहाजो के पास भी बहुत से माल पडे है, जिन पर आय-कर अदा करने और व्याघ्र-मुद्रा लगने के बाद ही व्यापारी उन्हे उठा सकते है। मालो का यह आयात और निर्यात ठीक उसी प्रकार होता रहता है, जिस तरह बादल समुद्र से जल लेकर उसे वर्षा के रूप मे पहाडो पर छोड देते है और वह जल नदियो से होकर पुन समुद्र मे पहुच जाता है। राजा के राजस्व की रक्षा करने के लिए रेवेन्यू अफसर, बिना विश्राति के, दिन भर राजस्व वसूलने मे उसी प्रकार सलग्न रहते है, जैसे प्रचड सूर्य के रथ मे जुते हुए घोडे (जो बिना विश्राम लिये ही दौडते रहते है)।"

इस वर्णन से कावेरि-पू-पट्टिणम की व्यापारिक समृद्धि का कुछ-कुछ अनुमान हो सकता है। कवि नगर के निवासियो का वर्णन निम्नलिखित शब्दो मे करता है

"मकानो के सामने ऊचे-ऊचे ओसारे है, जिन पर मयूरो की मूर्तिया बनी हुई है। ये मकान उन ऊचे पर्वतो की तरह दीखते है, जिनकी चोटियो पर बादल मडराते

हैं और जिनके पार्श्व मे वासो की झाडियो मे साड और भैसे विचरण करते है। घरो के चारो ओर चबूतरे है, जिन पर चढने के लिए छोटी-छोटी और ऊपर (छत पर) जाने के लिए बडी-बडी सीढिया लगी है । मकानो मे वडे-वडे आगन, छोटे-वडे दरवाजे और लबे ओसारे है । मकान इतने ऊचे है कि बादलो को छूते है । उनमे वडी-वडी खिडकिया हवा आने के लिए लगी है। खिडकियो के पास युवतिया खडी है, जिनके पाव लाल और जघाए मोटी है, जो पीले आभूषण (सोने के) पहने है, जिनकी छातिया चौडी, शरीर मूगे के रग के, आखे हिरण की तरह, आवाज तोते की तरह है और जो सुदरता मे मोर की समता करती है ।"

नगर समुद्र तट पर आबाद होने से वहा मछुओ की बस्तिया होना स्वाभाविक था। कवि एक मछुए के निवास का निम्न प्रकार वर्णन करता है

"शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा का दिन है। लाल रग के लबे-लबे बालोवाले मछुवे आज काले और चौडे समुद्र पर शिकार करने नही गये है। कुटियो की नीली छतो से लगाकर उनकी बसिया रखी है। कुटिया के सामने बालू बिछाकर जाल सूखने के लिए फैला दिये गये है, जो क्रमश चादनी और अधेरे का दृश्य उपस्थित करते है। उसीके पास मछुओ की काली स्त्रियो ने (जो पत्तो के वस्त्र पहने हुए है), घडियाल का सीग पूजा करने के लिए गाड रखा है। (सभवत मछुओ के बीच घडियाल की पूजा करने की प्रथा प्रचलित थी)। जहा कावेरी अपना गदला जल समुद्र के साफ पानी मे गिराती है, जो देखने मे लाल सध्या और काले पर्वत के सयोग-सा, या काले रग की माताओ की गोद मे भूरे रग के बच्चे-सा मालूम होता है, स्त्रिया उस सगम मे अपना पाप धोने के लिए स्नान करती है, फिर कावेरी को सुगधित बालू की शय्या पर सो जाती है ।"

मदुरा नगर—पाडिय राजाओ की राजधानी मदुरा या मदुरै कुछ कम विख्यात नही था। मदुरा दक्षिण का सास्कृतिक केद्र भी था, जहा पाडिय राजाओ ने साहित्य एव कला की अभिवृद्धि के लिए साहित्य सघम की स्थापना की थी ।

'मदुरैक्काची' नामक काव्य मे मदुरा नगर का अत्यत रोचक वर्णन मिलता है । उसके आधार पर उस नगर का निम्नलिखित चित्र उपस्थित किया गया है। 'मदुरैक्काची' की रचना मागुडी मरुदनार नामक कवि द्वारा सन ४५० ई० मे हुई थी। कवि सबेरे से रात्रि के अत तक नगर मे होनेवाले व्यापारो का वर्णन इस प्रकार करता है

"अब हम मदुरा नगर के सिहद्वार पर पहुच रहे है, जो पर्वत की तरह ऊचा है, जिसके सुदृढ सिहद्वार, दोनो ओर लगी हुई द्वार-रक्षक देवताओ की मूर्तियो पर प्रति दिन तेल चढाते रहने से काले हो गये है। जिस प्रकार वैगै नदी मे सदा जल प्रवाहित रहता है, उसी प्रकार नगर मे जन प्रवाह सतत चलता रहता है और हम उसमे से होकर धक्के खाते आगे बढते है। नगर की सडके नदी के पाट की तरह चौडी है और उनके दोनो किनारो पर बने हुए भवन अनेक खिडकियो के कारण काफी हवादार है।

"प्रभात का समय है, तो भी नगर की सडको पर अपार भीड है। लोगो की भीड एक ओर से दूसरी ओर जा रही है और उससे उत्पन्न होनेवाला शब्द समुद्र के गर्जन की तरह अस्पष्ट और गभीर मालूम होता है। चारो ओर से सगीत, नृत्य और बाजो के शब्द आ रहे है, जिससे प्रतीत होता है कि यहा के लोग दैनिक कारोबार से भी अधिक रुचि नाच-रग मे लेते है। हवा मे उडती हुई झडिया दृष्टिपथ को रोक लेती है। उन्हीके साथ योद्धाओ की विजय-पताकाए भी उड रही है, जो उन्हे युद्ध मे विजयी होने के उपलक्ष मे राज्य की ओर से भेट की गई है। कही-कही शराब की दूकाने लगी है, जिन पर उडनेवाले झडे उस दूकान मे बिकनेवाले मधु की विशेषता को प्रगट करते है। प्रत्येक व्यापारी या व्यापार के अलग-अलग झडे है। मिठाई, फूल, मालाए, इत्र, पान, सुपारी आदि की फेरी करनेवालो के चारो ओर छोटी-छोटी भीड खडी है। लेकिन मदुरा सेना का केंद्र-स्थान होने से कभी-कभी योद्धाओ का दल, भयकर तूफान मे लगर तोडकर बहे हुए जहाज के सदृश्य हथिसार से भागा हुआ युद्ध का हाथी, हवा के वेग से चलने-वाले रथ, सैनिक शिक्षा के लिए जाते हुए युद्ध के घोडे अथवा ताडी के नशे से मत्त सिपाहियो की भीड नगर मे टूट पडती है, जिससे यात्रियो मे भगदड मच जाती है और थोडी देर के लिए रास्ता साफ हो जाता है। इनके गुजर जाने पर लोगो मे फिर से शाति फैलती है और फेरीवाले अपने सामान लेकर विशाल भवनो की छाया मे पुन अपना व्यापार आरभ कर देते है। व्यापार मे चतुर कुछ बूढी औरते भी स्त्री-सुलभ कमजोरियो का लाभ उठाकर अपने सामान बेचने के लिए लोगो के घरो तक पहुच जाती है और अत पुर मे रहनेवाली स्त्रियो को आकर्षित कर अपने सामान उनके हाथ बेचने मे सफल होती है। जिस तरह वर्षा होने या सूखा पडने पर भी समुद्र का जल कम नही होता,

उसी तरह दिन मे किसी भी समय नगर मे लोगो की भीड मे कमी नही दिखाई देती।

"पर समय तो बीतता ही रहता है और दिनात होते-होते नगर के दृश्य मे परिवर्तन आरभ हो जाता है। सध्या के समय नगर के राजे-रईस अपने-अपने वाहनो पर चढकर अपने शरीर-रक्षको के साथ सैर के लिए बाहर आये है। ये लाल रेशमी वस्त्रो से सुसज्जित और विशद उत्तरीय धारण किये है। बगल मे तलवार और वक्ष पर कीर्ति की मालाए है। ये लोग वडे सपन्न है और दिन की गर्मी मे ये अपना समय मित्रो के साथ गपशप मे विताते है।

"सध्या के समय वडे-वडे महलो की छतो पर खडी सपन्न घराने की स्त्रिया स्वर्ग मे उतरी हुई अप्सराओ के समान दिखाई देती है। उनके शरीर से सुगधित द्रव्यो की खुशवू चारो ओर फैल रही है और महलो पर लगे हुए झडो के वीच कभी छिपता और कभी दिखाई देता हुआ उनका सुदर और प्रसन्न मुख ठीक उसी प्रकार दृष्टिगोचर होता है जैसे चलते हुए बादलो के बीच चद्रमा।

"यहा से थोडी दूर पर ही राजा का न्यायालय है, जहा तराजू के पलडो मे तोलने के समान निष्पक्ष न्याय वितरित होता है। न्यायालय के निकट ही उन मत्रियो के निवास है, जो गुण-दोषो के विमर्शन मे अत्यत पटु, विद्वान पर विनम्र, अपने सम्मान के अभिमानी और चरित्र व ईमान की रक्षा मे सदा दत्तचित्त रहते है। वहा से कुछ दूर पर धनाढ्य व्यापारियो के निवास है, जो अपने वैभव और सचाई दोनो के लिए समान रूप से प्रसिद्ध है और जो समुद्र, पर्वत और पृथ्वी पर प्राप्त होनेवाली सभी उपयोगी वस्तुओ का व्यापार करते है। इनके बाद राजा के निम्न श्रेणी के अफसरो के घर है, जिनमे सैनिक, चारण और गुप्तचर विभागो के लोग रहते है। अत मे शिल्पियो, शख और मोती के कारीगरो, कुम्हारो, सुनारो, लुहारो, बढइयो, कसेरो, दर्जियो, गधियो, मालियो, रगरेजो आदि के निवास है। ये सब लोग व्यापार या सैर करने के लिए अपने-अपने घरो से वाहर आकर गलियो मे जमा हो गये है, जिससे रास्ता चलना कठिन हो गया है और सडको पर खडे होने को भी स्थान नही है। जगह-जगह पर लोग बैठकर कटहल, आम, ईख, तथा अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ एव मास से वने हुए व्यजन खा रहे है। सध्या की भीड प्रात काल की भीड से जरा भी कम नही है। नगर किसी वदरगाह की तरह जान पडता है, जहा लोग जहाजो के खुलने के समय उन पर चढने की जल्दी मे रहते है।

"सूर्य अस्त हो गया है और चाद निकल आया है। तो भी नगर मे शाति नही है। दीप जलने के साथ ही स्त्रिया आनदोत्सव की तैयारी आरभ कर देती है। यही समय दुष्चरित्र स्त्री-पुरुषो के भोग-विलास का भी है। वे गलियो मे बाहर आकर घूमते है और कुछ तो शराब पीकर इतने बेसुध हो जाते है कि उन्हे उन काटो का भी ध्यान नही रहता जो मतवाले हाथियो को वश करने के लिए बिछाये गये है। रोगी नागरिको के घरो के सामने मत्रवादी लोग उनके स्वास्थ्य के लिए मत्र पढ रहे है। प्रत्येक गली मे नाचने-गानेवालो की भीड इकट्ठी है।

"अर्धरात्रि के बाद नाच-गान मे कुछ कमी दिखाई देती है। छोटे-छोटे दूकानदार अपनी दूकाने बद करके घर चले गये है और मिठाई आदि बेचनेवाले अपनी दूकानो के सामने ही पडकर सो रहे है। अभिनय करनेवाले और गाने-बजानेवाले भी आराम करने चले गये है और नगर भाटे के समय समुद्र का रूप धारण कर चुका है। पर समुद्र की तरह ही मदुरा को भी पूरी शाति नही प्राप्त होती। नगर के भद्र पुरुष निद्राग्रस्त हो जाते है, तब भी दुष्ट लोग अपना कार्य करते ही रहते है। अनेक प्रकार के आयुधो से सुसज्जित होकर चोर और डाकू अपना कुकृत्य आरभ कर देते है। परतु पहरेदारो और नगर-रक्षको (पुलिस) की सतर्कता के कारण उनका सारा प्रयत्न विफल हो जाता है। पुलिस के अधिकारी निद्राहीन नेत्र, भयहीन हृदय एव चातुर्य और कानून के ज्ञान से चोरो का मुकाबला करते है। वे वर्षा की रात मे भी जब गलिया पानी मे भरी रहती है, अपने कर्तव्य से विमुख नही होते और न आखे ही झपकाते है।

"किंतु इस तरह की शाति के घटे बहुत नही होते। प्रभात होने के पूर्व ही प्रस्फुटित कलियो पर मधुमक्खियो के गुजन के सदृश वेदपाठी ब्राह्मण वेदो का पारायण आरभ कर देते है। इनके बाद सगीतज्ञ अपने साजो को ठीक करते हुए सुनाई पडते है। दूकानदारिने उठकर अपनी दूकानो की फर्श धोकर साफ कर रही है। अभ्यस्त पियक्कड ताडी की दूकानो की ओर भागे जा रहे है। दरवाजो के खुलने की आवाज इस बात की सूचना देती है कि नगर फिर जाग रहा है और जो लोग अब तक निद्राग्रस्त है, उनकी निद्रा को मुर्गो की आवाज, ढोल के शब्द, चिडियो की चहचहाहट, गायो की बोली, हाथियो की चिघाड और राजा के अजायबघरो मे शेरो की दहाड भग कर रहे है। सवेरा होते ही राजा की सेना किसी-न-किसी युद्ध मे विजयी होकर नगर मे प्रवेश करती है और अपने साथ खिराज के तौर पर

हाथी, घोडे आदि वस्तुए लेकर आती है। दिग्विजयी सेना के पीछे-पीछे पराजित राजे सधि का प्रार्थना-पत्र लेकर आते है। ससार की सपत्ति मदुरा नगर मे उसी भाति प्रवेश करती है, जिस तरह गगा समुद्र मे अपना जल खाली कर देती है। सूर्योदय होते ही मदुरा पुन उसी प्रकार दिखाई देता है, जैसाकि हमने नगर मे प्रवेश करते समय उसे देखा था।"

मदुरा नगर का यह कितना सुदर और सजीव वर्णन है!

कला-कौशल—किसी जाति की सभ्यता और सास्कृतिक उन्नति का पता उसके कला-कौशल की उन्नति से लगाया जा सकता है। पुहार का स्थान इन बातो मे बहुत ऊचा था और वहा के निवासियो ने सभी कलाओ मे अच्छी उन्नति की थी। वहा ईट और पत्थरो से बने बहुत बडे-बडे मकान थे, जो कई मजिल ऊचे थे। 'शिलप्पधिकारम' काव्य मे वहा छ-सात मजिल ऊचे मकानो का उल्लेख मिलता है। उनमे हिरण की आखो जैसी छोटी-छोटी सूराखोवाली खिडकिया होती थी। उन खिडकियो पर अत्यत सुदर नक्काशी होती थी। मकान काफी हवादार और सुदर होते थे। अमीरो के मकानो मे सुदर-सुदर पलग, चौकिया तथा विलास की सब तरह की सामग्रिया मौजूद रहती थी। ऊचे-ऊचे मकान, चौडी सडके, बडे-बडे बाग-बगीचे, सब तरह के सामानो से भरी हुई दूकाने, ये पुहार के वैभव के चिह्न थे। छ-सात मजिलो के मकानो का होना इस बात को सूचित करता है कि पुहार के निवासी भवन बनाने की कला मे बहुत निपुण थे।

स्त्रियो का स्थान—उस समय के समाज मे स्त्रियो का स्थान बहुत ऊचा था। सभी प्रकार के सामाजिक कार्यो मे भाग लेने का उन्हे पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वे मदिरो मे जाती थी, तालाबो मे जाकर स्नान करती थी और सार्वजनिक नृत्यो मे भाग लेती थी। वे अपने इच्छानुसार पति चुन सकती थी। अमीर घरानो की स्त्रिया बडे ही सुदर और बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र पहनती थी, जो 'साप की केचुली के समान कोमल और धुए के सदृश पतले' होते थे। यहा सूती, ऊनी और रेशमी सभी तरह के कपडे बनते थे, पर उनमे सूती कपडे की ही विशेषता होती थी। स्त्रिया सूत कातती थी और पुरुष कपडे बुनते थे। लोग फूलो की मालाए पहनते थे और शरीर पर चदन लेपते थे। दक्षिण मे फूल और चदन लगाने की यह प्रथा आज भी प्रचलित है। यहा के लोग प्रचुर मात्रा मे फूल और चदन का व्यवहार करते है। सपन्न घरो की स्त्रिया एक प्रकार की रत्न-जटित टोपी भी पहनती थी।

वेश्याए—वेश्या और शराव सभ्यता के जरूरी अग से वन गये थे। जहा धन अधिक होता है, वहा विलास के साधन भी उपस्थित हो जाते है। पुहार मे वेश्याओ की अलग गली थी। यहा धनिको का जीवन बहुत विलासपूर्ण था और वे अपना अधिकाश समय वेश्याओ के साथ क्रीडा करने मे व्यतीत करते थे। शहर के धनी युवक किस तरह वेश्याओ के प्रेम मे फसकर अपना स्वास्थ्य और सपत्ति वरवाद करते थे और उनकी सती स्त्रिया किस तरह उनको बचाने की चेष्टा करती थी, इसका वडा ही रोचक वर्णन 'शिलप्पधिकारम' मे मिलता है। ये वेश्याए सध्या के समय सुदर वस्त्रो से अलकृत होकर राजपथ पर जाती और नगर के युवको को अपनी ओर आकर्षित करती थी और सती साध्वी स्त्रिया इन चुडैलो की पकड से अपने-अपने पति को बचाने की चेष्टा करती थी।

तमिळ लोगो को स्त्रियो के सौंदर्य के सवध मे बहुत ऊचा खयाल था। प्राय सभी भाषाओ के साहित्य मे स्त्रियो के नख-शिख का वर्णन मिलता है। तमिळ कवियो ने स्त्रियो के सौंदर्य का बहुत ही रोचक वर्णन किया है। दक्षिण के कवियो की उपमाए उत्तर के कवियो की उपमाओ से कुछ वातो मे भिन्न होती थी, जिसका उदाहरण निम्नलिखित वर्णन से मिलेगा। कवि एक गायिका का वर्णन करता है

"उस गायिका के केश समुद्र तट की काली वालुका के समान काले है। उसका ललाट अर्धचद्र के समान सुदर है। उसकी भौहे शिकारी के धनुष के समान वक्र है। उसके कटाक्ष अत्यत शीतल और आकर्षक है। मधुर शब्दोच्चारण करनेवाला उसका मुख सेमर के फूटे हुए फल के किनारे की तरह रक्तवर्ण है। उसके उज्वल दात मोतियो की लडी जैसे घुमावदार है और उसके कानो के लोलक घडियाल के आकार के है। उसका मस्तक नम्रता के भार से झुका हुआ है। उसकी भुजाए हिलते हुए वास के पेड जैसी गभीर और चपल है। उसकी वाहो के अग्रभाग कोमल और पतले रोम से ढके है। उसकी उगलिया कार्त्तिक मास मे पहाडो पर खिलने-वाले पुष्प के समान कोमल और सुदर है। अत्यत वारीक कपडे से ढके हुए उसके कुच शरीर के लिए भार से मालूम होते है और इस तरह सटे हुए है कि उनके बीच से होकर नारियल का पतला रेशा भी नही निकल सकता। उसकी नाभी जल मे उठनेवाले भवर के समान सुदर है। उसकी कमर इतनी पतली है कि देखनेवालो को उसके अस्तित्व पर ही शका होती है और वह वडी कठिनाई से शरीर का भार

सभालती है। उसकी कमर मे अनेक लडोवाला कटिबध पडा है, जिसमे छोटी-छोटी घटिया मधुमक्खियो की तरह लटक रही है। उसकी जघा करिणी की सूड के समान सुडौल और सुदर है, उसकी टागो का निचला भाग टखने तक वालो से ढका है और उसके पाव थके हुए कुत्ते की जीभ के समान (लाल) दीखते है।"

यह है तमिळ कवि का नख-शिख वर्णन!

ग्राम्य-जीवन—प्राचीन तमिळ देश मे शहर बहुत कम थे, छोटे-छोटे गावो की ही सख्या अधिक थी। गाव प्राय स्वतत्र और स्वावलबी होते थे। गाव का सारा कारोबार और उसका शासन गाव की पचायत करती थी। गाव की रचना भी बडे सुदर ढग से होती थी। मध्य मे ब्राह्मणो की गली होती थी, जिसे अग्रहारम कहते थे। आवश्यकतानुसार एक या दो सीधी सडके होती थी, जिनके दोनो तरफ कतार मे मकान बने रहते थे। गली की एक छोर पर मदिर होता था। बाहर की गलियो मे किसान, वनिये, शिल्पी आदि के मकान होते थे। गलिया साफ-सुथरी और चोडी होती थी। आज भी इस तरह के हजारो गाव यहा देखने को मिलते है।

ब्राह्मण—उस समय के ब्राह्मण बडे सदाचारी और अल्प-सतोषी होते थे। वे अपना अधिकाश समय वेदाध्ययन और यज्ञादि कर्म मे बिताते थे। वे गाय पालते थे और सादा और सरल जीवन व्यतीत करते थे। उनके घरो को 'अकरम' और उन गलियो को जिनमे ब्राह्मण निवास करते थे 'अग्रहारम' कहते थे।

किसान—समाज मे किसानो का बडा आदर था। वह अन्नदाता समझा जाता था और सब लोग उसकी इज्जत करते थे। दक्षिण के किसान बडे सुखी थे। फसल कटने के बाद वे भिन्न-भिन्न प्रकार के त्यौहार मनाते और नाच-गान मे अपना समय बिताते थे। लोग भोजन मे दूध, दही और मास का व्यवहार करते थे। चावल और ज्वार से कई तरह के पकवान बनते थे। प्राय सब वर्ग के लोग शराब पीते थे। चावल, शहद और ताडी से शराब बनाई जाती थी।

गावो मे अमीर और गरीब दोनो तरह के लोग रहते थे। अमीरो के घरो को 'माडम' कहते थे, जिसका अर्थ होता है मजिलवाला मकान। इससे मालूम होता है कि गावो मे भी दुमजिले या तिमजिले मकान होते थे। प्रारभ मे मकान लकडियो से बनते थे, पीछे चलकर पत्थरो का उपयोग आरभ हुआ। गरीब लोग प्राय झोपडे बनाकर रहते थे।

व्यापारी—नगरो और गावो के विकास के साथ व्यापार की भी उन्नति हुई और व्यापार की उन्नति के साथ वणिक जाति का अभ्युदय हुआ, जिसका मुख्य पेशा व्यापार था। ये जल औल स्थल दोनो मार्गों से व्यापार करते थे। पुहार (कावेरि-पू-पट्टिणम) के व्यापारी अत्यत धनाढ्य और समृद्धिशाली थे। चोळ राजाओ के काल मे देश मे अवाध्य शाति थी और शाति के समय व्यापार की उन्नति स्वाभाविक थी। पुहार के व्यापारियो ने अपनी व्यापार-निपुणता से अपार धन सचित किया था और राज्य मे बडी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

विनोद और प्रकृति प्रेम—तमिळ लोग बडे खुशदिल और विनोदी होते थे। सगीत और नृत्य उनके मनोरजन के प्रचलित साधन थे। प्राय प्रत्येक गाव में एक मैदान होता था जिसे आडुकलम या नृत्यशाला कहते थे। फुरसत के समय गाव के लोग इसी मैदान मे इकट्ठे होते और नाच-रग मे अपना समय बिताते थे। इन नृत्यो मे गाव की स्त्रिया भी भाग लेती थी। कुछ लोग गाने-बजाने का पेशा भी करते थे।

प्राचीन तमिळ प्रकृति के बडे प्रेमी और फूलो के शौकीन होते थे। प्राय प्रत्येक गाव मे फल-फूल का बगीचा होता था। स्त्री-पुरुष फूलो की मालाए धारण करते थे। युद्ध-भूमि मे भी फूलो का उपयोग होता था। प्रत्येक जाति का चिह्न एक पुष्प विशेष होता था और उस जाति के वीर युद्ध-क्षेत्र मे जाते समय उस पुष्प विशेष को अपने सिर मे बाधकर या उसकी माला पहनकर युद्ध करने जाते थे। उत्सवो मे फूलो का प्रचुर परिमाण मे उपयोग होता था। फूलो के अतिरिक्त शृगार के लिए पेडो के सुदर पत्तो का भी उपयोग होता था। कभी-कभी वस्त्रो के अभाव मे पत्तो को सीकर भी पहनने के लिए कपडे बनाये जाते थे। तोळकाप्पियर ने अनेक जगहो पर पत्ते से बने हुए वस्त्र का जिक्र किया है। शायद विवाह के समय वर के द्वारा वधू को पत्तो से बना हुआ वस्त्र भेट करने की भी प्रथा थी।

'शिलप्पधिकारम' मे सगीत और नृत्य की उत्पत्ति के सबध मे एक रोचक कथा का वर्णन मिलता है। एक बार इद्र ने एक बहुत बडा दरबार किया, जिसमे स्वर्ग के सभी देवताओ को निमत्रित किया गया। रभा, उर्वशी आदि अप्सराओ का सगीत और नृत्य हो रहा था। सभा मे इद्र का पुत्र जयत भी उपस्थित था। अगस्त्य मुनि भी सभा मे विराजमान थे। भरी सभा मे जयत और उर्वशी ने कुछ अनुचित व्यवहार किया, जिसे देखकर अगस्त्य मुनि क्रोधित हो उठे। उन्होने शाप

दिया कि जयत विंध्य पर्वत पर बास बनकर जन्म लेगा और उर्वशी पृथ्वी पर वेश्या बनकर जन्म ग्रहण करेगी। ऋषि का यह भयकर शाप सुनकर दोनो स्तब्ध हो गये और क्षमा-याचना करते हुए मुनि के चरणो पर जा गिरे। उन्हे पश्चाताप करते हुए देखकर मुनि का क्रोध शात हो गया और उन्होने कहा—"अब तो वचन व्यर्थ नही जा सकते, पर इतना आशीर्वाद देता हू कि भू-लोक पर नृत्य का सबध जयत के साथ चिरस्थायी रहेगा और उर्वशी की सताने सगीत कला मे प्रवीण होगी।" उसी समय से नृत्य की उत्पत्ति जयत से मानी जाती है और नर्तकिया अपने को उर्वशी की सतान मानती है। 'तलैकोल' नामक नृत्य के समय रगस्थल के मध्य मे रत्नो से जडित एक बास की छडी रखी जाती थी, जिसे जयत का प्रतीक माना जाता था। नर्तक इसे रगशाला के बीच मे खडी करके उसके चारो ओर वृत्ताकार मे नृत्य करते थे। नृत्य आरभ करने के पूर्व इस छडी की सम्यक पूजा होती थी। सोने के पात्र मे लाये गये जल से इसका अभिषेक किया जाता था, रग-बिरगे फूलो की मालाए पहनाई जाती थी, फिर उसे हाथी पर सवार कराकर नगर मे घुमाया जाता था। नर्तक लोग जुलूस के आगे-आगे चलकर रगशाला मे पहुचते और जयत की इस प्रतिमा को यथास्थान प्रतिष्ठापित करके नृत्य आरभ करते थे। उस दिन की प्रधान नर्तकी पहले उस दड की पूजा करती थी और उसके बाद नृत्य आरभ करती थी। कभी-कभी नर्तकी उस दड को अपने सिर पर रखकर भी नृत्य करती थी।

नृत्य के कई प्रकार थे, जिन्हे आट्टम, कूत्तु और कुनिप्पु कहते थे। भिन्न-भिन्न अवसरो पर भिन्न-भिन्न प्रकार के नृत्यो का अभिनय होता था। कही-कही मृत शरीर के चारो तरफ खडे होकर नाचने और गाने की भी प्रथा का उल्लेख मिलता है। आजकल भी निम्न श्रेणी के अब्राह्मणो मे यह प्रथा प्रचलित है कि शव यात्रा के समय कुछ लोग अर्थी के आगे-आगे नाचते-गाते एव ढोल और तुरही बजाते हुए जाते है।

आट्टम और कूत्तु से एक नये प्रकार के नृत्य का भी विकास हुआ, जिसमे मूक-नृत्य होता था और नर्तक केवल आगिक अभिनय से हृदय के भावो को व्यक्त करते थे। यह नृत्य अब भी दक्षिण मे प्रचलित है। विशेष रूप से इसका अभिनय केरल प्रदेश मे होता है। देवताओ की पूजा के समय भी नृत्य का अभिनय होता था। मुरुगन, मायोन और कोर्रवै आदि देवताओ के उत्सवो मे नृत्य

और सगीत का प्रदर्शन प्रधान रूप से होता था। 'शिलप्पधिकारम' मे अनेक अवसरो पर भावी आपत्ति से बचने के लिए नृत्य द्वारा भगवान को प्रसन्न करने का उल्लेख मिलता है। 'शिलप्पधिकारम' मे ही दक्षिण मे ग्वालो द्वारा कृष्ण की पूजा का वर्णन भी है। इस नृत्य का नाम 'कुरवैक्कूत्तू' दिया गया है। इसी तरह और भी कई प्रकार के नृत्यो के नाम इस महाकाव्य मे दिये गये है।

'शिलप्पधिकारम' मे नाच-गान के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्यो का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। वीणा, मुरली, मृदगम आदि उस समय के प्रचलित वाद्य थे। याळ उस समय का एक विशेष वाद्य था, जो अब अप्राप्य है। लडकियो को सात-आठ बरस तक गाने और नाचने की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा पूरी होने पर राजा के सामने अपनी योग्यता की परीक्षा देनी पडती थी और जो उसमे उत्तीर्ण होती थी, उनको प्रमाण-पत्र दिये जाते थे।

किसीने कहा है—"नृत्य शरीर के अवयवो का सगीत है और सगीत वाणी का नृत्य।" आज भी दक्षिण भारत के जीवन मे सगीत और नृत्य का बहुत ऊचा स्थान है। प्राय बालिकाओ को अन्य शिक्षा के साथ-साथ सगीत एव नृत्य का अभ्यास कराया जाता है। भरत नाट्यम् दक्षिण की एक लोकप्रिय कला है।

धर्म—पुहार चोळ राजाओ की राजधानी होने के कारण सभी धर्मावलबियो का केद्र स्थान बन गया था। चोळ राजा धर्म के मामले मे अत्यत उदार थे, अतएव उनका सरक्षण पाकर जैन, बौद्ध, ब्राह्मण, शैव, वैष्णव आदि सभी धर्मों के अनुयायी नगर मे निवास करते थे और सभी धर्मो के मदिर और विहार यहा बने हुए थे। 'शिलप्पधिकारम' मे लिखा है कि नगर मे कल्पवृक्ष, ऐरावत, वज्रायुध इद्र, बलदेव, सूर्य, चद्र, शिव, सुब्रह्मण्य, सास्ता, जिन, काम, यम आदि देवताओ के मदिर है, जिनमे नियम से पूजा-अर्चना होती है। नगर मे बौद्धो के सात विहार थे, जिनमे ३०० बौद्ध साधु निवास करते थे। यम देवता का मदिर नगर से बाहर श्मशान भूमि मे था। ब्राह्मणो का बडा आदर होता था, क्योकि वे यज्ञादि कर्मो द्वारा देवताओ को तृप्त करके राज्य की समृद्धि बढाने मे सहायता देते थे और पवित्र वेदो और अग्नि के सरक्षक माने जाते थे। सबको अपने-अपने ढग से पूजा करने का अधिकार था और सब धर्मावलबी एक साथ मिलकर प्रेम से रहते थे।

कुछ प्राचीन द्रविड प्रथाए—प्राचीन द्राविडो की प्रथाओ और विश्वासो का

कोई वहुत स्पष्ट चित्र कही नही मिलता। परतु प्राचीन ग्रथो मे कुछ विशेष प्रथाओ का वर्णन मिलता है।

सबसे पहले हमे 'शिलप्पधिकारम' और 'मणिमेखलै' मे इद्र-पूजा का वर्णन मिलता है, जिससे मालूम होता कि आज से दो हजार वर्ष पहले तमिळनाडु मे इद्र की पूजा वडी धूमधाम से होती थी। इद्र मरुदम (उपजाऊ भूमि) के देवता माने जाते थे। यह पूजा वर्षा ऋतु मे होती थी और अट्टाईस दिनो तक चलती थी। पूजा के आरभ मे लोग अपने घरो और गावो की सफाई करते, मदिरो और मकानो पर ध्वजाए फहराई जाती, मकानो की सजावट होती, प्रसिद्ध नागरिक और राज-कर्मचारी राजा के पास जाकर शुभकामनाए प्रकट करते, इद्र की मूर्ति को कावेरी के जल से स्नान कराया जाता और पूजा आरभ होती। उत्सव के समय पुराण और धार्मिक ग्रथो पर भाषण तथा नृत्य-सगीत भी होते थे। पूजा के अतिम दिन लोग सपरिवार समुद्र मे जाकर स्नान करते थे। आज से हजारो वर्ष पूर्व उत्तर भारत मे भी इद्र की पूजा होती थी, जिसका वर्णन 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' मे मिलता है, परतु द्रविड लोगो का विश्वास है कि दक्षिण के देवता इद्र उत्तर के देवता इद्र से भिन्न थे। इद्र की पूजा के साथ-साथ वलराम की पूजा का भी उल्लेख मिलता है। किंतु इन दोनो देवताओ की पूजा आजकल प्रचलित नही है।

व्रतो मे 'पावैनोवु' नामक व्रत प्रसिद्ध था। यह कुमारियो का व्रत था। इसमे कुमारिया योग्य पति पाने के लिए कृष्ण की पूजा करती थी। आडाल ने कृष्ण की प्रार्थना मे 'तिरुप्पावै' गाया है। आज भी दक्षिण मे कुमारिया यह व्रत मनाती है और उस दिन 'तिरुप्पावै' के पद्य गाती है। यह व्रत धनुर्मास म (मार्गशीर्ष) आता है।

ज्योतिष—दक्षिण के लोग अति प्राचीन काल से ही ज्योतिष मे विश्वास रखने-वाले थे। उस समय इस विद्या का अधिक विकास नही हुआ था। कुछ अध-विश्वासो को ही वे लोग ज्योतिष मानने लगे थे। ज्योतिषी का रूप केवल आगम कहना होता था। पहाडी प्रदेश मे वसनेवाली कुरवा जाति के लोग, विशेष रूप से उनकी स्त्रिया, आगम कहने मे निपुण समझी जाती थी। सघम काल के साहित्य मे कई स्थानो पर इसका उल्लेख मिलता है। आज भी इस जाति के लोग सवेरे उठकर डमरु वजाते हुए आगम कहते हुए भीख मागते फिरते है। उनकी 'डमरू' के गुडगुड शब्द के कारण उनका नाम 'गुडुगुडुप्पाडि' पड गया है। भविष्यवक्ताओ का

दूसरा वर्ग भगवान मुरुगनम के उपासको का होता था। ये लोग भी भविष्य कहने मे कुशल होते थे। इन्हे 'मत्रवादी' कहते है। आज भी केरल मे इस तरह के मत्रवादी मिलते है।

वैद्यक—अन्य शास्त्रो की तरह तमिळ लोगो ने चिकित्सा-शास्त्र का भी विकास किया था, जो आज भी 'सिद्ध-वैद्यम' के नाम से तमिळ देश मे प्रचलित है। जैसाकि इसके नाम से ही प्रकट है, इसका आविष्कार सिद्धो या सतो द्वारा हुआ होगा। प्रचलित विश्वास के अनुसार अन्य शास्त्रो की तरह इस शास्त्र के आविष्कर्ता भी अगस्त्य मुनि ही माने जाते है। कहा जाता है कि इस विषय का सबसे पहला ग्रथ सिद्धनर या शिवनर नामक किसी सत ने लिखा था, जिसमे सात लाख श्लोक थे। इसके पश्चात अनेक विद्वानो ने इस विषय पर ग्रथ रचे, जिनमे नदी, शकर, सतर, सनतर, शकरकुमार, तिरुमूलर, पातजली, अगस्त्यर, पुलत्तियार, धनवत्री, सत्तयिमुनि, तेरयियार, उक्किमुनि आदि के नाम लिये जाते है। यह कहना कठिन है कि इनमे कितने नाम काल्पनिक और कितने सत्य है। पातजली और धनवत्री नाम तो सस्कृत आयुर्वेदाचायो से लिये गये है। बहुत सभव है कि आयुर्वेद के चरक, सुश्रुत और अष्टाग हृदय आदि ग्रथो के आधार पर ही सिद्ध वैद्यम का विकास हुआ हो।

सिद्ध वैद्यम चिकित्सा का प्रधान उद्देश्य स्वस्थ शरीर मानता है, क्योकि "स्वस्थ शरीर के बिना आनद और मुक्ति दोनो दुर्लभ है।" इसमे चिकित्सा की तीन अवस्थाए मानी गई है—(१) रोग निवारण, (२) चिकित्मा, तथा (३) रोगोत्तर स्वास्थ्य लाभ। इसी तरह चिकित्सा के तीन प्रकार माने गये है—(१) मूलीकै (जडी-बूटी), (२) अरुवै (शल्य चिकित्सा), और (३) भस्मम। सत तिरुमूलर ने अपने ग्रथ मे दस प्रकार के औषधियो के विवरण दिये है (१) मूलीकै, (२) क्षार, (३) अम्ल, (४) उपवासम्, (५) शरीर शुद्धि, (६) गखिया, (७) धातु (लौह आदि), (८) सार या काढा, (९) रस गोलिया, (१०) योग और ध्यान, जिसमे मत्र आदि भी सम्मिलित है। सिद्ध वैद्यम की अधिकाश बाते आयुर्वेद से मिलती-जुलती है।

द्रविड लोगो की प्राचीन सस्कृति का अध्ययन करने से मालूम होता है कि उनकी कई ऐसी प्रथाए है, जो उत्तर भारत की निम्न जातियो मे प्रचलित है। उदाहरण के लिए काली, शीतला (मारियम्मन) और भूत-प्रेतो की पूजा, देवताओ

: १५ :

प्राचीन तमिळ् का व्यापार

तमिळनाडु तीन ओर से समुद्र से और एक ओर से भूमि से आवेष्टित है। अतएव यहा के निवासियो की व्यापार और समुद्र-यात्रा मे अभिरुचि होना स्वाभाविक था। अति प्राचीन काल से ही तमिळ लोग चतुर शिल्पी, निपुण नाविक और कुशल कारीगर होते थे। इनके बुने हुए सूती और जरी के कपडो की विदेशो मे बडी ख्याति थी। ये अपने हाथ से बनाई हुई नावो पर सवार होकर दूर-दूर के देशो मे व्यापार के लिए जाते थे। प्राचीनतम तमिळ ग्रथो मे भी जलयात्रा से सबध रखनेवाले अनेक शब्द मिलते है। जैसे—कडल, परवै, पुनारि, अर्कलि, मुन्निरि, कलम, मरक्कलम आदि। इन शब्दो मे से कई भिन्न -भिन्न प्रकार की नौकाओ के नाम है। दक्षिण के कई बदरगाहो मे नौका-निर्माण के लिए बडे-बडे कारखाने भी स्थापित थे। तमिळ लोगो ने हिंद महासागर के अनेक द्वीपो मे उपनिवेश स्थापित किये थे, जहा उन्होने हिंदू धर्म और सस्कृति का प्रचार किया था। तमिळ देश के जहाजो के झडो पर मछली का चिह्न होता था, जो उनकी तीव्रगति और समुद्र यात्रा योग्य होने का प्रतीक था।

दक्षिण मे व्यापार के अनेक केंद्र और बदरगाह थे, जहा से जल और स्थल मार्गो से व्यापार की वस्तुए दूर-दूर के देशो मे भेजी जाती थी। उत्तर भारत के प्रदेशो के साथ द्रविड लोगो का व्यापारिक सबध प्राय वैदिक काल मे ही आरभ हो गया था। वैदिक काल मे ही, अर्थात ईसा से लगभग २५०० वर्ष पहले ही, दक्षिण से मोती और मयूरपख उत्तर के बाजारो मे पहुच चुके थे और आर्य लोग प्रचुर मात्रा मे इन वस्तुओ का उपयोग करते थे। देवताओ के रथो, घोडो और तरकसो को सजाने मे मोती का उपयोग होता था। ऋग् और अथर्व वेदो की ऋचाओ मे मोती की बहुत प्रशसा की गई है। मोती और मयूरपख के अतिरिक्त कुछ परिमाण मे हीरा और सोना भी दक्षिण से उत्तर भारत को जाया करता था। वैदिक काल मे ही सोने का उपयोग आभूषण तथा मुद्रा-निर्माण मे होने लगा

था और उसी समय से दक्षिण मे खानो से सोना निकालने का कार्य आरभ हो गया था।

समुद्र मार्ग से दक्षिण का व्यापारिक सबध पूरव मे जावा, सुमात्रा, वोर्नियो, हिदचीन, कवोडिया आदि देशो के साथ, और पश्चिम मे रोम, यूनान, मिस्र, आर्केडिया, अरव आदि देशो के साथ था।

तमिळ ग्रथो मे इस वात के भी प्रमाण मिलते हैं कि दक्षिण के वदरगाहो मे व्यापार की उन्नति एव जहाजो की सुरक्षा के लिए सब प्रकार का प्रवध रहता था, समुद्र पर ऊचे दीपस्तभ वने रहते थे, जिनमे से कुछ ईट-पत्थर के और कुछ ताड के वडे-वडे वृक्षो को काटकर वनाये जाते थे।'

तमिळ लोगो ने विदेशो के साथ अपना व्यापारिक सवध किस समय आरभ किया, इसका कोई प्रामाणिक इतिहास मिलना कठिन है। सभव है कि आर्य लोगो के भारत मे आने से पूर्व ही द्रविड लोग पश्चिमी एशिया के देशो के साथ अपना सवध स्थापित कर चुके हो। कुछ विद्वानो का मत है कि ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व भी सुमेर के साथ दक्षिण भारत का व्यापारिक सवध था और सुमेर की राजधानी अर (U1) के खडहरो मे भारत मे उत्पन्न होनेवाली टीक (शाखू) लकडी का पाया जाना इस वात को प्रमाणित करता है। यह टीक दक्षिण की खास उपज है और आज भी मलवार के तट पर उत्पन्न होनेवाली टीक लकडी सर्वोत्तम समझी जाती है। इसी प्रकार प्राचीन काल मे वेवीलोन मे उपयोग मे आनेवाले वस्त्रो की सूची मे 'सिंधु' (मसलिन) नाम का उल्लेख मिलता है। स्वर्गीय श्री पी० टी० श्रीनिवास अय्यगार का मत है कि यह मसलिन दक्षिण से वेवीलोन जाता था और 'सिधु 'शब्द तमिळ के 'सिदी' (कपडा) शब्द से बना है। तमिळ देश अति प्राचीन काल से ही सूती वस्त्रो के लिए प्रसिद्ध था।

फिलस्तीन (पैलिस्टाइन) के साथ दक्षिण भारत का व्यापारिक सबध कम-से-कम तीन हजार वर्ष पुराना मालूम होता है। १००० ई० पू० मे ही टायर के राजा हिरम और हीब्रू राजा डेविड ने (जो सोलोमन का पिता था) जहाज़ो का एक बेडा तैयार किया था। यह बेडा पाच वर्ष मे एक वार एला से रवाना होकर वेरेनिके, केन, वरिगजा आदि के वदरगाहो से होता हुआ मलवार तट पर मुजिरिस (मुसिरि) के वदरगाह मे पहुचता था और भारत से चादी, हाथीदात, वनमानुस (वदर) और मोर पक्षियो को लेकर वापस जाता था।

सोलोमन ने भी, जिसका समय ईसा से ९५० वर्ष पूर्व माना जाता है, अपने उपयोग के लिए ये चीजे भारत से प्राप्त की थी। हीरम ने भारत से बहुत सी चदन की लकडी मगवाई थी और अपने यहा के देव-मदिर तथा राज-भवन मे चदन के खभे लगवाये थे। दक्षिण मे कोयबत्तूर, सेलम और मैसूर के इलाको मे आज भी चदन के पेड बहुत होते है।

पश्चिम एशिया और असीरिया के साथ भी दक्षिण भारत के व्यापारिक सबध की कहानी बहुत पुरानी मालूम होती है। १४०० ई० पू० मे प्रथम असीरियन साम्राज्य की स्थापना हुई थी। प्राय उसी समय भारत से सोना, लोहा, रेशम, मोती, मसलिन तथा अन्य उपयोगी वस्तुए असीरिया पहुच चुकी थी। इसमे सदेह नही कि इनमे से मोती, मसलिन आदि कई चीजे दक्षिण भारत से ही वहा गई होगी। ग्रीक कवि होमर की रचनाओ मे भी इनमे से अनेक चीजो का उल्लेख पाया जाता है। कुछ विद्वानो का मत है कि असीरिया के साथ दक्षिण भारत का सपर्क ई० पू० आठवी शती के बाद आरभ हुआ होगा। कनेंडी ने लिखा है कि असीरिया के बादशाह शाल मनेसर चौथे को भारतीय हाथी भेट मे दिये गये थे। इस बादशाह का समय ७२७ ई० पू० माना गया है। 'बवेरुजातक' मे भी भारत के किसी व्यापारी की कथा है, जो यहा से कई मोर पक्षी बेचने के लिए बेबीलोन ले गया था। दक्षिण मे पैदा होनेवाली चदन की लकडी भी उसी समय बेबीलोन पहुच चुकी थी। कनेंडी ने लिखा है कि ७०० ई० पू० मे वहा पर द्रविड लोगो की एक बस्ती भी थी।

तमिळ भाषा के प्रथम व्याकरण 'तोळकाप्पियम' मे भी जो ४०० ई० पू० की रचना मानी जाती है, तमिळ लोगो के विदेशो के साथ व्यापारिक सबध का उल्लेख मिलता है। मदुरा के पाडिय राजा ने ग्रीक बादशाह आगस्टस (२० ई० पू०) के दरबार मे अपना राजदूत भेजा था। मालूम होता है कि दक्षिण भारत से काली और लाल मिर्च के अतिरिक्त चावल भी पश्चिम एशिया के देशो मे भेजा जाता था। ग्रीक भाषा मे चावल को 'ओरिजा' कहते है, जो तमिळ के 'अरिशि' शब्द का रूपातर है और ग्रीक भाषा का 'पेप्पिरी' (काली मिर्च) शब्द भी तमिळ के 'तिप्पिली' शब्द से बना है। इन उद्धरणो से विदित होता है कि ईसवी सन से सदियो पहले पश्चिम एशिया के देशो के साथ दक्षिण भारत का व्यापारिक सबध स्थापित हो चुका था।

सीलोन (लका) तो दक्षिण भारत का एक पडोसी ही देश है, अत इन दोनो

के बीच परस्पर सबध और सद्भावना का होना स्वाभाविक ही था । लका के उत्तरी भाग की अधिकाश आबादी आज भी तमिळ है । वहा तमिळ भाषा बोली जाती है । उत्तरी लका के निवासी किसी समय तमिळ देश से ही जाकर वहा बस गये थे । लका के मध्य और दक्षिण भागो मे शुद्ध सिघली लोग रहते है । इनमे से अधिकाश बौद्ध मतावलबी है और इनकी भाषा सिघली आर्य-परिवार की भाषाओ तथा पाली से निकट सबध रखती है ।

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व लका के राजा विजयबाहु ने पाडिय राजा की कन्या के साथ विवाह किया था और पाडिय राजा ने राजकुमारी के साथ दहेज मे हाथी, घोडे, नौकर-चाकर, सोना-चादी आदि अनेक वस्तुए प्रचुर मात्रा मे बडे-बडे जहाजो मे लादकर भेजी थी । उसी समय से लका के साथ तमिळ देश का व्यापारिक और सास्कृतिक सबध आरभ हो गया था, जो आज तक वर्तमान है ।

ऊपर हम इस बात का उल्लेख कर चुके है कि ईसा से अनेक शताब्दियो पूर्व से ही दक्षिण भारत का व्यापारिक सबध चीन, हिंदचीन, कबोडिया आदि देशो के साथ आरभ हो चुका था। दक्षिण के व्यापारी बडे-बडे जहाजो मे अपने सामान लादकर बर्मा के मार्ग से चीन और हिंदचीन पहुचते थे और अपनी वस्तुए बेचकर वहा से अमूल्य धन और सपत्ति लेकर वापिस आते थे। चीन के मार्ग मे पडनेवाले जावा, सुमात्रा आदि देशो के साथ भी दक्षिण का व्यापारिक सबध था, जिसका उल्लेख तमिळ के 'मणिमेखलै' महाकाव्य मे भी मिलता है। चीन से इस देश मे आनेवाली वस्तुओ मे चीनी और रेशम प्रधान आयात पदार्थ थे। रेशम को प्राचीन तमिळ ग्रथो मे 'चीनम' कहा गया है, जिससे यह प्रगट होता है कि यह सर्वप्रथम चीन से ही भारत मे आया था। प्राय उसी समय मलय द्वीप से पान भी दक्षिण मे लाया गया। पान यद्यपि आज दक्षिण की एक प्रधान उपज है और इसका उपयोग भी यहा प्रचुर मात्रा मे होता है, तो भी तमिळ भाषा मे इसके लिए कोई शब्द नही है । तमिळ मे इसके लिए व्यवहृत शब्द 'वेट्रिलै' है, जिसका अर्थ हरा पत्ता होता है ।

ईसा की पहली शताब्दी मे रोम के सम्राट का ध्यान दक्षिण की सपन्न भूमि और यहा प्राप्त होनेवाली अनेक अमूल्य वस्तुओ की ओर आकर्षित हुआ। उन्होने अपने देश के व्यापारियो को भारत से मोती, शख, चदन आदि बेशकीमती चीजो को लाने के लिए प्रोत्साहित किया। रोमन सम्राट आगस्टस के समय मे भारत के

साथ व्यापार मे विशेष रूप से वृद्धि और उन्नति हुई। रोम से हजारो व्यापारी प्रतिवर्ष अपने जहाज लेकर दक्षिण के बदरगाहो मे आते और यहा से बहुमूल्य वस्तुए अपने देश मे ले जाकर बेचते और अपार धन पैदा करते। रोम के सपन्न घरानो की स्त्रिया भारत से जानेवाली विलास की वस्तुओ से बहुत आकर्षित होती और उनका उपयोग करने मे अपनी प्रतिष्ठा समझती थी।

उस काल के ग्रीक और लैटिन भाषा के ग्रथो मे भारत के साथ व्यापारिक सबध की अनेक बातो का उल्लेख मिलता है। इन विलासिनी नारियो को मद्रास, मलबार और नीलिगिरी से जानेवाले बदर और तोते पालने का बडा शौक था। यहा से भैस और हाथी भी भेजे जाते थे। उत्सव के दिनो मे रोमन सम्राट का रथ खीचने के लिए भारतीय हाथियो का उपयोग होता था।

खाने-पीने के सामान मे काली मिर्च, इलायची आदि के अतिरिक्त यहा से घी भी चमडे के थैलो मे भरकर रोम ले जाया जाता था। विलास की वस्तुओ मे हाथीदात और मोती सबसे अधिक मात्रा मे निर्यात होते थे। हाथीदात से कुर्सिया, मेजे, दरवाजे, कघी तथा शृगार के दूसरे सामान बनाये जाते थे। ये चीजे मुशिरि और नेलाशिडा बदरगाहो से भेजी जाती थी। धीरे-धीरे रोम के साथ दक्षिण भारत का व्यापार इतना अधिक बढा कि दक्षिण के प्रसिद्ध नगरो और व्यापार क्षेत्रो मे रोमन लोगो की बस्तिया स्थापित हो गई और रोमन सिक्को का भी व्यवहार होने लगा। अकेले मुशिरि नगर मे रोमन व्यापार की रक्षा के लिए दो हजार से अधिक सैनिक निवास करते थे।

मदुरा तथा आस-पास के नगरो मे भी अनेक रोमन व्यापारी और शिल्पकार रहते थे। तमिळ के प्राचीन ग्रथो मे मगध, अवती, महाराष्ट्र आदि देशो के निपुण शिल्प कलाकारो के साथ यवन (रोमन) शिल्पकारो का भी उल्लेख मिलता है। रोमन सैनिक पाडिय राजा के दरबार मे द्वारपाल का काम भी करते थे। राजा के शस्त्रागार मे अनेक प्रकार के रोमन यान्त्रिक आयुधो का सग्रह था।

रोमन व्यापारियो ने यहा पर आगस्टस की याद मे एक मदिर भी बनवाया था और दक्षिण के मदिरो मे दीप जलाने के लिए बहुत सा धन दान मे दिया था। दक्षिण के अनेक शहरो मे भूमि के अदर गडे हुए बहुत से रोमन सिक्के पाये गये है, जिससे इस देश मे इनके प्रचलन का प्रमाण मिलता है। ईसा की दूसरी शताब्दी मे रोमन लोगो का व्यापार दक्षिण मे इतना विस्तृत हो गया था कि यहा का कोई नगर ऐसा

नही था, जहा उनका कार-वार न होता हो। मदुरा से प्राप्त रोमन सिक्को के आधार पर मिस्टर सिवेल ने यह अनुमान लगाया है कि रोमन साम्राट आगस्टस के समय मे ही रोम के साथ दक्षिण भारत का व्यवस्थित व्यापार आरभ हुआ और वह सम्राट नीरो की मृत्यु तक (सन ६८ ई०) अवाध गति से चलता रहा। इस समय यह व्यापार अपनी पराकाष्ठा पर पहुच चुका था। नीरो की मृत्यु के बाद रोमन साम्राज्य का पतन आरभ हुआ और उसीके साथ भारत के साथ उसके व्यापार मे भी अवनति होने लगी, जो सन २७० ई० तक विल्कुल वद-सा हो गया। कुछ काल तक शिथिल रहने के वाद वैजोनाइट सम्राटो के अधीन फिर इस व्यापार मे तरक्की दिखाई दी। यही समय था जव दक्षिण भारत मे पाडिय, चेर और चोळ राजाओ का प्रभुत्व स्थिर हुआ था। उनका सरक्षण पाकर व्यापार की उन्नति होना स्वाभाविक था। किंतु समुद्री डाकुओ का उपद्रव वढ जाने के कारण फिर कुछ काल तक इस व्यापार मे शिथिलता आ गई। प्लिनी लिखता है कि "आजकल भारत जानेवाले व्यापारियो को तीरदाज योद्धाओ को भी अपने साथ ले जाना पडता है, क्योकि भारतीय समुद्र मे डाकुओ का उपद्रव वहुत वढ गया है।" प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ने अपनी यात्रा मे डाकुओ के उपद्रव का रोचक वर्णन किया है। इन उपद्रवो के होने पर भी दक्षिण भारत का रोम के साथ घनिष्ठ सवध कई सौ वर्षो तक बना रहा। सन ४५० ई० तक मदुरा नगर मे रोमन लोगो की वस्तिया वर्तमान थी।

दक्षिण का सबसे मूल्यवान रत्न, जो रोम निवासियो को अति प्रिय था, मोती था, जिसको तमिळ मे 'मुत्तु' कहते है। यह मोती पांडिय राज्य के दक्षिणी समुद्र से प्राप्त होता था और प्रति वर्ष लाखो रुपये का मोती यहा से रोम तथा ग्रीस आदि देशो को भेजा जाता था। रोम के प्रतिष्ठित परिवारो की स्त्रिया मोतियो से ही अपना शृगार करती थी और अपने शरीर के भिन्न-भिन्न अगो को इससे विभूषित करती थी। बहुत सपन्न घरानो की स्त्रिया अपने जूतो मे भी मोती पिरोती थी। यह मोती रोम मे सोने से तिगुने दाम पर विकता था। उस जमाने के रोम के सपन्न परिवारो की स्त्रियो मे मोती के प्रति पागलपन इतना वढ गया था कि रोमन इतिहासकार प्लिनी को यह लिखने को वाध्य होना पडा था—"हमारी स्त्रिया मोती को अपनी उगलियो से लटकाने या दो-तीन मोतियो को गूथकर कानो मे पहनने मे गर्व का अनुभव करती है और दो-तीन मोतियो के टकराने से जो शब्द

होता है, उसको सुनकर प्रफुल्लित हो जाती है । यहा तक कि गरीब परिवारो की स्त्रिया भी इनकी नकल करना चाहती है। कुछ स्त्रिया तो अपने जूते के फीतो मे ही नही, बल्कि तमाम जूते पर मोती पिरो लेती है और इससे भी सतुष्ट न होकर वे मोतियो पर ही पैर रखकर चलना भी चाहती है।" आगे चलकर यही लेखक इस बात की शिकायत करता है कि रोम की स्त्रियो की विलासिता के कारण प्रति वर्ष लाखो रुपये हमारे देश से भारत को चले जाते है। वह लिखता है— "रोम साम्राज्य से प्रति वर्ष भारत देश को साढे पाच करोड रोमन सिक्के (जो ४८६६७६ अग्रेजी पाउड के बराबर होता है) भेजने पडते है, जिससे देश का आर्थिक शोषण हो रहा है । रोमन स्त्रिया बेशर्मी के साथ भारत से आनेवाले मसलिन (webs of woven wind) पहनकर अपने सौंदर्य का प्रदर्शन करती है।" इससे विदित होता है ईसा की दूसरी शताब्दी मे भी भारत के बने हुए कपडे कितने बारीक होते थे और रोम आदि सभ्य देशो मे उनका कितना मान था। सम्राट क्लॉडियस की स्त्री लोरला तीन लाख पाउड मूल्य के मोतियो के आभूषण पहनकर बाहर निकला करती थी । मिस्र की रानी क्लियोपेट्रा के पास भी बहुत से मोतियो के आभूषण थे। इसके पास दो ऐसे मोती थे, जिनमे से प्रत्येक का मूल्य ८०,००० पाउड था।

रोम से भारत को आनेवाली वस्तुओ मे मूगा, शराब और सीसा मुख्य थी। किंतु भारत से रोम जानेवाली वस्तुओ का मूल्य इतना अधिक होता था कि उनके बदले मे सामग्री न भेज सकने के कारण इन्हे स्वर्ण-मुद्राए भारत को भेजनी पडती थी। किसी समय रोम से स्वर्ण-मुद्राओ का निर्यात इतना अधिक हो गया कि उससे भयभीत होकर वहा की जनता ने विरोध आरभ कर दिया। रोमन सम्राटो ने स्वर्ण-मुद्रा की कमी की पूर्ति के लिए नकली सिक्के तैयार कर भारत मे भेजना आरभ किया। किंतु बहुत शीघ्र भारत के लोगो को यह कपट ज्ञात हो गया और यहा नकली सिक्को का चलन बद हो गया।

प्राचीन इतिहासो से ज्ञात होता है कि ई० पू० १४९ और १२७ के बीच दो भारतीय राजाओ ने पश्चिम एशिया के आर्मीनिया प्रदेश मे एक बस्ती स्थापित की थी और विषपनगर मे कृष्ण और बलराम के मदिर बनवाये थे। निश्चय ही, ये लोग व्यापार के नाते ही वहा पहुचे होगे और तिजारत की सुविधा पाकर वही बस गये होगे। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्वर्गीय श्री पी० टी० श्री-

निवास अय्यगार का खयाल है कि ये लोग दक्षिण भारतीय थे। वे कृष्ण और बलराम को दक्षिण के ही देवता मायोन और वालियोन का रूपातर मानते है। दक्षिण के प्राचीन ग्रथो मे इन दोनो देवताओ का उल्लेख मिलता है और चोळ राजाओ की प्राचीन राजधानी पुहार नगर मे बलराम का मदिर होने की बात कही गई है। जब आर्मीनिया मे ईसाई धर्म का प्रचार आरभ हुआ, तब ईसाई पादरियो ने इन मदिरो को ध्वस्त कर दिया और कृष्ण और बलराम के उपासको को जबरदस्ती ईसाई बना लिया। कनेडी लिखता है कि पाच हजार से अधिक निवासी ईसाई बनाये गये और ४३८ लोगो ने, जिनमे से अधिकाश पुजारियो और मदिरो मे कार्य करनेवाले कर्मचारियो की सताने थी, ईसाई धर्म स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, अत वे देश से निर्वासित कर दिये गये।

ईसवी सन पूर्व भी दक्षिण मे अनेक बदरगाह थे, जहा से विदेशो के साथ बराबर व्यापार होता था। इन बदरगाहो के जरिये केवल दक्षिण भारत की उपज ही नही, किंतु उत्तर भारत से आनेवाली चीजे भी विदेशो को भेजी जाती थी। 'पट्टिनप्पालै' नामक तमिळ ग्रथ मे कहा गया है—"हिमालय के रत्न और सोना, पश्चिम घाट का चदन, दक्षिणी समुद्र के मोती, पूर्वी समुद्र का मूगा, गगा और कावेरी प्रदेशो मे उत्पन्न वस्तुए, लका के खाद्य पदार्थ और बर्मा के मसाले, यहा से विदेशो को भेजे जाते है।" दक्षिण भारत के दोनो तटो पर अवस्थित बदरगाहो के अनेक उल्लेख तमिळ ग्रथो मे मिलते है। पाडिय राज्य मे सबसे प्रसिद्ध बदरगाह कोर्कै था, जो ताम्रपर्णी नदी के मुहाने पर था और जो मोती के व्यापार का सबसे बडा केद्र था। ग्रीक लेखको ने इसका नाम कोलकै दिया है। चोळ राज्य का सबसे बडा बदरगाह पुहार या कावेरि-पू-पट्टिणम था, जो कावेरी नदी के मुहाने पर दक्षिण भारत मे पूर्वी समुद्र तट पर अवस्थित था। यह नगर शायद तामिळनाडु मे पूर्वी तट पर व्यापार का सबसे बडा केद्र था, जहा प्राय सभी सभ्य देशो के जहाज आते थे। 'पट्टिनपालै' के कवि ने लिखा है—"नगर मे मूर, चीन तथा अन्य देशो के व्यापारियो के गृह बने हुए है। वे स्थानीय लोगो के साथ मिल-जुलकर रहते है। व्यापारी लोग अपने माल का वास्तविक मूल्य और उस पर होनेवाले लाभ को स्पष्ट रूप से बतलाकर ईमानदारी के साथ व्यापार करते है।" यह ग्रथ चोळ राजा करिकालचोळन की प्रशसा मे ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी मे लिखा गया था। दूसरी वस्तुओ के साथ विदेशो से शराब प्रचुर मात्रा मे इस

देश मे आती थी। तमिळ के 'अहम' और 'पुरम' सग्रहो मे भी कही-कही इस व्यापार का जिक्र मिलता है। एक स्थान पर कवि कहता है

"यवनो के बडे-बडे जहाज स्वर्ण लेकर आयेगे और गोल मिर्च लेकर वापस जायेंगे।" (अहम)

"यवनो के जहाज शीतल और सुगधित शराब लेकर आये है।" (पुरम)

ईसा की पहली शताब्दी मे (सन ६० ई० के आस-पास) किसी अज्ञात लेखक ने 'पेरीप्लस'[1] नामक ग्रथ लिखा, जिसमे उसने उत्तर और दक्षिण भारत के बदरगाहो का वर्णन किया है। उसने दक्षिण के बदरगाहो मे सबसे पहले चेकहोत्तरा (चेरपुत्र या केरलपुत्र) का नाम दिया है। चेकहोत्तरा के बाद उसने टिंडीस का उल्लेख किया, जो दक्षिण मे ग्रीक व्यापारियो का सबसे बडा केंद्र था। फिर वह मुजिरिम (मुशिरि या वर्तमान क्रैंगनूर) का वर्णन करता है, जो टिंडीस से पचास मील दक्षिण किसी नदी के मुहाने पर था। मुशिरि से पचास मील दक्षिण नेलसिंडा का बदरगाह था, जहा का राजा बदरगाह से दूर अतर्देश मे रहता था। मुशिरि बदरगाह से विदेशो को भेजे जानेवाली वस्तुओ मे 'पेरिप्लस' के लेखक ने मोती, हाथीदात, रेशमी कपडे, हीरे आदि वस्तुओ के नाम दिये है। आगे चलकर लेखक ने बलीता नामक स्थान का उल्लेख किया है, जहा एक सुदर बदरगाह था और जिसके पास ही एक समृद्ध नगर बसा हुआ था। आजकल यह स्थान वर्कला या जनार्दन् के नाम से प्रसिद्ध है और केरल मे हिंदुओ का एक प्रसिद्ध क्षेत्र है।

तमिळ देश के बदरगाहो मे सबसे प्रसिद्ध कोर्कै और कुमरि के बदरगाह थे। कोर्कै मोती के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था और पाडिय राजाओ के अधीन था। कुमरि (वर्तमान कन्याकुमारी) 'पेरिप्लस' के जमाने मे भी एक प्रसिद्ध क्षेत्र था। 'पेरीप्लस' मे कहा गया है कि "अनेक पुरुष और स्त्रिया कुमरी मे आकर ब्रह्मचर्य और पवित्रता के साथ अपना जीवन बिताती है और नियम से समुद्र मे स्नान करती है, क्योकि उनका विश्वास है कि किसी समय कोई देवी इस पुण्य स्थल मे निवास करती थी।" इससे ज्ञात होता है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व भी कन्याकुमारी प्रसिद्ध था और बदरगाह के साथ-साथ यह प्रसिद्ध पुण्य क्षेत्र भी था।

कुमरि के बाद 'पेरिप्लस' ने पूर्वी तट के कई बदरगाहो का नामोल्लेख किया

---

[1] Pariplus of the Erythraean Seas

है, किंतु उनके संबंध में उसका कथन बहुत प्रामाणिक नहीं मालूम होता। अनुमान है कि लेखक ने स्वयं उन बंदरगाहों की यात्रा नहीं की थी, पर जनश्रुति के आधार पर लिखा था। उस समय पूर्वी तटों पर चोळ राजाओं का राज था और कोडिक्करै, नागपट्टणम, कावेरिप्पू-पट्टिणम आदि प्रसिद्ध बंदरगाह थे। 'पेरिप्लस' के रचयिता ने अपने ग्रंथ में तमिळ लोगों के जलपोतों और उनकी पोत-संचालन कला की बड़ी प्रशंसा की है और लिखा है कि तमिळ लोग दो प्रकार की नावें बनाते हैं—एक छोटी, जिसका उपयोग निकटवर्ती बंदरगाहों के साथ व्यापार करने में होता है और जिसे 'संगारा' कहते हैं, दूसरी जो बहुत बड़ी होती है और पालों के सहारे जाती है। ये नावें दक्षिण से चलकर गंगा के मुहाने तक और क्रीसे तक जाती हैं। ग्रीक भाषा में 'क्रीसे' शब्द का अर्थ है सुवर्ण, इसलिए क्रीसे नाम से सुवर्णभूमि या बर्मा का बोध होता है।

टाल्मी (Ptolemy) नाम के एक लेखक ने सन १५० ई० में दक्षिण भारत का एक भूगोल तैयार किया था, जिसमें उसने दक्षिण के अनेक नगरों राजाओं और बंदरगाहों का उल्लेख किया है। इसके भूगोल से ज्ञात होता है कि ईसा की पहली और दूसरी शताब्दियों में तमिळ देश में अनेक छोटे-बड़े बंदरगाह थे, जिनके द्वारा निरंतर विदेशों के साथ व्यापार होता था और जहां अनेक देशों के व्यापारी निवास करते थे।

चीन देश के इतिहास में ईसा पूर्व सातवीं सदी में भी भारत से चीन को आनेवाली वस्तुओं का उल्लेख मिलता है। फिलीपाइन द्वीप में खुदाई करने से ईसा पूर्व सातवीं सदी के अनेक आयुध, लोहे के चाकू, कुल्हाड़ियां, भाले के फल, छुरे, शीशे की गुड़ियाएं और चूड़ियां तथा इसी प्रकार के अन्य कई सामान मिले हैं जो चेर, चोळ और पांड्य देशों की पुराने कब्रों में पाई जानेवाली इसी तरह की वस्तुओं के साथ बहुत निकट की समानता रखती हैं। जावा और उत्तर बोर्नियो की कब्रों में भी इसी तरह के गुड़ियाएं पाई गई हैं, जिससे विदित होता है कि ईसा पूर्व की शताब्दियों में दक्षिण भारत का व्यापारिक संबंध फिलीपाइन, बोर्नियो आदि देशों के साथ स्थापित हो चुका था।

इतिहासकार विनसेंट स्मिथ लिखता है—"प्राचीन तमिळ के साहित्य और ग्रीक तथा रोमन लेखकों के ग्रंथों से यह सिद्ध होता है कि ईसा की पहली और दूसरी शताब्दी में दक्षिण भारत के पश्चिमी और पूर्वी तटों का

पश्चिम और पूरब के देशो के साथ घनिष्ट व्यापारिक सबध था। चोळो के जहाज केवल आस-पास के बदरगाहो तक ही सीमित न रहकर निर्भीकता से बगाल की खाडी को पारकर गगा और इरावती नदियो के मुहानो तक पहुचते थे और हिंद-महासागर को पारकर मलाया द्वीप समूह के साथ अपना सपर्क स्थापित करते थे।"

यदि व्यापारिक प्रगति को किसी देश की भौतिक और सामाजिक उन्नति का चिह्न माना जाय, तो यह स्वीकार करना पडेगा कि आज से कम-से-कम दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व तमिळ लोग सभ्यता के ऊचे शिखर पर पहुच चुके थे।

: १६ :

महर्षि अगस्त्य

दुर्गम विंध्य पर्वत को लाघकर और गहन वनो को पारकर सुदूर दक्षिणापथ मे आर्य सस्कृति का प्रचार करनेवाले महर्षि अगस्त्य का नाम सदा चिरस्मरणीय रहेगा। आज से लगभग ढाई हज़ार वर्ष पूर्व, जब दक्षिण के देश घने जगलो से आवृत्त थे, जब उत्तुग विंध्य पर्वत दक्षिण का मार्ग रोककर खडा था, जब एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुचने के लिए कोई सुगम मार्ग या साधन नही था, जब दक्षिण के जगल और पहाड असख्य वन्य पशुओ और असभ्य तथा नर-रक्तपिपासु जगली जातियो से सकुल थे, उस समय कुछ थोडे से आर्य मिशनरियो का हजारो मील की यात्रा तय करके उत्तर से दक्षिण मे आगमन एक रोमाचकारी घटना है। हम लोग कोलबस, मार्को पोलो आदि की साहसिक यात्राओ का वर्णन पढकर स्तभित रह जाते है, किंतु अपनी सस्कृति के प्रचार के लिए साहसपूर्ण यात्रा करनेवाले अतीत काल के उन आर्यो की कथाए इतिहास के अध गर्त मे अदृश्य पडी है और उनकी ओर हमारा ध्यान तक नही जाता। इन आर्य मिशनरियो ने हजारो मील की यात्रा किस अवस्था मे की, किन कठिनाइयो का सामना करते हुए वे आगे बढते गये और किस तरह के अज्ञात देश और अपरिचित जातियो के बीच इन्होंने अपने धर्म और सस्कृति का प्रचार किया, इसकी कथा कम विस्मयकारी नही है। जिन महापुरुषो ने यह अलौकिक और अद्भुत कार्य किया, उनमे महर्षि अगस्त्य का नाम सर्व प्रथम उल्लेखनीय है। वह ही सबसे पहले आर्य थे, जिन्होंने विंध्य पर्वत को पार करके दडकारण्य से होते हुए सुदूर दक्षिण की यात्रा की और कन्याकुमारी तक पहुचे। उन्होने दक्षिण की तमिळ जातियो के साथ तादात्म्य स्थापित किया और यहा के लोगो के बीच आर्य भाषा, आर्य सस्कृति तथा आर्य कथा-कहानियो का प्रचार किया, तमिळ भाषा का अध्ययन किया और उसका एक बृहत व्याकरण रचा, तमिळ लोगो को अनेक शास्त्रो का ज्ञान कराया और तमिळ साहित्य की अभिवृद्धि के लिए तमिळ सघमो की स्थापना की।

तमिळ देश मे अगस्त्य का नाम बहुत प्रसिद्ध है और बडे आदर से लिया जाता है। लोग इन्हे भगवान शिव के शिष्य, पारगत विद्वान, वेदशास्त्रो के रचयिता, तथा अलौकिक शक्ति-सपन्न महर्षि मानते है। यह पाडिय राजाओ के कुलगुरु, तमिळ व्याकरण के निर्माता तोळकाप्पियर के गुरु तथा तमिळ साहित्य के आदि-प्रवर्तक माने जाते है। तमिळ पुराणो मे अगस्त्य के अनेक अद्‌भुत कार्यो की कथाए वर्णित है। तमिळ साहित्य एव सस्कृति के विकास-क्रम मे उनका स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है और प्रत्येक तमिळ भाषा-भाषी के हृदय मे उनके प्रति अगाध आदर और प्रेम है।

अगस्त्य मुनि ने दक्षिण मे आकर आर्य और द्रविड-सस्कृतियो के समन्वय का कार्य किया तथा उत्तर और दक्षिण का भेद मिटाकर सारे भारत को एक करने का प्रयत्न किया। अगस्त्य का जीवन वृत्त पढने से यह ज्ञात होता है कि उस समय के आर्य लोग कितने साहसी, कितने शक्तिवान और कितने दूरदर्शी थे तथा कितनी मिशनरी-भावना से प्रेरित थे। यह उन्हीके प्रयत्न का फल है कि आज सारा भारत एक देश माना जाता है।

यह अगस्त्य मुनि कौन थे, कहा के निवासी थे तथा किस मार्ग से दक्षिण भारत मे पहुचे, इन बातो के सबध मे कोई निश्चित प्रमाण नही मिलते। वेद, पुराण, रामायण तथा महाभारत आदि ग्रथो मे कई स्थलो पर अगस्त्य मुनि के नाम का उल्लेख मिलता है। सबसे प्रथम इनका नाम ऋग्वेद की कुछ ऋचाओ के रचयिता के रूप मे हम पढते है। विद्वानो का विश्वास है कि ऋग्वेद की रचना उस समय हुई थी जब आर्य लोग भारत मे आये ही थे और पजाब आदि मे निवास करते थे। उनके सबध मे दूसरी कथा यह है कि वह लोपामुद्रा के पति थे और श्रीरामचद्र से बीस पीढी पहले हुए थे। महाभारत मे अगस्त्य के सबध मे दो-तीन कथाए वर्णित है।

विध्याचल के गुरु—महाभारत मे अगस्त्य मुनि के विध्याचल का गुरु होने की कथा कही गई है। एक बार विध्य पर्वत के हृदय मे सुवर्ण गिरि सुमेरु से स्पर्धा करने की इच्छा उत्पन्न हो गई। वह क्रोध मे आकर सूर्य और चद्रमा का मार्ग रोकने के इरादे से अकस्मात बढने लगा। तब सब देवता मिलकर विध्य के पास आये और उसे रोकने की चेष्टा करने लगे। किंतु उसने उनकी बात न सुनी। तब वे तपस्वी अगस्त्य के पास गये और उन्हे अपने आने का प्रयोजन कह सुनाया। उन्होने

कहा—"हे महाराज पर्वतराज, विंध्य सूर्य और चद्रमा की गति को रोकना चाहता है। आपके सिवा दूसरा कोई उसे रोकने मे समर्थ नही। इसलिए आप उसे रोकने का प्रयत्न कीजिये।"

देवताओ की वात सुनकर अगस्त्य मुनि विंध्याचल के पास आये और उससे वोले—"हे पर्वत श्रेष्ठ, मै किसी कार्य से दक्षिण की ओर जा रहा हू। इसलिए मेरी इच्छा है कि तुम मुझे उधर जाने का रास्ता दो और जब तक मै वहा से वापस न लौटू, तब तक तुम ऐसे ही बने रहो।" विंध्याचल ने अपना सिर झुकाकर अपने गुरु की आज्ञा मान ली। अगस्त्य मुनि उसे आशीर्वाद देकर दक्षिण की ओर चले गये और फिर न लौटे। विंध्य भी अपने गुरु के आज्ञानुसार अपना सिर नीचा किये हुए ज्यो-का-त्यो खडा रहा। आज तक उसी प्रकार खडा है।

समुद्र सोखने की कथा—उनके संबध मे दूसरी कथा उनके समुद्र सोखने की है। यह कथा भी महाभारत मे वर्णित है। कथा है कि कालकेय नामक राक्षस अपने साथियो सहित देवताओ को बहुत तग करता था। वह दिन मे तो समुद्र मे छिप जाता था और रात्रि के समय वाहर निकलकर अनेक प्रकार के अत्याचार करता और आश्रमो तथा तीर्थादि मे रहनेवाले मुनियो को मार डालता था। दिन मे समुद्र मे छिपे रहने के कारण कोई उसका वध नही कर पाता था। अत मे देवता लोग उसके अत्याचारो से परेशान होकर अगस्त्य मुनि के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि हे मुनिवर, आप महासागर को पी जाइये। ऐसा होने पर हम कालकेय और उसके साथियो को मार सकेंगे। देवताओ की वात सुनकर अगस्त्य मुनि ने कहा—"अच्छा, मै ससार के हित के लिए समुद्र का पान करता हू।" यह कहकर वह समुद्र को पी गये।

उपर्युक्त दोनो कथाए इस वात को सूचित करती है कि अगस्त्य मुनि ने विंध्याचल को वढने से रोककर भारत की एकता की रक्षा की थी। अलघ्य विंध्याचल के द्वारा भारत के दो टुकडे होने से वचाया था तथा देश के दोनो भागो म सास्कृतिक समन्वय के द्वारा उत्तर और दक्षिण भारत के भेद को दूर किया था। अथवा उन्होने विंध्य को पारकर आर्यो के दक्षिण मे आने का मार्ग प्रशस्त किया था। उनके इसी साहसपूर्ण कार्य को मान्यता देने के लिए उन्हे विंध्याचल का गुरु माना गया। इसी प्रकार समुद्र को पी जानेवाली कथा भी सांकेतिक ही मालूम होती है, जिसका भाव यह हो सकता है कि उन्होने समुद्र को पारकर अनेक देशो

का भ्रमण किया था और दूर-दूर के देशो मे आर्य सस्कृति का प्रचार किया था। उनके इस पर्यटन का वर्णन तमिळ ग्रथो मे प्रचुर मात्रा मे मिलता है।

लोपामुद्रा के पति—अगस्त्य के सबध मे एक दूसरी मनोरजक कथा लोपा-मुद्रा के साथ उनके विवाह की है। कथा इस प्रकार है—एक बार उनके हृदय मे पुत्र-उत्पत्ति की कामना हुई। वह विदर्भ देश के राजा के पास पहुचे और उसकी कन्या के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। प्रस्ताव सुनकर राजा बडी चिता मे पडा, परतु अपनी कन्या के समझाने पर मान गया और अपनी पुत्री का विवाह मुनि के साथ कर दिया। इस कन्या का नाम लोपामुद्रा था। लोपामुद्रा ने यह शर्त की कि जब तक उसे उसके कुल की प्रतिष्ठा के योग्य वस्त्राभूषण नही दिये जायेगे, तब तक वह मुनि के साथ नही रह सकेगी। इस पर अगस्त्य मुनि कई राजाओ के पास धन मागने गये, पर किसीने उन्हे धन नही दिया। अत मे वह वातापी (वर्तमान बादामी) के प्रसिद्ध दैत्यराज इल्वल के पास पहुचे। इल्वल बहुत धनाढ्य था। उसने ऋषि की माग स्वीकार की और उन्हे प्रचुर धन दिया। अगस्त्य ने उस धन से अपनी पत्नी को सतुप्ट किया। कहा जाता है कि वर्तमान कूर्ग मे ब्रह्मगिरि के पास, जहा से कावेरी नदी निकलती है, अगस्त्य ऋषि का आश्रम था और वही पर उन्होने लोपामुद्रा से विवाह किया था। यह लोपामुद्रा अवश्य ही दक्षिणात्य कन्या थी। कूर्ग प्रदेश मे यह कथा प्रचलित है कि किसी बात पर अपने पति से अप्रसन्न हो कर लोपामुद्रा ही कावेरी का रूप धारण करके प्रवाहित हुई।

यह अगस्त्य ऋषि कब, किस मार्ग से दक्षिण मे आये और किस स्थान पर उन्होने विंध्य को पार किया, ये सारी बाते कल्पना का ही विषय है। रामायण की कथा से ज्ञात होता है कि जिस समय रामचद्र दडकारण्य मे पहुचे थे, उस समय ऋषि गोदावरी नदी के तीर पर पचवटी नामक स्थान मे निवास करते थे। यही पर रामचंद्र ने ऋषि के दर्शन किये थे और उनका आदेश पाकर अपने वनवास के कई वर्ष पचवटी मे बिताये थे। रामायण की कथा से यह भी मालूम होता है कि जिस समय अगस्त्य ऋषि दक्षिण मे आये थे, उस समय समस्त दडकारण्य घोर जगलो से आच्छादित था और उसमे अनेक नरभक्षी हिसक राक्षस रहते थे। ऋषि को यहा आने पर इनके विरोध का सामना करना पडा था और उनके साथ अनेक युद्ध भी करने पडे थे। राक्षसो का नाश होने के बाद ही दडकारण्य की भूमि निरापद हुई और आर्यो के निवास के योग्य बनी। दडक वन की यात्रा करते हुए रामचद्र

ने अपने भाई लक्ष्मण से अगस्त्य ऋषि के कार्यों की प्रशसा की थी और मुनि ने किस प्रकार राक्षसो को मारकर दडकारण्य को ऋषि-मुनियो के निवास के योग्य बनाया था, इसका वर्णन किया था। ऋषि द्वारा शक्तिशाली दैत्यराज वातापी तथा राक्षसी ताडका के पति सुड के मारे जाने का वर्णन भी रामायण मे मिलता है।

उत्तर मे हिमालय से लेकर दक्षिण मे कन्याकुमारी तक अनेक ऐसे स्थान है, जिनके साथ अगस्त्य के नाम का सबध मिलता है, परतु तमिळ प्रदेश के साथ इनका सबध चिरस्मरणीय हो गया है। दक्षिण मे बहुत से ऐसे क्षेत्र है, जो अगस्त्य के नाम से प्रसिद्ध है और जहा पर ऋषि के आश्रम स्थापित करने का वर्णन मिलता है। इतना ही नही, पूर्व एशिया के अनेक देशो मे ऋषि के यात्रा करने तथा वहा जाकर आर्य सस्कृति का प्रचार करने की कथा भी प्रचलित है। दक्षिण भारत मे जिन क्षेत्रो के साथ अगस्त्य का सबध बतलाया जाता है, उनमे कर्णाटक मे वातापी (बादामी), कूर्ग मे ब्रह्मगिरि, आध्र मे द्राक्षाराम, तजाऊर जिले मे अगस्त्यम-पल्ली और तिरुनेलवेली जिले मे पोदियमलै तथा अगस्त्यवरम सबसे प्रसिद्ध है। प्राय सभी स्थानो मे अगस्त्य के मदिर मिलते है, जहा ऋषि की नित्य प्रति पूजा और अर्चना होती है। इन स्थानो मे भी सबसे अधिक महत्व पोदियमलै को प्राप्त है। यह स्थान पश्चिम घाटी की पहाडी के दक्षिणी छोर पर स्थित है। कहा जाता है कि पचवटी से चलकर भिन्न-भिन्न केद्रो की यात्रा करते हुए अगस्त्य ऋषि पाडिय राज्य मे पहुचे और पोदियमलै नामक स्थान पर अपना आश्रम स्थापित किया। तमिळ साहित्य मे इस स्थान को बहुत गौरव प्राप्त है। यही से उन्होने सारे तमिळ देश मे आर्य सस्कृति का प्रचार किया और सभवत यही रहकर उन्होने तमिळ भाषा का व्याकरण लिखा और तमिळ लोगो को अनेक शास्त्रो का ज्ञान कराया।

रामायण की कथा से ज्ञात होता है कि जिस समय रामचद्र सीता को ढूढते हुए किष्किधा पहुचे थे, उस समय तक अगस्त्य पोदियमलै पर पहुचकर वहा अपना आश्रम स्थापित कर चुके थे। जब सुग्रीव अपने वानरो को सीता की खोज मे जाने की आज्ञा देता है, तब वह उनसे कहता है—"ताम्रपर्णी नदी के तट पर मलय पर्वत की चोटी पर सूर्य के समान प्रकाशमान महर्षि अगस्त्य का आश्रम है।" इन विवरणो से प्रतीत होता है कि अगस्त्य विंध्य पार करके पहले पचवटी मे पहुचे।

वहा से बादामी, द्राक्षाराम, ब्रह्मगिरि आदि स्थानो की यात्रा करते हुए अत मे पोदियमलै आये और कुछ काल तक वहा निवास करके तमिळ साहित्य की अभि-वृद्धि मे दत्तचित रहे। किंतु अगस्त्य का पर्यटन यही समाप्त नही होता। लोगो का विश्वास है कि उन्होने समुद्र पार करके यवद्वीप (जावा), वरहन द्वीप (वोर्नियो), सुमात्रा, स्याम आदि देशो की भी यात्रा की और वहा भी आर्य सस्कृति की नीव डाली।

तमिळ देश के साथ अगस्त्य का अत्यत घनिष्ठ सबध है। तमिळ का प्राचीन इतिहास अगस्त्य के जीवन-सबधी कहानियो से ओत-प्रोत है। यह तमिळ साहित्य के पिता, तमिळ व्याकरण के आदि-रचयिता, तमिळ सघमो के सस्थापक, पाडिय राजाओ के कुलगुरु तथा तमिळ जनता के पथ-प्रदर्शक माने जाते थे।

तमिळ लोगो का विश्वास है कि अगस्त्य सबसे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होने तमिळ भाषा का व्याकरण लिखा। इसमे वारह हजार सूत्र थे। अगस्त्य तमिळ व्याकरण के प्रसिद्ध लेखक तोळकाप्पियर के गुरु माने जाते है। परतु अगस्त्य द्वारा लिखित व्याकरण की कोई सपूर्ण प्रति उपलब्ध नही। व्याकरण के कुछ सूत्र मिलते है, जो 'अगस्त्यर नूलु' (सूत्र) के नाम से प्रसिद्ध है। किंतु भाषा और शैली की दृष्टि से ये नूलु इतने प्राचीन नही प्रतीत होते कि उन्हे अगस्त्य की रचना होने का आदर दिया जाय। इसीलए कुछ तमिळ विद्वानो का मत है कि ये सूत्र समय-समय पर तमिळ पडितों द्वारा रचे गये होगे और प्रामाणिकता देने के खयाल से अगस्त्य के नाम से प्रचलित कर दिये गये होगे।

अगस्त्य और उनके शिष्य तोळकाप्पियर दोनो ब्राह्मण थे। दोनो ने तमिळ भाषा के व्याकरण लिखे। जब कोई भाषा साहित्यिक रूप धारण कर लेती है और उसमे साहित्य की रचना आरभ हो जाती है, उसके पश्चात ही उसमे लक्षण-ग्रथो की रचना सभव होती है। इससे सिद्ध होता है कि अगस्त्य और तोळ-काप्पियर के सौ-दो-सौ साल पूर्व से ही तमिळ भाषा मे साहित्य-निर्माण का कार्य आरभ हो चुका होगा। अगस्त्य ने अपने व्याकरण मे पाणिनी के व्याकरण का आधार लिया, तो तोळकाप्पियर ने ऐंद्र के व्याकरण का अनुसरण किया। अगस्त्य ने सस्कृत के अनेक छदो, अलकारो तथा व्याकरण-सबधी विशेषताओ और प्रयोगो को भी तमिळ मे समावेश किया। सभवत अगस्त्य के आगमन मे ही तमिळ पर सस्कृत भाषा के प्रभाव का श्रीगणेश होता है।

तमिळ भाषा के महाकाव्यो 'शिलप्पधिकारम' तथा 'मणिमेखलै' मे भी अगस्त्य की चर्चा मिलती है। 'मणिमेखलै' मे लिखा है कि अगस्त्य ऋषि चोळ राजा कात के मित्र थे और उसी राजा के आग्रह से ऋषि ने अपने कमडल से कावेरी नदी को उन्मुक्त किया था। यह भी कथा है कि किसी एक चोळ राजा ने अगस्त्य के परामर्श के अनुसार पुहार नगर मे प्रति वर्ष इद्र का मेला करने का आयोजन किया था।

अगस्त्य ऋषि किस समय दक्षिण भारत मे आये, इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही। डा० भडारकर ने रामायण का काल ईसा से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व माना है। रामचद्र के दक्षिण पहुचने के पूर्व ही अगस्त्य मुनि दक्षिण मे पहुच चुके थे, जगलो को साफ कर गाव बसा लिये थे और दडकारण्य मे रहनेवाले राक्षसो को परास्त कर दक्षिण की भूमि को निरापद बना चुके थे। इससे यह प्रकट होता है कि ईसवी सन पूर्व सात और आठ सौ के बीच अगस्त्य ऋषि दक्षिण मे आये होगे।

आर्य ग्रथो में दक्षिण का जो उल्लेख मिलता है, वह पूर्णतया अस्पष्ट और अधूरा है। पाणिनी ने अपना व्याकरण ७०० ई० पू० मे लिखा था। उन्होंने अपने सूत्रो मे अवती, कोशल, करुष और कलिग आदि देशो का ही उल्लेख किया है। दक्षिण के प्रदेशो का कोई उल्लेख उस ग्रथ मे नही मिलता। अतएव यह अनुमान लगाया जाता है कि पाणिनी के समय तक आर्य लोगो को दक्षिण के देशो का पता नही था। दक्षिण के चोळ और पाडिय नामो का सबसे प्रथम उल्लेख कात्यायन की रचना में मिलता है। कात्यायन का समय ४०० ई० पू० माना जाता है। इससे यह प्रतीत होता है कि कात्यायन के बाद ही आर्यों को दक्षिण भारत का विस्तृत ज्ञान प्राप्त हुआ था। किंतु ये अनुमान मात्र है, वस्तुस्थिति का अभी तक कोई प्रामाणिक आधार प्राप्त नही। परतु इतनी बात अवश्य मालूम होती है कि सात-आठ सौ वर्ष ई० पू० से आर्य लोग दक्षिण मे आने लगे थे और शायद इन आगतुको के सबसे पहले मुखिया या नेता महर्षि अगस्त्य थे। कुछ विद्वानो का कथन है कि अगस्त्य उपाधिधारी एक परिवार था, जिसके सभी व्यक्ति इसी प्रसिद्ध नाम से पुकारे जाते थे। इस परिवार मे अनेक प्रतिभाशाली विद्वान उत्पन्न हुए होगे, जिनमे एक अगस्त्य ने तमिळ भाषा का व्याकरण रचा होगा।

इन आर्यो के दक्षिण मे आने से दक्षिण की भाषा, साहित्य तथा विचार-पद्धति मे अनेक परिवर्तन हुए। द्रविड लोग आर्यो के जैसे कल्पनापटु और आध्यात्मिक विषयो पर गभीर विवेचक नही थे। वे कार्य-कुशल, शिल्पकला-प्रवीण और खेती-बारी मे निपुण थे। उनका साहित्य विशेष रूप से यथार्थवादी तथा वर्णन-प्रधान था। वे इहलौकिक जीवन को मधुर एव सुखमय बनाने मे दत्तचित्त रहते थे। किसी लोकातीत कल्पना जगत मे विचरण करना उनको इष्ट नही था। आर्यो के आने से उनके जीवन मे परिवर्तन हुआ। आर्य कथा-कहानियो का प्रचार हुआ। आर्यों की अधिक कल्पना प्रसूत कथाए सुनकर वे विशेष रूप से प्रभावित हुए। कालगति से ये कहानिया भी द्रविडो के साहित्य और जीवन मे स्थान पा गई। आर्यो के आने के पूर्व दक्षिण मे पौराणिक गाथाओ का प्रचार नही था। ये गाथाए दक्षिण को आर्यों की देन है।

अगस्त्य के दक्षिण मे पदार्पण करने के बाद आर्यों के लिए दक्षिण का मार्ग प्रशस्त हो गया। आर्य मिशनरी अपने धर्म और सस्कृति के प्रचार के लिए दक्षिण मे आने-जाने लगे। धीरे-धीरे ताम्रपर्णी और कावेरी के तट पर ब्राह्मणो की अनेक बस्तिया आबाद हो गई। ब्राह्मणो के बाद बौद्ध और जैन आये। ईसवी सन पूर्व दूसरी शताब्दी मे ही जैन और बौद्ध दक्षिण मे प्रवेश कर चुके थे। ये दोनो धर्म मिशनरी धर्म थे, अत ये लोग अपने धर्म के प्रचार मे प्रयत्नशील रहते थे। उनके प्रचार के कारण कई शताब्दियो तक दक्षिण मे वैदिक धर्म का लोप-सा हो गया था। किंतु कालातर मे इन दोनो धर्मों का ह्रास हो गया और उनके स्थान मे आळवारो तथा नायनमारो द्वारा प्रवर्तित भक्ति धर्म का प्रचार हुआ।

आरभिक युग मे जो आर्य दक्षिण मे आये, उनका दृष्टिकोण देश पर विजय प्राप्त करना या शासन करना नही था। वे अपने धर्म व सस्कृति का प्रचार भी कुछ जोर-जबरदस्ती से नही करते थे। उनके प्रचार का मुख्य साधन उनका अपना पवित्र दैनिक जीवन, उन्नत चरित्र और अपने धर्म मे अटल आस्था थी। उस समय के ब्राह्मण सदाचारी, विद्वान, परोपकारी, समाजसेवक और विद्याव्यसनी होते थे। उनका अधिकाश समय यज्ञ आदि कर्मों मे एव विद्योपासना में व्यतीत होता था। ऐसे कर्मनिष्ट ब्राह्मणो का प्रभाव दक्षिण की जनता पर पडना स्वाभाविक था। धीरे-धीरे वे आर्य आगतुको की ओर आकर्षित होने लगे। उनके ग्रथो का अध्ययन करना, उनकी कथा-कहानियो मे रुचि लेना और उनका अनुकरण करना

आरभ किया। दक्षिण के राजा और जागीरदार भी इन ब्राह्मणो का आदर और अनुसरण करने लगे। उनके ज्ञान और चरित्र-बल से प्रभावित होकर उन्होने ब्राह्मणो को अपना गुरु बनाया और उनके उपदेशानुसार यज्ञ आदि कर्म करने आरभ किये।

आर्य विश्वासो के अनुसार राजा ईश्वर का अवतार माना जाता था। आर्यो ने दक्षिण मे भी इस विश्वास का प्रचार किया, जिससे राजाओ की पद-प्रतिष्ठा मे बडी वृद्धि हुई। ब्राह्मणो ने दक्षिण के राजाओ का काल्पनिक वश वृक्ष तैयार किया और उन्हे चद्रवशी और सूर्यवशी क्षत्रिय कहकर समादृत किया। राजाओ के नाम और पदवियो मे भी परिवर्तन हुए और पुराने तमिळ नामो के स्थान पर वे आर्य नामो और पदवियो से विभूषित किये गये।

यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि आर्यो ने अपने धर्म और सस्कृति का प्रचार करते समय द्रविड-सस्कृति एव भाषा की किसी प्रकार की उपेक्षा नही की, न ही उन्होने द्रविड लोगो को हीन दृष्टि से देखा; बल्कि उन्होने यहा की सस्कृति का समुचित आदर किया एव यहा के अनेक आचार-विचारो को अपने जीवन मे प्रवेश दिया। इतना ही नही, उन्होने यहा की भाषा का अध्ययन किया तथा उसके साहित्य की श्रीवृद्धि मे पूर्ण सहयोग दिया। आर्यो की इस उदारता का फल यह हुआ कि आर्य और द्रविड सस्कृतिया मिलकर एक हो गईं और इन दोनो के शुभ सयोग से एक मिली-जुली सस्कृति का विकास हुआ, जिसे आज हिंदू सस्कृति कहते है।

अगस्त्य के जीवन की घटनाए इतनी विभिन्न, इतनी विस्तृत है तथा इतने दूर-दूर के प्रदेशो से सबध रखती है कि किसी एक व्यक्ति के जीवन काल मे इतने स्थानो का भ्रमण करना वहा आश्रम स्थापित करना, तथा साहित्य-रचना का महत्वपूर्ण कार्य करना सभव प्रतीत नही होता। पचवटी मे आश्रम स्थापित करना, कूर्ग मे निवास करना, पोदियमलै की पहाडी पर से आर्य-सस्कृति का प्रचार करना, मदुरा मे तमिळ सघम की स्थापना करना तथा जावा, सुमात्रा आदि देशो की यात्रा करना किसी एक तो क्या, अनेक व्यक्तियो के लिए भी असभव कार्य मालूम होता है। अत विद्वानो का अनुमान है कि भिन्न-भिन्न युग मे अगस्त्य नाम के कई व्यक्ति उत्पन्न हुए होगे अथवा अगस्त्य नाम किसी परिवार विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ होगा जिसमे अनेक प्रतिभाशाली व्यक्ति उत्पन्न हुए, जिन्होने स्थान-स्थान का भ्रमण करके वहा आर्य-सस्कृति का प्रचार किया होगा। इन विद्वानो का मत है

कि ऋग्वेद की ऋचाओं के प्रणेता अगस्त्य अलग व्यक्ति रहे होंगे। पंचवटी के पास निवास करनेवाले दूसरे, द्राक्षाराम के निवासी तीसरे और पोदियामलै में अपना आश्रम स्थापित करनेवाले कोई चौथे अगस्त्य हुए होंगे। इस तरह भिन्न-भिन्न घटनाओं से संबंध रखनेवाले चार-पांच अलग-अलग अगस्त्यों की कल्पना की जाती है। किंतु यह कल्पना कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम होती है। यह अनुमान करना कि एक ही व्यक्ति भारत के भिन्न-भिन्न भागों में भ्रमण करके वहां अपना आश्रम स्थापित नहीं कर सकता था और इसके लिए अनेक अगस्त्य की आवश्यकता थी—ठीक नहीं मालूम होता। यदि चौदह वर्ष के वनवास की अवधि में श्री रामचंद्र ने सारे भारत का भ्रमण किया और लंका पर विजय पाई, तो अगस्त्य जैसे महर्षि के लिए, जिनका सारा जीवन देशाटन और लोकसेवा में ही बीता हो, क्या ऐसा करना संभव नहीं हो सकता? इतिहास बतलाता है कि मेगेस्थनीज, मार्कोपोलो आदि विदेशी यात्रियों ने बड़ी लंबी-लंबी यात्राएं की थीं और दुनिया के अनेक देशों का भ्रमण कर अपार ज्ञान संगृहीत किया था। ईसा की आठवीं शताब्दी में स्वामी शंकराचार्य ने केवल तीस वर्ष की अवस्था में समस्त भारत की यात्रा की, जगह-जगह पर विद्वानों से शास्त्रार्थ किये, कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक अनेक क्षेत्रों में मठ स्थापित किये, गीता, उपनिषद जैसे गंभीर ग्रंथों पर भाष्य लिखे और हिंदू संस्कृति तथा हिंदू धर्म को बौद्ध और जैनों के प्रहार से बचाकर उन्हें फिर सुस्थिर किया। अगस्त्य ने अपनी लंबी आयु में विंध्य को पारकर दक्षिण के भिन्न-भिन्न केंद्रों में आश्रम स्थापित किये हों, आर्य संस्कृति का प्रचार किया हो और तमिळ भाषा सीखकर उसकी अभिवृद्धि में हाथ बटाया हो, तो इसमें संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं हो सकती। यह दक्षिण के कुछ विद्वानों का पूर्वाग्रह मात्र है कि समस्त पौराणिक आधारों की उपेक्षा करके वे अगस्त्य के व्यक्तित्व पर संदेह करते हैं और उन्हें कल्पना प्रसूत मानते हैं।

यह दुख का विषय है कि अगस्त्य जैसे सांस्कृतिक अग्रदूत का नाम, जिसने दक्षिण भारत में आर्यों का मार्ग प्रशस्त किया एवं दूर-दूर के देशों में आर्य-संस्कृति का प्रचार किया, उत्तर भारत में सर्वथा अज्ञात-सा है, जबकि दक्षिण भारत सम्मान के साथ आज भी उनका नाम स्मरण करता है।

: १७ :

दक्षिण के देवालय—१

मनुष्य-हृदय की अतरतम भावनाए उसके धार्मिक विश्वासो मे व्यक्त होती है। किसी जाति के धार्मिक विश्वासो के अध्ययन से उसकी सभ्यता और विकास का स्तर मालूम हो जाता है। असभ्य और जगली जातियो के धार्मिक विश्वास भद्दे और असस्कृत होते है, पर सभ्य और सुसस्कृत जातियो के धार्मिक विश्वास उनकी नैतिक तथा मानसिक प्रगति के द्योतक होते है। प्रागैतिहासिक युग मे भी द्रविड लोगो ने बहुत ऊची धार्मिक भावनाओ का विकास किया था और अपने विचारो से भिन्न-भिन्न धर्मो और सभ्यताओ को प्रभावित किया था, इसकी कथा हम पहले पढ चुके है। प्राचीन तमिळ साहित्य मे द्रविड लोगो के धार्मिक विश्वासो की भिन्न-भिन्न अवस्थाओ की झाकी मिलती है। पीछे चलकर जब द्रविड लोगो का सपर्क आर्यो के साथ हुआ, तब उनके धार्मिक विश्वासो मे अनेक परिवर्तन हुए। जिस तरह आर्यो ने द्रविड सस्कृति से अनेक बातो को अपनाया, उसी तरह द्रविड लोगो ने भी आर्य लोगो से बहुत से नये तत्व ग्रहण किये।

दक्षिण भारत मे मदिर बनवाने की प्रवृत्ति कब प्रारभ हुई और किसने आरभ की, इसका इतिहास बताना कठिन है। सभवत यह कार्य आर्यों के दक्षिण मे आने के बाद ही नियमित रूप से प्रारभ हुआ, किंतु द्रविड लोगो ने अपनी प्रतिभा और कल्पना से इस क्षेत्र मे अद्भुत उन्नति कर ली। आर्यो के दक्षिण मे आने के पहले द्रविड लोग मृतको को भूमि मे दफन करके उनकी कब्रो पर कुछ पत्थर खडे कर देते थे। कभी-कभी समाधि के चारो तरफ पत्थरो का घेरा भी लगा दिया जाता था। उनका अनुमान था कि मृत शरीर पर पत्थर रख देने और चारो ओर पत्थरो का घेरा बना देने से प्रेतात्मा बाहर निकलकर लोगो को कष्ट नही पहुचा सकेगी। धीरे-धीरे मृत-शरीर पर रखे हुए इन पत्थरो की पूजा होने लगी। ज्यो-ज्यो इन समाधियो का महत्व बढता गया, त्यो-त्यो इन पर बननेवाले स्तूप भी बडे होते गये। पाश्चात्य विद्वानो का मत है

कि आगे चलकर इन्ही समाधियो ने मदिरो का रूप धारण कर लिया। दीवारे बनी, दरवाजे लगे और दरवाजे के सामने पुजारियो के एकत्रित होने के लिए मडप बने। आज भी दक्षिण के अधिकाश मदिर इसी मानचित्र (प्लान) पर बने है। पीछे चलकर जब आर्यों का प्रभाव दक्षिण मे बढा, तो देवताओ के लिए मदिर बनने लगे और मृतात्मा के स्थान पर आर्य और द्रविड देवताओ की मूर्तिया उनमे रखी जाने लगी। इसी तरह दक्षिण मे मध्य-युग के मदिरो का विकास हुआ।

आदि युग मे दक्षिण भारत मे बडे-बडे मदिर बनवाने की प्रथा नही थी। द्रविड देवता प्राय पेडो के नीचे या खुले मैदानो मे विराजते थे। विद्वानो का मत है कि दक्षिण मे मदिर बनवाने की प्रथा बौद्धो के चैत्यो और विहारो को देखकर आरभ हुई। यहा के मदिरो मे जो विमान देखे जाते है, वे बौद्ध स्तूपो के अनुकरण मे बनाये गये है। इन विमानो को 'स्तूपी' भी कहते है, जिससे उनका बौद्ध सबध प्रगट होता है। किंतु थोडे ही समय मे दक्षिण ने मदिर बनवाने की कला मे इतनी उन्नति कर ली कि वहा के मदिर सारे ससार की प्रशसा तथा विस्मय के पात्र बन गये। आरभ मे ग्रीक और रोमन लोगो ने भी इस कार्य मे हाथ बटाया था।

प्राचीन काल मे मदिर प्राय ईट और लकडी से बनते थे। ईसवी सन की दूसरी या तीसरी सदी मे दक्षिण मे ऐसे बहुत से मदिर वर्तमान थे, किंतु ईट और लकडी से बने होने के कारण वे सब-के-सब नष्ट हो गये। पत्थर काटकर मदिर बनवाने का कार्य सबसे पहले पल्लव राजाओ के काल मे आरभ हुआ। ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी से ही पल्लव लोग तमिळ देश के उत्तरी भाग पर राज्य करते थे। उनकी राजधानी काची या काचीपुरम थी और पालार नदी के आस-पास की समस्त भूमि उनके अधिकार मे थी। पल्लव लोग कट्टर हिंदू थे और मदिरो तथा मूर्तियो मे विश्वास रखते थे। प्रारभ मे जो मदिर बने, वे ईट और गारे से या लकडी से बने होने के कारण नष्ट हो गये। उनका कोई अवशेष अब नही मिलता। पत्थर काटकर मदिर बनवाने का कार्य सर्वप्रथम पल्लव राजा महेंद्र वर्मन के समय मे आरभ हुआ। महेंद्र वर्मन का समय सन ६०० से ६३० ई० तक माना जाता है। महेंद्र वर्मन के पश्चात उसका पुत्र नरसिह वर्मन काची की गद्दी पर बैठा। उसने भी अपने पिता के सुदर कार्य को जारी रखा और महाबलिपुरम मे पत्थर के चट्टानो को काटकर अनेक सुदर मदिर तथा रथ बनवाये।

पल्लवो के बाद मदिर बनवाने का कार्य चोळ राजाओ ने अपने ऊपर लिया। उनका समय सन ९०० से लेकर ११५० तक माना जाता है। तजाऊर और तिरुचिरापल्ली के जिलो मे अनेक मदिर चोळ राजाओ द्वारा बनवाये गये थे। जब चोळो की शक्ति समाप्त हो गई, तब मदुरा मे पाडिय राजाओ का उदय हुआ। उन्होने ११०० से लेकर १३५० तक मदिर बनवाने के कार्य मे योग दिया। किंतु १४ वी सदी के अत मे दक्षिण मे चोळ और पाडिय दोनो वशो का अत हो गया और प्रतापी विजयनगर राज्य का प्रादुर्भाव हुआ। लगभग २०० वर्षो तक (१३५० से १५६५) विजयनगर दक्षिण मे हिंदू सस्कृति का प्रधान केंद्र रहा और उसके प्रोत्साहन से दक्षिण मे अनेक नये मदिरो का निर्माण हुआ तथा प्राचीन मदिरो का जीर्णोदय और सवृद्धि हुई। विजयनगर के पतन के बाद मदुरा के नायक राजाओ ने, जो दक्षिण मे विजयनगर के प्रतिनिधि थे, मदिर-निर्माण का कार्य अपने हाथ मे लिया और अनेक छोटे-बडे मदिर बनवाये। पल्लव, चोळ, पाडिय, विजयनगर और नायक—इन्ही पाच राजवशो के युग मे तमिळनाडु मे मदिरो का निर्माण हुआ। इन राजाओ ने मदिरो के निर्माण के लिए जो अपार सपत्ति खर्च की, जिस परिश्रम और साधन का उपयोग किया, जैसी श्रद्धा और भक्ति प्रदर्शित की तथा जिस ऊचे आदर्श और कला-प्रियता का परिचय दिया, उसकी समता ससार के इतिहास मे मिलना कठिन है। आज भी दक्षिण की चप्पा-चप्पा भूमि उनकी सहृदयता, कला-प्रेम और अनत वैभव का नमूना पेश कर रही है।

पल्लव काल के मंदिर

शिल्प कला एव मदिर निर्माण की दृष्टि से पल्लव युग का बहुत ही अधिक महत्व है। इस युग मे इस दिशा मे जो कार्य हुआ, उसीकी नीव पर आगे चलकर दक्षिण के विशाल मदिरो का निर्माण हुआ।

पल्लवो का समय दो युगो मे विभक्त किया जाता है। पूर्ववर्ती युग (सन ६०० से लेकर ई० सन ६९० तक) और परवर्ती युग (ई० सन ६९० से लेकर ९०० तक)। पूर्ववर्ती युग मे काची पर महेद्र वर्मन का शासन था। महेद्र वर्मन के समय मे पहाडो को खोदकर अनेक छोटे-छोटे गुफा-मदिर और मडप बनाये गये। इस प्रकार के मडप तिरुच्चि तथा पुदुक्कोट्टा की पहाडियो में देखे जा सकते है।

महेद्र वर्मन पहला राजा था, जिसने मदिर बनवाने के कार्य मे ईट और गारे को त्यागकर पत्थर का उपयोग आरभ किया।

महेद्र वर्मन का पुत्र नरसिंह वर्मन था। इसका समय सन ६३० से ६७० तक माना जाता है। नरसिह का दूसरा नाम मामल्ल था। इसीके नाम पर मामल्लपुरम नाम पडा, जो आजकल महाबलिपुरम के नाम से मशहूर है। महाबलिपुरम के मदिरो को देखने से प्रतीत होता है कि प्रारभिक युग मे रथो के आकार मे मदिर बनवाने की प्रथा प्रचलित थी। इन मदिरो के चारो कोनो मे पत्थर के बडे-बडे पहिये लगे रहते थे। दक्षिण के कई पुराने मदिर, जैसे कोणार्क, सोमनाथपुरा, विजयनगरम आदि के मदिर रथ के आकार मे ही बने है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उस युग मे यहा रथो का बहुत प्रचार था। आज भी दक्षिण के प्राय सभी मदिरो मे लकडी के बडे-बडे रथ होते है, जिनमे मदिर के अधिष्ठाता देवता की मूर्ति को उत्सव के समय बैठाकर नगर मे घुमाया जाता है।

पल्लव युग की वास्तु-कला का सबसे सुदर एव सजीव नमूना महाबलिपुरम मे मिलता है। यह स्थान मद्रास से ३२ मील की दूरी पर समुद्र के तट पर बसा है। प्राचीन काल मे यह स्थान सभी प्रकार के वैभवो से सपन्न, अत्यत समृद्धिशाली, प्रसिद्ध बदरगाह तथा व्यापार का बहुत बडा केंद्र था। पूर्व तथा पश्चिम के अनेक देशो के साथ इस नगर का व्यापार चलता था। ईसा की पहली सदी मे भी यह स्थान व्यापार का बडा केंद्र था। 'पेरिप्लस' के लेखक तथा टालमी ने अपने-अपने ग्रथो मे इस नगर का उल्लेख किया है और यहा से होनेवाले व्यापार का वर्णन किया है।

महाबलिपुरम मे पत्थर की चट्टानो को तराशकर आठ रथ बनाये गये है। इनमे पाच रथ धर्मराज, अर्जुन, द्रौपदी, भीम और सहदेव के नाम से तथा बाकी तीन गणेश, पिडारी तथा वलैयानकुट्टै के नाम से प्रसिद्ध है। इनमे सबसे बडा रथ ४२ फुट लबा, ३५ फुट चौडा और ४० फुट ऊचा है। द्रौपदी का रथ सबसे छोटा है। प्राय सभी रथो के भीतर एक कमरा है, जो अधूरी अवस्था मे बना हुआ है। ऐसा लगता है कि इनके भीतर कभी किसी मूर्ति की स्थापना नही की गई थी। प्रत्येक रथ एक-एक चट्टान को काटकर बनाया गया है। इनमे प्रदर्शित शिल्प कला का नमूना पल्लव युग की विशेषता है। पाडवो के रथ से थोडी दूर पर एक चट्टान के पार्श्व मे अनेक सुदर चित्र खुदे हुए है, जिनमे अर्जुन की तपस्या, काली-महिषासुर

युद्ध तथा गोपालकृष्ण का उगली पर गोवर्धन-धारण और गोप-गौओ की रक्षा आदि पौराणिक घटनाए खुदी हुई है।

महाबलिपुरम मे ही समुद्र के तट पर दो गोपुरवाला ६० फुट ऊचा एक मदिर है, जो सपूर्णतया पत्थर के टुकडो से बनाया गया है। छोटा होने पर भी यह बहुत सुदर है। मदिर के प्राकार आदि तो समुद्र के निरतर प्रवाह के कारण नष्ट हो गये है, किंतु मूल मदिर अब भी वर्तमान है। इस युग के मदिरो की विशेषता रथो और मदिरो के ऊपर बने हुए शिल्प कला के नमूने है, जिन्हे देखने से प्रतीत होता है कि पत्थरो को काटकर सुदर मूर्तिया, खभे आदि बनाने की कला मे आज से हजार-डेढ हजार वर्ष पूर्व भी दक्षिण भारत बहुत उन्नति कर चुका था।

पल्लव काल के उत्तरार्ध मे मदिर निर्माण मे बहुत अच्छी उन्नति हुई और काची मे और उसके आस-पास अनेक छोटे-बडे मदिर बनवाये गये, जिनमे काची का कैलाशनाथ और वैकुठ पेरुमाल के मदिर सबसे अधिक सुदर एव कलात्मक है। ये दोनो मदिर पल्लवकालीन शिल्प कला के सर्वोत्तम नमूने है।

पल्लवो की इन सुदर कलात्मक कृतियो का प्रसार केवल महाबलिपुरम और काचीपुरम तक ही सीमित नही रहा। उसका प्रचार दक्षिण के अन्य प्रदेशो तथा विदेशो मे भी हुआ, जहा काची के मदिरो के अनुकरण मे सुदर मदिर बनवाये गये। भारत के बाहर जावा, सुमात्रा, कबोडिया, इडोचीन, आदि देशो मे भी भारत की इस निर्माण कला का प्रकाश फैला, जहा पल्लव शिल्प कला के आधार पर अनेक मदिरो का निर्माण हुआ। कुछ मदिरो ने अपनी विशालता एव भव्यता मे भारत के मदिरो को भी आच्छादित कर दिया।

विजयनगर से लगभग दो सौ मील उत्तर पश्चिम की ओर बादामी का प्रसिद्ध क्षेत्र है, जो उस युग मे चालुक्यो की राजधानी थी। काची के कलाकारो ने वहा जाकर भी कई सुदर मदिर बनाये, जिनमे सगमेश्वर और विरूपाक्ष के मदिर सब से श्रेष्ठ है। ये दोनो मदिर काची के कैलाशनाथ मदिर के अनुकरण मे बने है। इनका निर्माण क्रमश सन ७२५ और ७४० मे हुआ था। विरूपाक्ष के मदिर के विषय मे पर्सी ब्राउन लिखते है कि "विरुपाक्ष का मदिर प्राचीन काल की ऐसी अद्भुत

कृतियो मे से एक है, जहा उनकी कल्पना तथा अपने हाथो से उसका निर्माण करनेवालो की आत्मा आज भी उसे आवेष्टित किये हुए है।"

चोळकालीन मंदिर

ईसा की नवी सदी मे पल्लव व श की शक्ति क्षीण होने लगी और चोळ वश का अभ्युदय आरभ हुआ। कई शताब्दियो तक पल्लव, चोळ, पाडिय, चालुक्य और राष्ट्रकूटो के बीच साम्राज्य के लिए स्पर्धा और भयकर युद्ध चलते रहे। अत मे चोळो ने अन्य राज्यो को परास्तकर नवी शती मे दक्षिण मे एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित करने मे सफलता प्राप्त की। ईसा की दसवी शती मे महाप्रतापी राजराज चोळ के समय मे तो चोळो का प्रताप यहा तक बढ गया कि दक्षिण मे लका से लेकर तथा प्रचलित कथा के अनुसार, उत्तर मे गगा तट तक के सभी प्रदेश तथा वर्मा के कुछ भाग भी चोळ साम्राज्य के अधिकार मे आ गये। चोळ राज्य का प्रधान केंद्र वर्तमान तजाऊर और तिरुचिरापल्ली के जिले थे। ये ही प्रदेश तमिळ इतिहास मे चोळ देश के नाम से प्रसिद्ध है और चोळवश के अधिकाश कीर्ति-स्तभ इसी प्रदेश मे पाये जाते है।

पल्लवो ने शिल्प-कला की जो दीप-शिखा प्रज्वलित की थी और वास्तुकला की जो बुनियाद डाली थी, उसे चोळो ने अपनी प्रतिभा एव कल्पना से बहुत-कुछ अग्रसर किया। प्रारभ मे उन्होने अनेक छोटे-छोटे मदिर बनवाये, जो कद मे छोटे होने पर भी कला की दृष्टि मे पल्लवकाल की कारीगरी व शिल्प कला से अधिक उन्नत एव समृद्ध है। उन्हे देखने से भावी युग के विशाल मदिरो का सहज ही अनुमान हो सकता है। इस काल के मदिरो की एक मुख्य विशेषता यह थी कि जहा पल्लवो ने एक ही चट्टान को खोदकर मदिर बनवाने मे निपुणता दिखलाई थी, वहा चोळो ने पत्थर के टुकडो को गढकर मदिर बनवाने का कार्य आरभ किया, जिससे सभी उपयुक्त स्थानो मे मदिर बनवाना सहज हो गया।

ईसा की दसवी तथा ग्यारहवी शती मे चोळ साम्राज्य अपने वैभव और उन्नति की चरम सीमा पर पहुच चुका था। राजराज चोळ इस वश का सबसे प्रतापी तथा प्रतिभाशाली नरेश था। उसके राजत्वकाल मे लोक-कल्याण के अनेक साधनो के साथ-साथ वास्तुकला का भी बहुत विकास हुआ।

इस युग के वैभव तथा रचना शक्ति का सबसे सुदर एव भव्य प्रतीक तजाऊर मे वृहदीश्वर महादेव का मदिर है। इस मदिर का निर्माण राजराज चोळ द्वारा सन १००८ से १०१८ के मध्य हुआ था । मदिर एक ऊचे चबूतरे पर बना है और भूमि से २१६ फुट ऊचा है। मदिर का भव्य शिखर दूर से ही दिखाई देता है और दर्शक के मन को आनद और विस्मय से भर देता है। वास्तव मे समस्त दक्षिण भारत मे इतना विशाल एव प्रभावोत्पादक मदिर दूसरा नही है।

चोळो द्वारा निर्मित दूसरा विशाल मदिर गगैकोडचोळपुरम का मदिर है, जिसका निर्माण सन १०२५ मे राजराज के पुत्र राजेद्र चोळ ने किया था। यह स्थान कुभकोणम से १८ मील की दूरी पर है। यह मदिर तजौर के बृहदीश्वर मदिर से कद मे छोटा होने पर भी अत्यत सुदर प्रभावोत्पादक है। इसे हम चोळ युग का दूसरा भव्य प्रतीक कह सकते है। ये दोनो मदिर चोलो की भक्ति भावना, अदम्य श्रद्धा, अलौकिक कला प्रेम, कल्पनातीत विशाल-हृदयता तथा तीक्ष्ण प्रतिभा के जीवित नमूने है। उपर्युक्त दोनो मदिरो को लक्ष्य करके पर्सी ब्राउन लिखते है

"Each is the final and absolute vision of its creater, made manifest through the medium of structural form, the one symbolizing conscious might, the other sub-conscious grace, but both dictated by that divinity that has ceized the soul"

कहा जाता है कि राजराज ने अपने राजत्व काल मे तजाऊर जिला और उसके आस-पास के स्थानो मे १००८ शिव के मदिर, १०८ विष्णु के मदिर तथा ३ ब्रह्मा के मदिर बनवाये। ये सब मदिर पत्थर से बनवाये गये है। इनके बनवाने मे ईट और गारे का उपयोग केवल ऊपरी भाग मे हुआ है। पत्थरो के टुकडो को काटकर उनसे सुदर स्तभ, मूर्तिया, छज्जे आदि बनाने मे अद्भुत कारीगरी तथा कौशल प्रदर्शित किये गये है। जब हम इस बात की कल्पना करते है कि तजाऊर की भूमि एकदम समतल है और वहा से पच्चीस-तीस मील के भीतर न कोई पर्वत है न कोई चट्टान,

और इन विशाल मदिरो को वनवाने के पत्थर, कम-से-कम २५-३० मील की दूरी से पहाडो को काटकर लाये गये, तव हमे सहज ही इस वात का अनुमान हो सकता है कि इन्हे वनवाने मे कितना श्रम, कितनी शक्ति एव कितना धन व्यय हुआ होगा। पत्थर की वडी-वडी चट्टानो को काटने, उठाने, ढोने, गढने और उन्हे सिलसिले के साथ एक-दूसरे पर रखने के लिए उस युग मे, जब कोई शक्तिशाली मशीन नही थी और सारा काम मानव शक्ति पर ही निर्भर रहता था, कितने लाखो मनुष्यो ने कितने वर्षो तक किस श्रद्धा, विश्वास तथा सहन शक्ति के साथ इस कार्य को किया होगा, इसकी कल्पना करते ही बुद्धि चकरा जाती है।

चोळकालीन शिल्पकला के सुदर एव आकर्षक नमूने दक्षिण के अनेक स्थानो मे प्राप्त होते है। तिरुचिरापल्ली के पास नार्तामलै मे विजयालय चोळेश्वर का मदिर चोळकालीन शिल्प कला का एक सुदर प्रतीक है। इस मदिर का निर्माण चोळयुग के आदि काल मे ही हुआ होगा, क्योकि इसमे पल्लवकालीन शिल्पकला के भी कुछ नमूने मिलते है। इस काल का दूसरा प्रसिद्ध स्मारक कुवकोणम मे नागेश्वर स्वामी का मदिर है। मदिर की दीवारो मे पश्चिम की ओर अर्धनारीश्वर की, उत्तर की ओर ब्रह्मा की और दक्षिण की ओर दक्षिणामूर्ति की मूर्तिया बनी है। मदिर मे मूर्ति कला के अनेक सुदर नमूने मिलते है। इस युग का तीसरा सुदर प्रतीक तिरुचिरापल्ली जिले मे श्रीनिवासनल्लूर नामक ग्राम मे कोरगुनाथ स्वामी का मदिर है, जिसका निर्माण प्रथम परातक चोळ के समय मे हुआ था। यह मदिर ५० फुट लवा, २५ फुट चौडा और ५० फुट ऊचा है और छोटा होने पर भी देखने मे वडा सुदर और कलात्मक है। इसी प्रकार कुवकोणम के पास दारासुरम मे ऐरावतेश्वर का मदिर तथा त्रिभुवन मे हरेश्वर का मदिर भी इस युग की शिल्पकला के सुदर प्रतीक है।

चोळयुग शिल्पकला के साथ-साथ मूर्तिकला के विकास मे भी अग्रणी था। इस काल मे कासे और अष्टधातु की सुदर देवमूर्तिया वनाने मे वहुत अच्छी प्रगति हुई। ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, शिव, कृष्ण आदि देवताओ की अनेक कलात्मक मूर्तिया इस युग मे वनाई गई, जिनमे से अधिकाश या तो नष्ट हो गई है या खो गई है। किंतु अव भी जो प्राप्त है, वे उनके निर्माताओ की निपुणता के उज्वल प्रमाण है। इस युग मे विरचित नटराज की नृत्य-मूर्ति तो अद्भुत कल्पना, कला और अध्यात्मिक भावना का एक सुदर समन्वय है।

चोळो के काल मे सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि भारतीय संस्कृति समु को पार कर विदेशो मे भी फैली और विशेषकर पूर्व के टापुओ मे हिंदू धर्म क प्रचार हुआ। जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियो, मलाया, स्याम आदि देशो के निवास हिंदू धर्म के आश्रय मे आये और वहा पूजा के लिए बडे-बडे मदिरो का निर्माण हुआ। सुमात्रा द्वीप मे बोरोबुदूर और स्याम (थाइलैंड) मे अकोरवाट के विशाल मदिर विदेशो मे हिंदू धर्म तथा हिंदू कारीगरी के ज्वलत प्रतीक है।

पांडियकालीन मंदिर

ईसा की बारहवी शती मे प्रतापी चोळ राजाओ का काल समाप्त हो गया और मदुरा के पाडियवशी राजाओ का अभ्युदय आरभ हुआ। उस वश के पूर्ववर्ती राजाओ ने मदिरो की अपेक्षा साहित्य की अभिवृद्धि पर अधिक ध्यान दिया था और मदुरा मे तमिळ सघो की स्थापना की थी, जिनके सरक्षण मे तमिळ साहित्य के अमर रत्न रचे गये थे। परवर्ती पाडिय राजाओ ने तमिळ देश मे अनेक छोटे-छोटे मदिरो का निर्माण किया और पल्लवो और चोळो द्वारा आरभ की हुई प्रवृत्ति कम-बेशी मात्रा मे चालू रखी। पाडियो के युग मे मदिरो की योजना, रचना तथा ढाचे मे कई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है। चोळकालीन मदिरो मे गर्भगृह के ऊपर का विमान सबसे प्रधान और ऊचा होता था और मदिर के अन्य भाग गौण होते थे। पाडिय काल मे प्रधानता विमान से हटकर मदिर के गोपुर को मिली, अर्थात विमान छोटे और गोपुर बडे बनने लगे।

शिल्पकला एव कारीगरी की दृष्टि से भी चोळकालीन विमानो की अपेक्षा पाडियो के गोपुर अधिक सुदर तथा कलात्मक होते थे। गोपुर की तिल-तिल भूमि मनुष्यो, ऋषियो तथा देवताओ की सुदर मूर्तियो से अलकृत होती थी। इन मूर्तियो को बनाने मे एक प्रकार के गारे का उपयोग किया गया है, जो टिकाऊपन और मजबूती मे आजकल की सिमेंट से अधिक उपयोगी और मजबूत है। ये गोपुर पाडिय राजाओ की विशाल कल्पना शक्ति, कला-प्रेम तथा सुकीर्ति के अद्भुत नमूने है।

विजयनगर साम्राज्यकालीन मंदिर

कई सौ वर्षो तक मुसलमानो द्वारा पददलित रहने के बाद हरिहर और बुक्कन्ना नामक दो भ्रातृ वीरो के प्रयत्न से पुन एक बार दक्षिण मे हिंदू राज्य की स्थापना

हुई। कर्णाटक के बेलारी जिले मे तुगभद्रा नदी के तट पर हपी नामक स्थान है। यही सुरम्य स्थान विजयनगर साम्राज्य की राजधानी बना और यही से इस देश के राजाओ ने प्राय समस्त दक्षिणावर्त पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। विजयनगर का राज्य दक्षिण भारत मे हिंदू धर्म एव सस्कृति का प्रबल समर्थक तथा सरक्षक था। उसके सरक्षण मे पददलित हिंदू जाति को नई चेतना और स्फूर्ति प्राप्त हुई थी। इस वश के सबसे प्रतापी राजा श्रीकृष्णदेवराय के काल मे धर्म, साहित्य, कला-कौशल, मदिर-निर्माण आदि सभी क्षेत्रो मे सर्वतोमुखी उन्नति हुई।

इस वश ने सन १३५० से १५६५ तक कुल दो सौ वर्षो तक ही शासन किया, किंतु इस थोडे अरसे मे ही वास्तु एव शिल्पकला की जो उन्नति हुई, उसके प्रमाण आज भी विजयनगर मे निर्मित विट्ठलस्वामी के मदिर मे तथा दक्षिण के अनेकानेक देवालयो मे प्राप्त हैं। इस युग मे अनेक पुराने मदिरो का जीर्णोद्धार हुआ, मदिरो के चारो ओर बडे-बडे प्राकार तथा प्राकारो के ऊपर ऊचे-ऊचे गोपुर बनाये गये। मदिरो मे बडे-बडे सभामडप, अर्धमडप, हजार स्तभो के मडप आदि बनाये गये, जिनसे मदिरो की प्रतिष्ठा तथा विस्तार बहुत बढ गये। यहा तक कि कही-कही सारा शहर मदिर के प्राकारो के अदर आ गया, जैसाकि श्रीरगम और जबुकेश्वर के मदिरो मे देखा जाता है। पत्थर की बडी-बडी चट्टानो को काटकर सुदर मूर्तियो से अलकृत पत्थर के कलात्मक स्तभ इस युग के विशेष प्रतीक हैं। इन स्तभो पर बनी हुई मनुष्यो, देवताओ, पशुओ, योद्धाओ, नर्तकियो आदि की मूर्तिया अत्यत सुदर एव सजीव दीखती हैं। ये मूर्तिया शक्ति, सौंदर्य और कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। वास्तव मे पत्थर की कारीगरी मे जितनी उन्नति इस युग मे हुई, उतनी अन्य किसी युग मे नही हुई थी। आज भी ऐसे कलात्मक स्तभ विजयनगर, वेलूर, कुभकोणम, श्रीरगम, मदुरा आदि क्षेत्रो के मदिरो मे मिलते हैं, जिन्हे देखने से इनके कारीगरो की तीक्ष्ण कल्पना-शक्ति, अद्भुत सृजन-शक्ति, गभीर मनोयोग तथा अद्वितीय दक्षता का ज्ञान सहज ही हो जाता है। श्रीरगम के मदिर मे लगे हुए स्तभो पर खुदे हुए घोडो और योद्धाओ की मूर्तिया कलाकार की प्रतिभा तथा दक्षता के सुदर उदाहरण हैं। यद्यपि समस्त दक्षिण भारत मे विजयनगर-कालीन कला के नमूने मिलते हैं, किंतु उसका सबसे सुदर और भव्य नमूना विजयनगर के ही विट्ठलराय और हजार राम के मदिरो मे दर्शनीय हैं। इन दोनो की अद्भुत

कारीगरी को देखकर मनुष्य को स्तभित रह जाना पडता है। खेद है कि १५६५ मे कलिकोटा के युद्ध मे मुसलमानो की सम्मिलित शक्तियो के आक्रमण के कारण विजयनगर राज्य का एकाएक अत हो गया और उसके द्वारा प्रारभ किये हुए कई मदिर अधूरी अवस्था मे ही रह गये।

नायककालीन मंदिर

विजयनगर साम्राज्य के अध पतन के पश्चात दक्षिण मे मुसलमानो का प्रभाव वढने लगा और तिरुच्चिरापल्ली तक की भूमि उनके अधिकार मे आ गई। केवल मदुरा तथा उसके आस-पास की भूमि मुसलमानो के प्रभाव से मुक्त रह गई। इसीलिए इस युग मे मदुरा हिंदू सस्कृति और हिंदू शिल्पकला का प्रधान केद्र बन गया। विजयनगर साम्राज्य की ग्रोर से नायकवशीय राजा मदुरा पर शासन करते थे। साम्राज्य के पतन के बाद वे स्वतत्र हो गये और मदुरा और उसके दक्षिण के प्रदेश उनके कब्जे मे रह गये। इस वश मे तिरुमलै नायक नामक एक प्रतापी राजा हुआ, जिसने १६२३ से १६५६ तक राज्य किया। इसके राजत्व-काल मे मदुरा की अच्छी उन्नति हुई और दक्षिणात्य शिल्पकला विकास की चरम-सीमा पर पहुच गई। नायक राजाओ ने मदिरो के विस्तार को बढाने, उनके चारो तरफ ऊचे प्राकार बनवाने, सुदर कलात्मक कृतियो से मदिरो को सजाने तथा नये-नये महल बनवाकर मदिर का कलेवर बढाने मे पूर्ण सहयोग दिया, जिससे मदिरो के विस्तार के साथ-साथ उनके महत्व एव प्रतिष्ठा मे भी बहुत वृद्धि हुई। मदुरा के मदिर का बाहरी प्राकार तथा उनके द्वारो पर बने हुए विशाल गगन-चुबी गोपुर नायक राजाओ के कीर्ति-स्तभ है। उस अशाति के युग मे, जब शत्रुओ के धावो से देवालयो की रक्षा करना आवश्यक था, इन ऊचे सुदृढ प्राकारो का महत्व किसी प्रकार कम नही किया जा सकता। वास्तव मे दक्षिण के मदिर और उनके चारो तरफ बने हुए प्राकार तथा प्राकारो के भीतर बने महल-मडप आदि लौकिक एव पारलौकिक दोनो तरह की आवश्यकताओ की पूर्ति करते थे।

मध्य युग मे मदिर निर्माण का जो महान कार्य आरभ हुआ था, उसका चरम विकास मदुरा के मदिर मे हम देख सकते है। मदुरा के मदिर मे जिस उच्च कोटि की शिल्पकला एव कारीगरी के उदाहरण देखने को मिलते है, वह ससार के लिए एक अद्भुत वस्तु है। मदिर-निर्माण की यह कला मदुरा तक ही सीमित नही रही।

मदुरा की योजना पर तमिळ देश मे अनेक अन्य मदिरो का भी विकास हुआ। श्रीरगम, जबुकेश्वर, चिदवरम, तिरुवारूर, कुबकोणम, रामेश्वरम, तिरुनेलवेली, श्रीविल्लिपुत्तूर, तिरुवन्नामलै आदि स्थानो के मदिर इसी श्रेणी मे आते है। इनके प्राकार भी उसी मानचित्र के अनुसार बने है, जिसके अनुसार मदुरा का मदिर बना है।

दक्षिण ने शिल्पकला, वास्तु कला तथा मदिर-निर्माण की अपनी अलग एव स्वतत्र परिपाटी तथा योजना विकसित की थी। वहा मदिरो का निर्माण और उनमे होनेवाली दैनिक पूजाओ की व्यवस्था आगम शास्त्रो के अनुसार की। दक्षिण मे जितने मदिर बने है, उन सबके पीछे यहा के लोगो की आतरिक श्रद्धा तथा भावनाए ही नही, किंतु उनके अदर की अपूर्व क्रिया शक्ति, निर्माण शक्ति तथा कल्पना शक्ति भी छिपी हुई है।

दक्षिण के मदिरो की रचना शैली उत्तर भारत के मदिरो से बिल्कुल भिन्न है। यहा के अधिकाश मदिर विष्णु, शिव या सुब्रह्मण्य के नाम पर बने है। ये ही तीन दक्षिण के सबसे अधिक पूज्य एव प्रधान देवता है। कही-कही मारिअम्मन अथवा शीतला देवी के भी मदिर मिलते है। शिव के मदिरो मे शिवलिग का तथा विष्णु के मदिरो मे भगवान विष्णु की मूर्ति होना स्वाभाविक है। विष्णु को कही-कही रगनाथ या पेरुमाल नाम से भी सबोधित करते है। इसी प्रकार शिव के भी वेदीश्वर, कपालीश्वर, बृहदीश्वर, मातृभूतेश्वर आदि अनेक नाम है। प्रत्येक मदिर का अपना स्थल पुराण होता है, जिसमे उस मदिर के अधिष्ठात्री देवता या देवी की लीलाओ का तथा मदिर के निर्माताओ का वर्णन होता है।

यहा के मदिरो मे देव और देवी के मदिर अलग-अलग होते है। बडे-बडे मदिरो मे तो उनके प्राकार भी अलग-अलग होते है। परतु छोटे-छोटे मदिरो मे दोनो के मदिर एक ही प्राकार के अदर, पर अलग-अलग, बने होते है। भगवान का मदिर देवी के मदिर से अपेक्षाकृत बडा होता है। मुख्य मदिर के सबसे भीतरी भाग को गर्भ-गृह कहते है। इसी गर्भगृह के भीतर देवता की मूर्ति रहती है। शरीर के भीतर जिस तरह हृदय सबसे अधिक सुरक्षित स्थान होता है, उसी तरह मदिरो के भीतर गर्भगृह सबसे सुरक्षित एव पवित्र स्थान होता है और बाहरी प्रकाश से रहित भीतरी प्रकाश से ही प्रकाशित रहता है। मदिर के पुजारियो को छोडकर अन्य

किसी को गर्भगृह के अदर प्रवेश नही मिलता। मदिरो मे दो मूर्तिया होती है, एक तो भगवान की स्थल मूर्ति, जो प्राय प्रस्तर निर्मित होती है, दूसरी उत्सव-मूर्ति जो सोने, चादी या अष्टधातु की बनी होती है। उत्सव के समय यही उत्सव मूर्ति बडे-बडे रथ अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार के वाहनो मे बिठाकर नगर मे चारो तरफ फिराई जाती है। मदिर से लगा हुआ, प्राकार के भीतर या बाहर, एक बडा तालाब होता है, जिसे तेप्पकुलम कहते है। वर्ष मे एक बार भगवान की उत्सव-मूर्ति सुदर सजी हुई, नौका मे बिठाकर इसी तालाब मे फिराई जाती है। इस उत्सव विशेष को तप्पम-उत्सव कहते है। मदिर के प्राकार के भीतर बडे-बडे मडप भी बने रहते है, जिसमे उत्सवो के समय यात्री आराम करते है। कभी-कभी भगवान की उत्सव मूर्ति यहा लाकर सर्वसाधारण के दर्शन के लिए रखी जाती है।

गर्भगृह के सिह द्वार पर दोनो तरफ द्वारपालो की विशालकाय मूर्तिया, पत्थर या धातु की बनी होती है, जिन पर हवा-पानी से उनकी रक्षा करने के हेतु घी या तेल चुपडा रहता है। मदिर के प्राकार के भीतर दूसरे देवताओ के भी छोटे-छोटे मदिर होते है। शिव के मदिर के प्रागण मे विशेष रूप से गणेश, सुब्रह्मण्य, नटराज आदि देवताओ के मदिर होते है तथा ६३ शैव सतो की मूर्तिया रखी रहती है। इसी प्रकार विष्णु मदिर के प्रागण मे राम, कृष्ण, गरुड, हनुमान आदि देवताओ के मदिर तथा १२ वैष्णव आळवारो (सतो) की मूर्तिया रहती है। प्राय विष्णु और शिव दोनो के मदिरो मे नवग्रहो की मूर्तिया एक कोने मे अवश्य पाई जाती है। गर्भगृह के सामने एक विशाल ध्वजस्तभ का होना भी आवश्यक है और गर्भगृह के चारो तरफ परिक्रमा के लिए ढका हुआ ओसारा भी दक्षिण के मदिरो का एक प्रधान अग है। कही-कही ओसारे की दीवारो पर मदिर का इतिहास खुदा होता है अथवा भगवान की लीलाओ के सुदर रगीन चित्र बने होते है।

प्राचीन काल मे दक्षिण मे राजाओ तथा धनी व्यक्तियो के लिए मदिर बनवाना एक महत्वपूर्ण धार्मिक कर्तव्य समझा जाता था। जिस गाव या नगर मे मदिर नही, वह बसने के अयोग्य माना जाता था। तमिळ कवयित्री अव्वय्यार ने लिखा है—"जहा मदिर नही हो, वहा मनुष्य को कदापि निवास नही करना चाहिए।" 'तेवारम' मे भी इसी आशय की उक्ति मिलती है कि "जहा मदिर नही हो, वह स्थान मरुभूमि की तरह त्याज्य है।" सघम कवि नक्कीरर ने लिखा है कि "जहा भगवान के उत्सव मनाये जाते है, जहा भक्त लोग नियम से प्रार्थना करते है, जहा दो नदिया

मिलती है, जहा नगरो के मध्य खुली हुई जगह हो, जहा तीन-चार रास्ते मिलते हो, गावो के बीच उगे हुए पेडो के नीचे तथा गौओ को बाधने के स्थान मे भगवान स्वय निवास करते है।"

दक्षिण के मदिर प्राय नगर के मध्य मे बने होते है और बाग-बगीचे, तालाब, मैदान, मडप, वेद-पाठशाला आदि वहा के प्रत्येक मदिर के मुख्य अग होते है। ये वस्तुए मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक रखने मे भी सहायक होती है। इस तरह दक्षिण के मदिर हिंदू समाज की पार्थिव एव आध्यात्मिक दोनो आवश्यकताओ की पूर्ति करते है।

सभी मदिरो मे सवेरे भगवान की पूजा और सध्या को आरती होती है, नैवेद्य चढाये जाते है और प्रसाद बटते है। अनेक शुभ तिथियो को उत्सव मनाये जाते है, जब भगवान के दर्शन के लिए तथा उत्सव देखने के लिए दूर-दूर से यात्री इकट्ठे होते है। प्राय सभी मदिरो से लगी हुई वेद-पाठशालाए भी रहती है, जिनमे बालको को मुफ्त मे वेदाध्ययन कराया जाता है और कही-कही उन्हे मुफ्त मे भोजन तथा वस्त्र भी दिये जाते है। पूर्व काल के राजाओ, रईसो, धनी, व्यापारियो तथा भक्तो ने मदिरो के खर्च के लिए बडी सपत्ति और जागीरे दे रखी है, जिनकी आय से मदिर की मरम्मत तथा पूजा आदि का खर्च चलता है।

यहा के मदिर हजारो वर्षो से दक्षिण भारत के सभी जाति और वर्गो के लोगो के जीवन को प्रभावित करते तथा उनके हृदय मे श्रद्धा भक्ति तथा पवित्र भावनाओ का उद्रेक करते आये है। आज भी दक्षिण भारत के लोगो के हृदय मे मदिरो तथा मदिर के देवता के प्रति प्रगाढ भक्ति तथा श्रद्धा की भावनाए विराजमान है, जो उनके दैनिक जीवन को अनेक रूपो मे प्रभावित करती रहती है।

: १८ :

दक्षिण के देवालय—२

इस अध्याय मे दक्षिण के कुछ प्रसिद्ध मदिरो का परिचय दिया गया है

काची या काचीपुरम : हजारो वर्षो से दक्षिण मे हिंदू सस्कृति की सबसे बडी पीठ काची रही है। इसकी गणना भारत के सप्त तीर्थो मे होती है। ईसा से सदियो पहले भी यह नगर आबाद था और यहा अनेक विद्यापीठ थे। सदियो तक यह स्थान जैन और बौद्ध मतावलबियो का भी केद्र रहा था। पीछे चलकर जब शकर और रामानुजाचार्य के प्रयत्नो से दक्षिण मे बौद्ध तथा जैन धर्मो का प्रभाव मिटा, तो यह स्थान पुन आर्य-सस्कृति और सस्कृत विद्या का केद्र बन गया। प्रसिद्ध बौद्ध साधु धर्मपाल बोधिस्तव की जन्म-भूमि काची ही थी।

काची अनतकाल से पल्लववशी राजाओ की राजधानी थी। पल्लव राजाओ द्वारा निर्मित अनेक मदिर यहा वर्तमान है। पीछे चलकर चोळ राजाओ के समय मे भी यहा कुछ मदिरो का निर्माण हुआ। ईसा की सातवी सदी मे प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूएनसाग यहा आया था। अपने यात्रा विवरण मे उसने इस नगर की बडी प्रशसा की है। जिस समय वह काची आया था, उस समय यहा सैकडो सघारम थे और नगर मे बहुत ऊचे दरजे के विद्वान सन्यासी और भिक्षु रहते थे।

काची शिव-भक्त और विष्णु-भक्त, दोनो के लिए, समान रूप से पवित्र है। इसके दो भाग है—एक भाग शिवकाची के नाम से, और दूसरा विष्णुकाची के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि किसी समय नगर मे शिव के १०८ और विष्णु के १८ मदिर थे। शिव के मदिरो मे श्री कामाक्षी, एकाबरनाथ तथा कैलाशनाथ के मदिर और विष्णु के मदिरो मे वरदराजस्वामी, बैकुठ पेरुमाल, पाडवदूतर, विलक्कोलि पेरुमाल आदि के मदिर सबसे प्रसिद्ध है।

शिवकाची मे कामाक्षी अम्मन का मदिर सबसे प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि
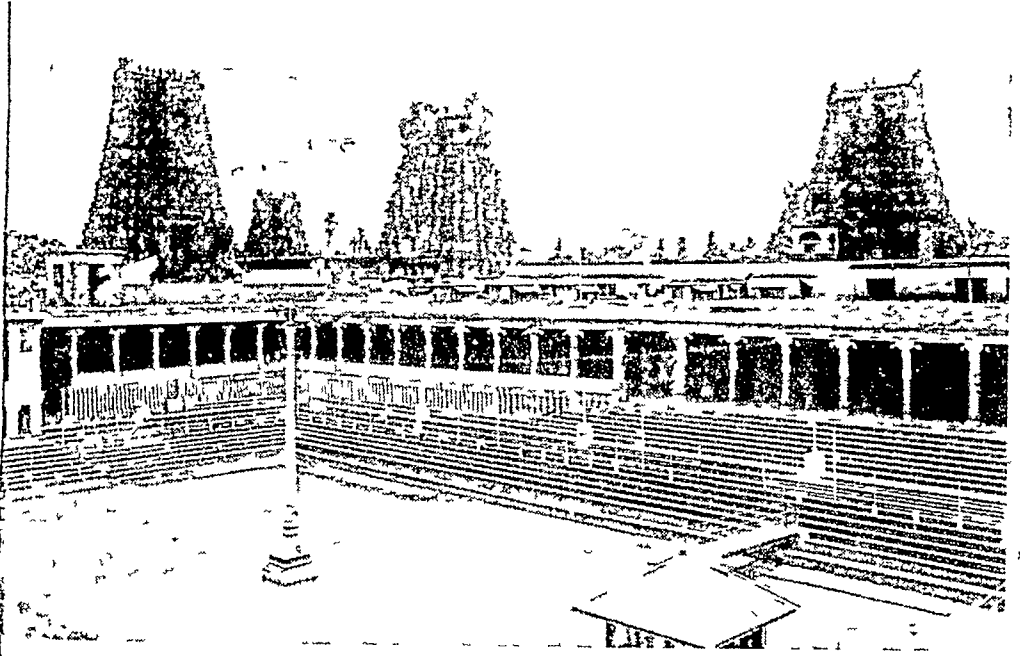
मदुरा का मीनाक्षी-मदिर गोपुर और तालाब

रामेश्वरम मदिर का सपथ
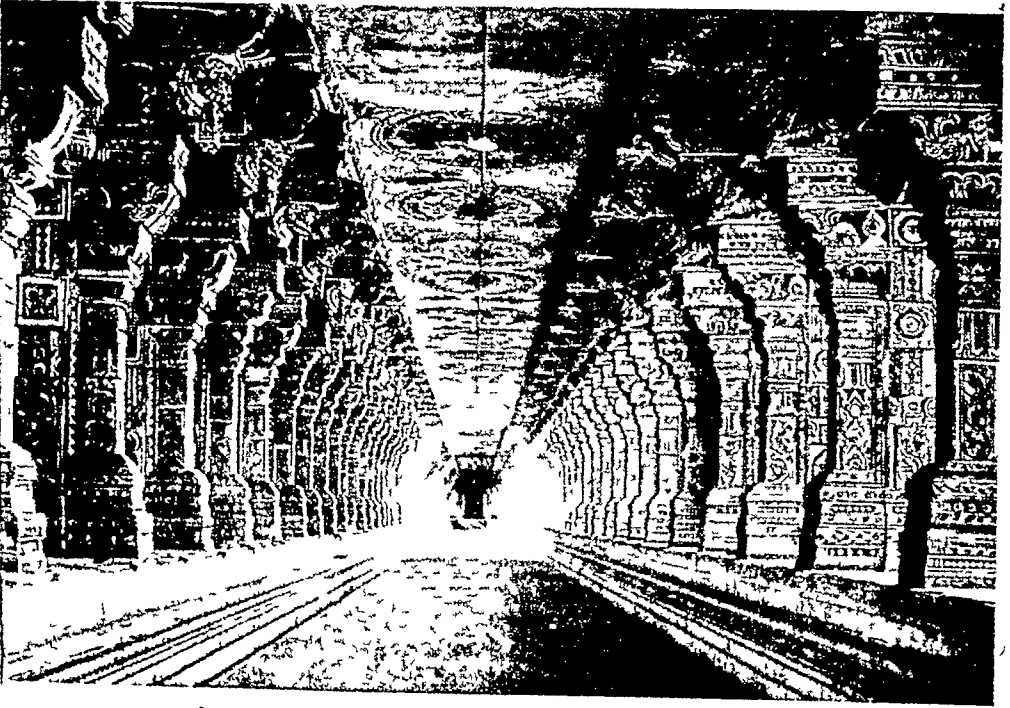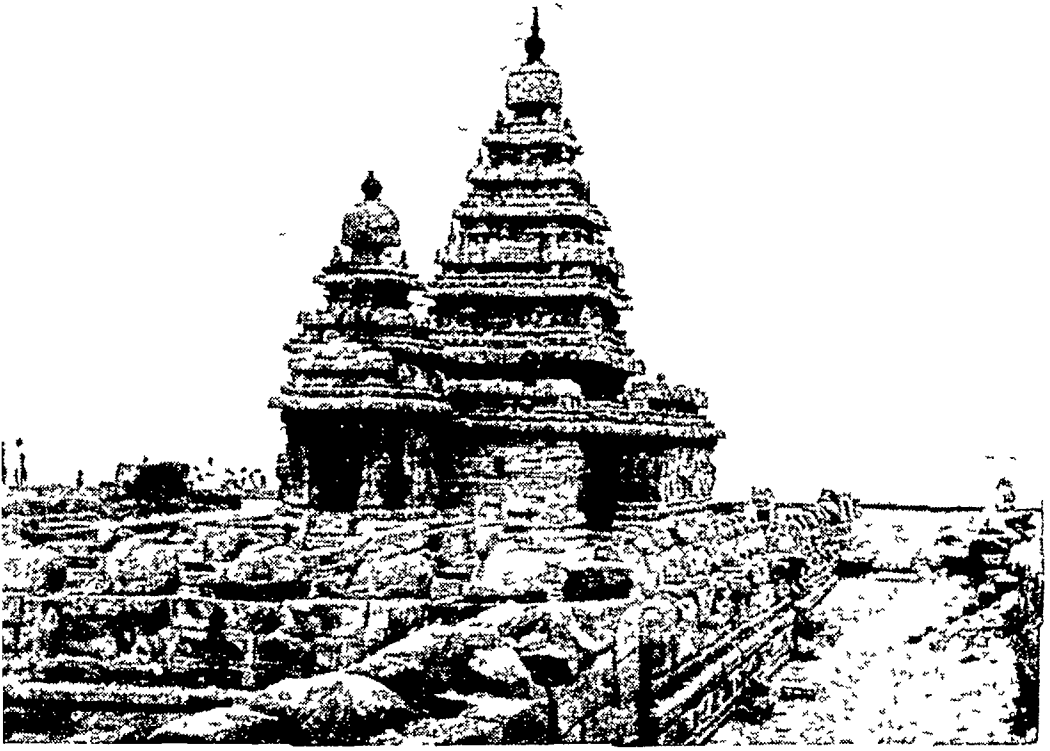
समुद्रतट का सुप्रसिद्ध मदिर, महाबलीपुरम

सप्तरथ—महाबलीपुरम
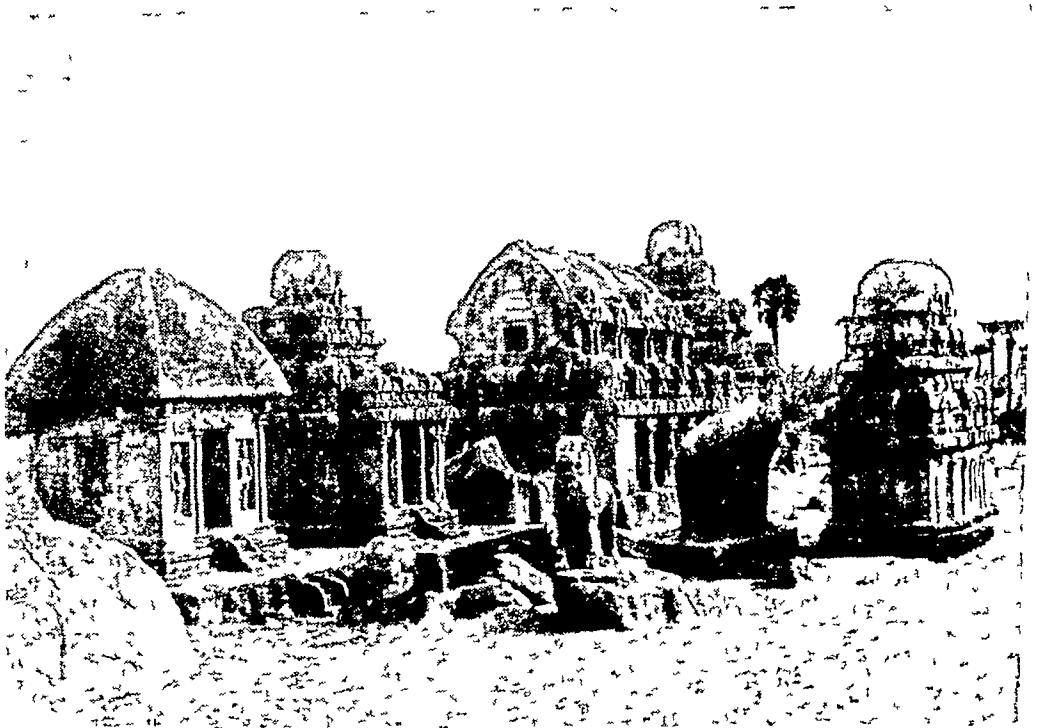
जब देवी का प्रभाव कम होने लगा, तब आदि-शकराचार्य ने मूर्ति के सामने एक चक्र स्थापित करके उसके प्रभाव को बढाया था।

एकाबरनाथ का मदिर यहा का दूसरा प्रसिद्ध मदिर है। मदिर की दीवार पर शकर द्वारा काम-दहन का चित्र बडे सुदर ढग से बनाया गया है। इस मदिर के अहाते मे एक अत्यत प्राचीन आम का वृक्ष है, जो बहुत पवित्र माना जाता है। कहा जाता है कि किसी समय इसी वृक्ष के नीचे शिव ने पार्वती को दर्शन दिये थे।

कैलाशनाथ का मदिर यहा का सबसे प्राचीन तथा प्रसिद्ध मदिर है। यह मदिर पल्लव राजा राजसिह द्वारा सन ५६७ मे बनवाया गया था और उत्तर-कालीन पल्लव शिल्प-कला का एक सुदर नमूना है। मदिर मे ईश्वर की अर्धनारीश्वर मूर्ति है। भगवान शिव वरद आरूढ है और उनकी अर्धागिनी पार्वती के हाथ मे वीणा है।

वैष्णव मदिरो मे सबसे प्रसिद्ध एव दर्शनीय श्री वरदराज स्वामी का मदिर है। यह मदिर हस्तगिरि नामक एक छोटी पहाडी पर बना है। कथा है कि किसी समय ब्रह्मा ने इस स्थान पर यज्ञ किया था। विजयनगर के महाराज अच्युतराय ने सपरिवार यहा आकर भगवान की पूजा की थी और मदिर को अनेक गाव, रत्नाभूषण तथा एक हजार गाय दान दी थी। मदिर की दीवार पर भगवान विष्णु के अनेक रूप चित्रित है। प्रसिद्ध वैष्णव सत तिरुमगैआळवार ने मदिर मे आकर स्तुति की थी और भगवान की प्रशसा मे छद रचे थे।

यहा के मदिरो की चर्चा वैष्णवो के 'नालायिर प्रबधम' तथा शैवो के 'तेवारम' आदि ग्रथो मे मिलती है। आठवी सदी मे शकराचार्य ने यहा एक मठ की स्थापना की थी, जो तजाऊर के महाराज सर्फोजी के प्रयत्न से काची से स्थानातरित होकर कुबकोणम आ गया।

चिदबरम चिदबरम दक्षिण के पुण्य क्षेत्रो मे बहुत प्राचीन एव प्रसिद्ध है। यहा नटराज (नृत्य मुद्रा मे भगवान शिव) की जगत्प्रसिद्ध मूर्ति है। मदिर मे भगवान शिव का कोई लिग नही है। दक्षिण मे शिव के पाच प्रसिद्ध क्षेत्र है; जहा आकाश, ज्योति, वायु, जल, पृथ्वी आदि पाच तत्वो के आधार पर पाच लिग की कल्पना की गई है। ये पाचो लिंग पाच भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे स्थापित है। चिदबरम में

आकाशलिग, तिरुवण्णामलै मे ज्योतिर्लिग, वायुलिग कालहस्ती मे, आयुलिग जम्बुकेश्वरम मे और पृथ्वीलिग रामेश्वरम मे माने जाते है।

मदिर की प्राचीनता के सबध मे कहा जाता है कि उसका निर्माण ईसा की छठी शताब्दी मे पल्लव राजा सिह वर्मन द्वारा हुआ था। तत्पश्चात चोळ राजाओ ने मदिर की श्रीवृद्धि की और चोळो के बाद पाडिय राजाओ तथा विजयनगर के महाराजाओ ने मदिर का विस्तार तथा कलेवर बढाने मे योग दिया। प्रसिद्ध शैव सत अप्पर, सुदरर और सबधर ने इस मदिर मे आकर भगवान की प्रशसा मे स्त्रोत्र रचे थे और ईसा की सातवी सदी मे सत माणिक्कवाचकर ने इसी मदिर मे बौद्ध विद्वानो को शास्त्रार्थ मे परास्त करके उन्हे दक्षिण से लका की ओर खदेड दिया था। प्रसिद्ध हरिजन भक्त नदनार ने इसी मदिर मे आकर भगवान शिव के दर्शन प्राप्त किये थे।

शिल्प कला की दृष्टि से भी यह मदिर बडा महत्वपूर्ण तथा दर्शनीय है। ५६ खभोवाली नाट्यशाला कला की दृष्टि से बहुत ही सुदर रचना है। इसके स्तभ बडी कारीगरी तथा कुशलता के साथ गढे गये है और उन पर खुदे हुए सुदर और आकर्षक चित्रो की शोभा निराली और हृदय ग्राही है। गर्भगृह के सामने कनक सभा नामक मडप भी दक्षिणी शिल्प तथा वास्तुकला का सुदर नमूना है। मदिर के पूर्वी तथा पश्चिमी गोपुर पर भरत-नाट्य की १०८ मुद्राओ को प्रदर्शित करनेवाली सुदर मूर्तिया बनी है।

नृत्य मुद्रा मे भगवान शिव की मूर्ति शोभा, शक्ति तथा कला का अद्भुत समन्वय है, जिसे देखते आखे नही थकती। यह मूर्ति और इसके अदर छिपी हुई कल्पना दक्षिण शिल्प-कला की सबसे बडी देन कही जा सकती है।

तजाऊर तजाऊर या तजौर का भगवान बृहदीश्वर का मदिर प्रतापी चोळ सम्राट राजराज चोळ की अक्षय कीर्ति है। यह मदिर १८० फुट लबे और लगभग २० फुट ऊचे एक बडे चबूतरे पर बना है। मदिर का निचला खड ८२ फुट लबा और उतना ही चौडा तथा ५० फुट ऊचा है। शिखर भूमि से २१६ फुट ऊचा है और आकाश को छूता हुआ दिखाई देता है। प्रतापी चोळ राजाओ को मदिर बनवाने का बहुत शौक था। अकेले तजाऊर जिले मे उन्होने लगभग पौने तीन सौ बडे-

वडे मदिर बनवाये। तजाऊर का मदिर सन १००९ मे पूरा हुआ था। मदिर ५०० फुट लबी और २५० फुट चौडी समतल भूमि मे बना है, जिसके चारों तरफ ऊची चहारदीवारी है।

मदिर के शिखर पर एक ही पत्थर को काटकर बनाया हुआ एक विशाल कलश है, जिसकी गोलाई २५½ फुट है, ऊचाई १३ फुट और वजन २० टन के करीब है। मदिर का भीतरी हाल ४५ फुट लबा और उतना ही चौडा है, जिसकी दीवारो पर चित्रकारी के सुदर नमूने है। गर्भगृह मे काले पत्थर का बना हुआ १३ फुट ऊचा विशाल शिवलिग है जो १२½×१२½ चबूतरे पर स्थापित है। मदिर के सामने एक ही प्रस्तर खड से निर्मित नदी विशाल मूर्ति बैठी हुई अवस्था मे है, जिसकी लबाई १६ फुट, मोटाई ७ फुट और ऊचाई १२ फुट है और उसका वजन अनुमानत २५ टन है।

कहा जाता है कि इस मदिर को बनाने मे पूरे १२ साल लगे थे। सारा मदिर पत्थरो से बना है। मदिर मे लगे हुए वडे-वडे पत्थर के टुकडे, नदी की मूर्ति और कलश दूर-दूर से लाये गये थे, क्योकि तजाऊर के आस-पास पत्थर नही मिलते। मदिर को देखने से इसके निर्माता राजराज की श्रद्धा, आत्म-विश्वास तथा वैभव का सहज मे ही अनुमान हो सकता है।

मदुरा . मदुरा नगर के ठीक बीच मे मीनाक्षी देवी का मदिर तथा उसके गगनचुबी विशाल गोपुर दक्षिण की शिल्प-कला, कारीगरी और तत्कालीन राजा-प्रजा की ईश्वर भक्ति, कला-प्रेम तथा अदम्य उत्साह और साहस का अद्भुत नमूना है। मदिर नगर के ठीक मध्य मे स्थित है। उसके चारो ओर ऊचे प्राकार तथा चौडी सडके है। मदिर के बाहर चारो ओर नगर बसा हुआ है।

मदिर का बाहरी प्राकार २५० फुट चौडा और ७२५ फुट लबा है। चारो दिशाओ के चारो प्राकारो के मध्य मे चार ऊचे गोपुर है, जिनकी तिल-तिल भूमि देवताओ की सुदर मूर्तियो से अलकृत है। मदिर का सिहद्वार पूरब की ओर है, जिससे लगा हुआ २०० फुट लबा और १०० फुट चौडा एक वडा मडप है। मदिर के दो भाग है, एक भाग मे देवी मीनाक्षी का मदिर है और दूसरे मे भगवान शिव का। मीनाक्षी किसी पाडिय राजा की कन्या थी, जिन्होने अपनी भक्ति के बल पर

भगवान शिव को वरा था। मदिर के भीतरी प्राकार मे प्रस्तर-कला और कारीगरी के सबसे सुदर नमूने है। मदिर मे लगे कलापूर्ण खभो को देखकर मनुष्य आश्चर्य मे पड जाता है। एक-एक प्रस्तर स्तभ बनाने मे कितने दिन लगे होगे, उसके निर्माण मे कितनी सावधानी एव सतर्कता बरती गई होगी, कितनी अपार धनराशि इन पर खर्च हुई होगी, इन बातो का अनुमान करना कठिन है। इन स्तभो की सुदरता वर्णनातीत है। देखने से ही इनका सच्चा ज्ञान और अनुमान हो सकता है।

श्रीरगम : दक्षिण भारत के मदिरो मे सबसे बडा और दक्षिण के वैष्णव क्षेत्रो मे सबसे प्रधान तिरुच्चिरापल्ली के पास श्रीरगम का मदिर है। लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व इस मदिर की स्थापना हुई थी और समय-समय पर पाडिय तथा चोळ राजाओ और वैष्णव भक्तो ने इसका कलेवर बढाने मे योगदान दिया। पीछे चलकर विजयनगर के अधीन नायक राजाओ ने भी मदिर के आकार-प्रकार मे बहुत वृद्धि की। मदिर के एक भाग मे हाथीदात की बनी हुई मदुरा के नायक राजा तिरुमलनायक तथा उनकी रानी की मूर्तिया रखी है।

इस मदिर मे एक-दूसरे के भीतर बने हुए सात प्राकार है। सबसे भीतरी प्राकार मे भगवान रगनाथ का मदिर है। मदिर का यह भाग सबसे प्राचीन है और विमान की तरह बना है। विमान के गुबद पर सोना मढा हुआ है, जो मदिर की शोभा को बहुत बढा देता है। मदिर का बाहरी प्राकार उत्तर से दक्षिण की ओर २,८८० फुट और पूरब से पश्चिम की ओर २४७५ फुट लबा है। इसके चारो दिशाओ मे चार विशाल गोपुरो की आयोजना थी, किंतु दुर्भाग्यवश वह पूरी नही हो सकी। इन अधूरे गोपुरो को देखकर उनकी विशालता की कल्पना सहज ही की जा सकती है। इस बाहरी प्राकार के अदर लगभग एक चौथाई मील भूमि घिरी हुई है, जिस पर लगभग ३०,००० की आबादी निवास करती है। प्राय श्रीरगम का सारा नगर इस मदिर के अदर ही बसा है। बाहर की ओर से पहले तीन प्राकारो के अदर चारो तरफ सीधी चौडी सडके है, जिनके दोनो तरफ मकान और दूकाने बनी हुई है। अदर के तीन प्राकारो मे बडे-बडे मडप, हाल, तालाब तथा मदिर से सबध रखनेवाली इमारते है। श्रीरगनाथ के मदिर के पीछे माता रगनाथजी का मदिर है।

सबसे भीतर के प्राकार मे श्रीरगनाथ का मदिर है, जिसमे भगवान की शेपसाई मूर्ति है।

किवदती है कि लका-विजय करके अयोध्या लौटने के बाद श्री रामचद्रजी ने यह मूर्ति पूजा के लिए विभीषण को दी थी। किंतु किसी कारण से विभीपण उसे लका नही ले जा सके और यही छोडकर चले गये।

श्रीरगम का मदिर कावेरी नदी की दो शाखाओ के बीच २० मील लबे और एक मील चौडे द्वीप के मध्य मे स्थित है। सारा द्वीप बाग बगीचे और नदन वनो (पुष्पवाटिकाओ) से शोभायमान है। मदिर मे लगे हुए प्रचुर प्रस्तर खडो को और विशाल स्तभो को देखकर आश्चर्य होता है कि ये खभे किस प्रकार नदी के दूसरे तट से यहा लाये गये होगे। पहाडो को काटने, उन्हे सजाने, उन्हे यहा तक लाने, उन्हे गोपुर के ऊचे शिखरो पर उठाकर रखने मे कितने आदिमियो की शक्ति और कितना श्रम लगा होगा, इसकी कल्पना करना कठिन है। दक्षिण के इन विशालकाय मदिरो को देखने से मालूम होता है कि सैकडो वर्षो तक यहा के निवासियो के एक बडे समूह के समक्ष मदिर निर्माण का कार्य ही प्रधान रहा होगा।

मदिर के पास बहुत बडी सपत्ति है और अनमोल रत्नो के अनेक आभूपण है, जिन्हे समय-समय पर राजाओ तथा भक्तो ने भगवान के उपयोग के लिए दान और भेट के रूप मे दिया था। प्रति-वर्ष वैकुठ एकादशी के अवसर पर दस दिन तक यहा बहुत बडा मेला लगता है। इस समय भगवान की उत्सव मूर्ति स्वर्णाभूषणो से सुसज्जित होकर और नित्य नये-नये वाहनो पर सवार होकर जुलूस के साथ बाहर निकलती है और हजारो स्त्री पुरुप भगवान के दर्शन के लिए एकत्रित होते है।

मातृभूतेश्वरम . तिरुच्चिरापल्ली नगर के मध्य मे २७३ फुट ऊची पहाडी पर भगवान शिव का एक बहुत ही सुदृढ एव सुदर मदिर है। इस मदिर का निर्माण आज से लगभग तीन-साढे तीन सौ वर्प पूर्व मदुरा के नायक वश की मगम्मा नामक रानी द्वारा किया गया था। पर्वत की ऊची चोटी पर इतने विशाल मदिर का निर्माण करके रानी ने अद्भुत साहस और कल्पना-शक्ति का परिचय दिया था। मदिर की दीवारो मे भगवान शिव के जीवन से सबध रखनेवाली कथाए रगीन चित्रो मे चित्रित है।

मन्दिर के देवता का नाम मातृभूतेश्वर है। कथा है कि भगवान शिव की एक अनन्य भक्ता गर्भवती थी। जब प्रसव का समय निकट आया, तब उसने सहायता के लिए अपनी माता को बुला भेजा। किंतु उसकी माता कावेरी नदी के उस पार रहती थी। नदी मे बाढ आ जाने के कारण वह समय पर अपनी लडकी के पास नही पहुच सकी। लडकी की चिंता देखकर भगवान शिव स्वय उसकी माता का रूप धारण करके उसके घर आये और उसकी सेवा करते रहे। कुछ दिनो के बाद उसकी मा के आने पर शिवजी अतर्धान हो गये। इसी घटना के कारण भगवान का नाम मातृभूतेश्वर पड गया।

जंबुकेश्वर : श्रीरगम के मदिर से एक मील की दूरी पर जबुकेश्वर महादेव का मदिर है। यह मदिर भी श्रीरगम के विष्णु मदिर के समान ही प्राचीन एव प्रतिष्ठित है। मदिर पानी के एक प्राकृतिक सोते पर बना है, जिस कारण से लिंग के निकट सदा पानी बहता रहता है। मदिर के बाजू मे जामुन का एक बहुत पुराना वृक्ष है। कहा जाता है कि पहले यहा जबु-वृक्ष का एक बहुत बडा बन था, जिसका अवशेष यही एक वृक्ष रह गया। इसी जबु वृक्ष के नाम पर महादेव का जबुकेश्वर नाम पडा। दक्षिण मे कई मदिरो का सबध किसी-न-किसी वृक्ष विशेष के साथ पाया जाता है। तिरुनेलवेली जिले मे आळवार तिरुनगरी के विष्णु मदिर मे एक अति प्राचीन और विशाल इमली का वृक्ष है। वैष्णव सत नम्माळवार इसी इमली के पेड की जड मे बैठकर तपस्या करते थे। जबुकेश्वर के मदिर का यह जबु-वृक्ष भी प्रकृति की एक अद्भुत लीला है। सैकडो या हजारो वर्षो से वह मदिर के शिखर पर भगवान की मूर्ति के बाजू मे हरा-भरा खडा है।

मदिर के भीतर पत्थर के अनेक कलापूर्ण स्तभ लगे हुए है, जो दक्षिण की प्रस्तर-कारीगरी के अतीव सुदर नमूने है। मदिर मे प्रवेश करते ही ये खभे दर्शक के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते है।

जबुकेश्वर का दक्षिण मे प्रचलित नाम तिरुवानैक्कोविल अर्थात पवित्र हाथी का मदिर है। कथा है कि इस जबु वन मे एक हाथी और एक मकडा रहते थे। दोनो शिव के परम भक्त थे। शिव की मूर्ति एक जामुन के पेड के नीचे पडी थी। हाथी नित्य प्रति अपनी सूड मे कावेरी का जल भरकर लाता था और उससे शिवजी

का अभिषेक किया करता था। मकडे ने एक दिन मूर्ति की रक्षा के लिए उस पर जाल मढ दिया। हाथी ने अपनी सूड से पानी डालकर जाल को छिन्न-भिन्न कर दिया। इस पर मकडे को बहुत क्रोध आया। वह हाथी की सूड मे समा गया और काटने लगा। हाथी बेचैन होकर भागा और अत मे शिवलिग के सामने पछाड खाकर गिर पडा। हाथी और मकडे दोनो ही की जीवन-लीला समाप्त हो गई। शिव ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर दोनो को मुक्ति प्रदान की।

रामेश्वरम दक्षिण भारत के अतरीप के दक्षिण पूर्व छोर पर, समुद्र के किनारे, रामेश्वर का प्रसिद्ध मदिर है। हजारो वर्षो से यह स्थान सारे भारत के हिंदू यात्रियो का तीर्थ क्षेत्र रहा है। यह मदिर दक्षिणी शिल्पकला और प्रस्तर की कारीगरी का एक बेजोड नमूना है। नारिकेल के वृक्ष-समूहो से होकर इसका १५७ फुट ऊचा भव्य गोपुरम दूर से ही यात्रियो को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। मदिर के चारो तरफ बीस फुट ऊची चहारदीवारी खडी है, जिसके चारो दिशाओ मे सिह-द्वारो पर चार गोपुर है। मदिर का सबसे सुदर एव प्रभावोत्पादक भाग गर्भगृह के चारो ओर पत्थरो से बना हुआ लगभग ४,००० फुट लबा और २० फुट चौडा सपथ (कारिडोर) है, जिसके दोनो तरफ सुदर खुदे हुए पत्थर के स्तभ लगे है। इस सपथ की शोभा वास्तव मे निराली है और दक्षिण मे मदिरो मे यह एक बेजोड चीज है। सध्या के समय भगवान की आरती होती है, जिसका दर्शन करने के लिए सैकडो दर्शक भक्त-जन एकत्रित होते है।

कुबकोणम दक्षिण के प्राचीन क्षेत्रो मे कुबकोणम का नाम इतिहास प्रसिद्ध है। यह तजाऊर जिले मे कावेरी के तट पर बसा हुआ है। दक्षिण मे यही एक स्थान है, जहा प्रति बारहवे वर्ष कुभ का मेला लगता है। हरिद्वार के कुभ मेले के बाद कुबकोणम का मेला ही अधिक प्रसिद्ध है। नगर के बीच मे २० एकड विस्तार का एक विशाल तालाब है जिसके सबध मे यह प्रसिद्ध है कि प्रति बारहवे वर्ष, महाकुभ के अवसर पर, भारत की समस्त नदिया इस तालाब मे आकर मिलती है। इसलिए उस दिन इस तालाब मे स्नान करने से बहुत पुण्य प्राप्त होता है।

नगर में कुभेश्वर महादेव का मदिर सबसे प्रसिद्ध है। इसी नाम पर नगर का नाम भी कुबकोणम पडा है। नगर मे शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु के अनेक मदिर हैं। विष्णु के मदिरो मे सारगपाणी और रामस्वामी के मदिर सबसे अधिक प्रसिद्ध है। सारगपाणी के मदिर मे भगवान का धनुर्धारी रूप दिखाया गया है और मदिर एक रथ के आकार का बना हुआ है। रामस्वामी के मदिर की स्थापना तजाऊर के राजा रघुनाथ नायक द्वारा १६ वी शताब्दी मे हुई थी। कथा है कि कुबकोणम के पास दाराशुरम के तालाब की सफाई कराते समय नायक राजा को राम-सीता की बहुत सुदर मूर्तिया मिली थी। नायक ने एक सुदर मदिर बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा उसमे की।

कुबकोणम किसी समय आर्य-सस्कृति तथा आर्य-विद्या का बहुत बडा केद्र माना जाता था, जहा सस्कृति के अनेक विद्यापीठ थे। नगर मे आस-पास कई मदिर एव दर्शनीय क्षेत्र है। भगवान शकराचार्य का कामकोटि मठ भी इसी नगर मे है।

श्रीविल्लिपुत्तूर : मदुरा से तिरुवनतपुरम जाने के मार्ग मे श्री विल्लिपुत्तूर का प्रसिद्ध वैष्णव क्षेत्र है। यहा भगवान विष्णु का एक बहुत ही सुदर और विशाल मदिर है। यह स्थान प्रसिद्ध वैष्णव सत पेरिय आळवार और रगनाथस्वामी की अनन्य भक्ता आडाल की जन्मभूमि होने का गौरव रखता है। यह मदिर भी मदुरा तथा श्रीरगम के मदिरो के मानचित्र पर ही बना है। मदिर के भीतर सुदर तथा कलात्मक प्रस्तर स्तभो से सुशोभित एक सभामडप है। श्रीरगम के बाद इसी मदिर की ख्याति अधिक है।

तिरुक्कलुक्कुनरम : उत्तर भारत मे यह स्थान पक्षीतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। अज्ञात काल से प्रति दिन दो पक्षी यहा आते हे और भगवान का प्रसाद ग्रहण करके वापस चले जाते है। कहा जाता है कि ये दोनो पूर्वजन्म मे दो ऋषि थे किंतु शापवश उन्हे पक्षी का रूप धारण करना पडा। वे मुक्ति पाने के लिए यहा इन पहाडो मे ठहरे हुए हे और भगवान की आराधना करके नित्य उनका प्रसाद पाते है।

जिस पहाड पर मदिर बना है, उसकी ऊचाई लगभग ५०० फुट है और वेद-गिरि के नाम से प्रसिद्ध है। कथा प्रसिद्ध है कि वेदो ने इस स्थान पर भगवान की उपासना की थी। यह पहाड और उसके आस-पास की आबहवा बहुत ही

स्वास्थ्यवर्धक कही जाती है और लोगो का विश्वास है कि इसकी परिक्रमा करने से अनेक प्रकार के रोग दूर हो जाते है। पहाड के नीचे भी शिव का एक विशाल मदिर तथा स्वच्छ जल का एक बहुत बडा तालाब है।

तिरुवन्नामलै : दक्षिण के मदिरो मे तिरुवन्नामलै का शिव मदिर बहुत ही सुदर एव विशाल है। यह एक तीन हजार फुट ऊचे पहाड के चरणो पर बना है और इसका विशाल गोपुरम मीलो से दिखाई देता है। कहते है कि पार्वती ने शिव का अर्द्धांग पाने के लिए इसी पहाड पर तप किया था। मदिर के पास एक सुदर तालाब है, जिसका नाम मुलैपाल तीर्थम अर्थात माता के दूध का तालाब है।

इस मदिर के देवता शिव के सबध मे एक कथा प्रचलित है कि एक बार ब्रह्मा और विष्णु मे इस बात पर बहस आरभ हुई कि दोनो मे कौन बडा है। उसी समय पृथ्वी के अदर से शिवलिंग के रूप मे आग की एक विशाल ज्वाला उत्पन्न हुई, जिसने आकाश तक को आच्छादित कर लिया। उस लिग के विस्तार का पता लगाने के लिए ब्रह्मा हस का रूप धारण करके आकाश मे उडे और विष्णु वाराह का रूप लेकर पृथ्वी मे उसकी जड का अन्वेषण करने चले। परतु दोनो असफल रहे और अत मे उन्हे शिव का बडप्पन स्वीकार करना पडा। पुराण मे यह घटना 'लिगोद्भव' के नाम से प्रसिद्ध है और इसका चित्र मदिर की दीवार पर चित्रित है।

विजयनगर के महाराज कृष्णदेवराय ने इस मदिर का गोपुरम बनवाना आरभ किया था, परतु उसको पूरा किया तजाऊर के सेवप्पा नायक ने। प्रसिद्ध शैव सत अरूणगिरिनाथर की जन्मभूमि यही है।

तिरुवारुर ·तजाऊर जिले के प्रसिद्ध मदिरो मे तिरुवारुर के त्यागराज स्वामी का मदिर विस्तार तथा पवित्रता की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि इसमे की मूर्ति को मुचकुद नामक प्रसिद्ध चोळ राजा ने स्वर्ग से प्राप्त करके यहा स्थापित किया था। मदिर के सामने ३३ एकड विस्तार का कमलालय नामक सुदर तालाब है, जिसके घाट चारो दिशाओ मे पत्थर से बने है और तालाब के बीच मे मायामडप नामक एक सुदर मडप है। मदिर के भीतर शखतीर्थ नामक एक कूप है, जिसका जल बहुत मधुर होने के साथ-साथ सर्वरोग निवारक माना जाता है।

तमिळ साहित्य और सस्कृति

मद्रास : मद्रास नगर मे विष्णु और शिव के दो प्राचीन मदिर है । विष्णु का मदिर मद्रास के तिरुवल्लीकेनी महल्ले मे है और पार्थसारथी मदिर के नाम विख्यात है । मदिर मे अर्जुन के सारथी भगवान पार्थसारथी, उनकी सगिनी रुक्मणी, वलराम और सात्यकी की मूर्तिया है । पार्थसारथी की मूर्ति किसी काली धातु की बनी है । कुरुक्षेत्र के युद्ध मे भगवान को जो तीर लगा था, उसका चिह्न भी मूर्ति मे दिखाया गया है । मदिर के अहाते मे श्री रगनाथ, रामचद्र तथा वरदराज स्वामी के भी छोटे-छोटे मदिर है ।

मदिर के सामने एक छोटा तालाव है, जिसमे हमेशा जल भरा रहता है परतु इसमे एक भी मछली नही है । कथा है कि एक बार कोई तपस्वी इस तालाव पर तपस्या कर रहे थे । मछलियो की गति से अपनी तपस्या मे विघ्न पडते देखकर उन्होने शाप दिया कि इस तालाव मे कोई मछली नही जी सकती । तव से यह तालाव मछलियो से खाली हो गया ।

इस स्थान का प्राचीन नाम वृदावनम था । तिरुमगैआळवार ने लिखा है कि इस मदिर का निर्माण पल्लव राजा तोडयार ने (ईसा की आठवी शताब्दी मे) कराया था । १५६४ मे इसका जीर्णोद्धार हुआ था ।

नगर के मैलापुर महल्ले मे भगवान शिव का मदिर है, जो कपालीश्वर के मदिर के नाम से प्रख्यात है । मैलापुर का अर्थ है मयूर नगरी । तमिळ मे मैल का अर्थ होता है मयूर। कथा है कि पार्वती को किसी जन्म मे मयूर का शरीर धारण करना पडा था और इसी स्थान मे उन्होने भगवान शिव की तपस्या करके मयूर शरीर से मुक्ति पाई थी । यह कथा मदिर के प्राकारो मे चित्रित की हुई है । यह भी कथा प्रचलित है कि शैव सत तिरुज्ञानसवधर ने अपनी शक्ति से एक मृत कन्या को जीवित कर दिया था । मदिर के पीछे एक वहुत वडा तालाव है, जिसमे चारो ओर पक्के घाट बने हुए है ।

तिरुपति . मद्रास से पश्चिम की ओर नब्बे मील की दूरी पर तिरुपति का प्रसिद्ध क्षेत्र है । मदिर सेषाचल नामक पहाड पर, समुद्र के स्तर से २५०० फुट की ऊचाई पर स्थापित है । मदिर मे वेकटेश भगवान की भव्य मूर्ति है, जो विष्णु के रूप माने जाते है । यह स्थान दक्षिण मे वैष्णवो का प्रसिद्ध क्षेत्र तथा सारे भारत मे प्रसिद्ध है । प्रति वर्ष लाखो यात्री यहा पूजा और दर्शन के लिए आते है ।

पुराणो के अनुसार तिरुपति किसी समय मेरु पर्वत का एक भाग था। आदिशेष और वायु के मध्य युद्ध के समय मेरु पर्वत से टूटकर यह शिखर भूमि पर आ गिरा। तिरुपति भगवान विष्णु का प्रिय क्षेत्र माना जाता है। वैष्णव आळवारो तथा आचार्यो ने यहा आकर भगवान विष्णु की पूजा की थी और उनकी प्रशसा मे पद गाये थे। आचार्य श्री रामानुज ने स्वय यहा के मदिर मे पूजा की थी। उन्हीकी बतलाई हुई पूजा-विधि आज भी मदिर मे बरती जाती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से मदिर अत्यत प्राचीन है। नवी शती मे काची के पल्लव राजाओ ने, दसवी शती मे तजाऊर के चोळवशी राजाओ ने और उनके बाद मदुरा के पाडिय राजाओ ने समय-समय पर मदिर का कलेवर बढाने तथा दान-पत्र आदि देकर सपन्न बनाने मे सहायता की थी।

मदिर का गोपुरम द्रविड शिल्प-कला का बहुत सुदर नमूना है। गर्भगृह के ऊपर बना हुआ विमान सोने के पत्तरो से ढका हुआ बडा शोभायमान दीखता है। मदिर के प्राकार मे वरदराज, नरसिह, रामानुज, गरुड, श्वेतवाराह आदि के मदिर है। भगवान की मूर्ति के साथ भोग श्रीनिवास मूर्ति, शात श्रीनिवास मूर्ति तथा उग्र श्रीनिवास मूर्ति की भी मूर्तिया है। इन तीनो को भगवान का भिन्न रूप माना जाता है।

मदिर के पास ही स्वामी पुष्करिणी नामक तालाब है, जिसमे यात्री स्नान करके मदिर मे दर्शनार्थ जाते है। भक्तो को विश्वास है कि इस तालाब मे स्नान करने से सारे पाप कट जाते है। मदिर के इर्द-गिर्द अनेक छोटे-बडे जलप्रपात तथा अनेक दर्शनीय स्थान है।

पर्वत के नीचे श्री गोविंदराज का विशाल मदिर है, जिसका उन्नत गोपुरम दूर से ही दृष्टिगोचर होता है। कहा जाता है कि इस मदिर तथा उसके चारो ओर नगर की स्थापना प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य श्रीमद्रामानुजाचार्य ने की थी। गोविंदराज स्वामी के मदिर मे रामानुज, तिरुमगैआळवार, वेदात देसिकर, मनवाल मामुनि आदि वैष्णव आचार्यो तथा नम्माळवार, तिरुमगै आळवार, पेरिय आळवार आदि वैष्णव सतो के भी मदिर है।

तिरुपति से तीन मील की दूरी पर तिरुयानूर नामक स्थान मे वेकटेश भगवान की लक्ष्मी श्री पद्मावतीदेवी का मदिर है। इस मदिर के पास ही पद्म-सरोवर नामक एक बडा तालाब है।

परिशिष्ट

इस पुस्तक को लिखने मे निम्नलिखित ग्रथो से सहायता ली गई है.

Aiyer, A S P —Kovalam and Kannaki

Aiyer, Jagdisa —South Indian Temples

Aiyer, V V S —The Kural

Ayyangar, M Sriniwas —Tamil Studies

Ayyangar, P. T Sriniwas —History of the Tamils

Ayyangar, S Krishnaswamy —Beginning of South Indian History.

—Early History of Vaishnavaism

Ayyangar, T R Shesha —Dravidian India

Brown, Percy —Indian Architecture

Dikshitar, V. R. Ramchandra —Studies in Tamil Literature and History

Gopalan, R —Pallavas of Kanchi

Pillai, K N Sivraja —Agasthya in Tamil Land

Pillai, K Subrahamania —Saiva Sidhantham

Pillai, Purnalingam —History of Tamil Language

—Tamil India

Rao, Gopinath —History of Srivaishravas

Sastry, K A N —A History of South India

—Pandyan Kingdom

—The Cholas

Sastry, V G Suryanarayana —History of Tamil Language

Warmington —Commerce between Roman Empire and India